गुरुत्तं

भाग-II

प्रवचनकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

आचार्य श्री १०८ वसुनंदी जी मुनिराज

प्रकाशक

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

1

कृति : गुरुत्तं भाग-॥

प्रवचनकार : आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

संपादन : आर्यिका 105 श्री वर्धस्वनंदनी

प्राप्ति स्थान: निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, बौलखेड़ा, भरतपुरए (राज.)

संस्करण : प्रथम सन् 2016

द्वितीय सन् 2019

प्रतियाँ : 1000

मुद्रक : एन.एस. एन्टरप्राईजिज

H2/16, II फ्लोर, अंसारी रोड,

दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

दूरभाष : 9811725356, 9810035356

e-mail : swaneeraj@rediffmail.com

पुरोवाक्

स्वाध्याय-स्व + अध्ययन स्वयं का अध्ययन। ज्ञान का अभ्यास करना स्वाध्याय है। आत्मा का अध्ययन करने के लिए पढ़ना, लिखना, सुनना, सुनाना आदि स्वाध्याय है। 'स्व आत्मने अध्येति इति स्वाध्याय:' अपनी आत्मा में अध्ययन करना ही स्वाध्याय है। स्वाध्याय तप को पाँच भागों में विभाजित किया गया है-वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशा:।

1. **वाचना:**-ग्रंथ, अर्थ और दोनों का निर्दोष प्रतिपादन करना वाचना है। वाचना से प्रज्ञा में अतिशय आता है, नए-नए शब्द एवं अर्थ की उपलब्धि होती है, स्वयं के शास्त्र पढ़ने से अन्यथा सुना-पढ़ा हुआ परिष्कृत हो जाता है एवं लंबे समय तक स्मृति में रहता है।

वाचना सा परिज्ञेया, सत्पात्रे प्रतिपादनम्।
ग्रंथस्य वार्थ पद्यस्य, तत्त्वार्थस्योभयस्य वा॥

समीचीन पात्र के लिए मूल ग्रंथ, अर्थ अथवा दोनों का प्रतिपादन करना वाचना नाम का स्वाध्याय जानना चाहिए। यह वाचना पहले प्रकार का स्वाध्याय है। इसके बिना अन्य शून्यवत् हैं। जिस प्रकार महाव्रत में प्रथम अहिंसा के अभाव में सब शून्यवत् हैं, दस धर्म में क्षमा के अभाव में सब शून्यवत् हैं, मनोगुप्ति के बिना अन्य भी उसकी अनुगामिनी नहीं हो सकती। इसी प्रकार बिना वाचना के अन्य स्वाध्याय के क्रम प्रादुर्भूत नहीं होते।

2. **पृच्छना:**-संशय का उच्छेद करने के लिए अथवा निश्चित बल को पुष्ट करने के लिए, दूसरों को अनुयोग लाभ के लिए प्रश्न करना पृच्छना है।

तत्वसंशयापनोदाय तन्निश्चयबलाय वा।
परं प्रत्यनुयोगो यः पृच्छनां तद्विदुर्जिनाः॥

श्रुतविषयक संशय को दूर करने के लिए अथवा श्रुतविषयक निश्चय को दृढ़ करने के लिए दूसरे से पूछने को जिनेन्द्र भगवान् ने पृच्छना नाम का स्वाध्याय कहा है।

वाचना के पश्चात् जो समझ में नहीं आया या कहीं शंका है तो उसका समाधान अवश्य करना चाहिए। जिज्ञासा पूछने पर बुद्धि का, प्रतिभा का विकास होता है। वाचना के पश्चात् विनम्रता पूर्वक जिज्ञासु को अपनी शंका पूछकर उसका समाधान लेना चाहिए और समाधानकर्ता जब स्वयं की बुद्धि के अनुपात से नहीं बल्कि पृच्छक की बुद्धि के अनुपात से समाधान देता है तो वह बात पृच्छक को शीघ्र समझ में आती है।

3. **अनुप्रेक्षा:**-जाने हुए अर्थ का मन में अभ्यास करना अनुप्रेक्षा स्वाध्याय है।

साधोरधिगतार्थस्य योऽभ्यासो मनसा भवेत्।
अनुप्रेक्षेति निर्दिष्टः स्वाध्यायः स जिनेशिभिः॥
सानुप्रेक्षा यदभ्यासोऽधिगतार्थस्य चेतसा।
स्वाध्यायलक्ष्म पाठोऽन्तर्जल्पात्मात्रापि विद्यते॥

वस्तु स्वरूप के ज्ञाता साधु का मन से जो अभ्यास होता है उसे जिनेंद्र भगवान् ने अनुप्रेक्षा नामक स्वाध्याय कहा है। इस स्वाध्याय में अन्तर्जल्प रूप पाठ चलता रहता है जो कि स्वाध्याय का लक्षण है।

अनुप्रेक्षा = अनु + प्रेक्षा, अनु अर्थात् पीछे, प्रेक्षा अर्थात् देखना। पीछे देखते जाना यानि चिंतन करना। जो पढ़ लिया, पूछ लिया उसका चिंतन करते रहना। वाचना, पृच्छना के पश्चात् यदि अभ्यास न किया जाए तो विषय विस्मृत हो जाता है। अतः विषय को स्मृति में रखने,

परम संवेग जागृत करने एवं वस्तु स्वरूप ज्ञात करने हेतु अनुप्रेक्षा स्वाध्याय करना चाहिए।

4. **आम्नाय:**-उच्चारण की शुद्धि पूर्वक पुन:-पुन: दोहराना आम्नाय स्वाध्याय है। उच्चारण में ह्रस्व, दीर्घ, विसर्ग, अनुस्वार, स्वराघात आदि का ध्यान रखते हुए गद्य-पद्य का शुद्ध उच्चारण करने से वृद्धि होती है अत: उच्चारण में निराकुलता धारण करने से आम्नाय नामक स्वाध्याय होता है।

परिघोषविशुद्धं यत् परिवर्तनमुत्तमम्।
तदाम्नाय इति प्राज्ञा: कथयंति यतीश्वरा:॥

उच्चारण की शुद्धतापूर्वक जो पाठ करना है, उसे ज्ञानी मुनिराज आम्नाय नाम का स्वाध्याय कहते हैं।

''व्यापनोति इति आम्नाय''-अपने अंतरंग में, ज्ञान में, क्रिया में जो व्याप जाये (कंठस्थ हो जाए) वह आम्नाय है। जिस प्रकार दूध में घी व्यापतता है उसी प्रकार हमारे जीवन में, व्यवहार में, क्रिया-चर्या में ज्ञान का व्यापकपना आम्नाय है। स्वप्न में, मूर्च्छित अवस्था में भी वह सही बात कहेगा, उसकी क्रिया सही होगी। आम्नाय के समय शब्द आत्मा के एक-एक प्रदेश तक पहुँच जाते हैं और यह वाचना, पृच्छना व अनुप्रेक्षा के बाद ही संभव है, क्योंकि वाचना में शब्द जिह्वा या कर्ण तक रहते हैं, पृच्छना में मस्तक पर और अनुप्रेक्षा में मन के अंदर। इसके पश्चात् ये आत्म प्रदेशों तक पहुँचते हैं अत: आम्नाय स्वाध्याय आवश्यक है।

5. **धर्मोपदेश:**-आक्षेपिणी आदि चार प्रकार की सुकथाओं का अनुष्ठान करना धर्मोपदेश है। जिन्होंने ज्ञान को आत्मसात् कर लिया है वे प्रज्ञा-श्रमण उपदेश देते हैं। उपदेश देने के प्रथम अधिकारी तीर्थंकर होते हैं। उसके पश्चात् केवली, गणधर, श्रुत केवली,

वादी-प्रतिवादी। किंतु ये सब तो चतुर्थ काल में होते हैं। तब पंचम काल में भव्य जीव किस प्रकार अपना कल्याण कर सकेंगे तब आचार्य भगवन् श्री पद्मनंदी स्वामी कहते हैं-

सम्प्रत्यस्ति न केवली किल किलौ त्रैलोक्यचूड़ामणि,
स्तद्वाचः परमासतेऽत्र भरत क्षेत्रे जगद्योतिका।
सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवरास्तेषां समालम्बनं,
तत्पूजा जिनवाचिपूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः॥

वर्तमान में इस कलिकाल में तीन लोक के पूज्य केवली प्रभु इस भरत क्षेत्र में साक्षात् नहीं हैं तथापि समस्त भरतक्षेत्र में जगत्प्रकाशिनी केवली प्रभु की वाणी मौजूद है तथा उस वाणी के आधारस्तंभ श्रेष्ठ रत्नत्रयधारी मुनि भी हैं इसीलिए उन मुनि का पूजन तो सरस्वती का पूजन है तथा सरस्वती का पूजन साक्षात् केवली का पूजन है।

अतः वर्तमान काल के आचार्य, उपाध्याय, मुनि आज तीर्थंकर केवली के समान हैं। धरती के देवता, दिगम्बर संत, आज उन्हीं की दिव्य देशना भव्य जीवों का मार्ग प्रशस्त करती है। परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज जिन्होंने इष्टोपदेश, द्रव्यसंग्रह, प्रवचनसार, नियमसार, समयसार, पंचास्तिकाय, गोम्मटसार जीवकांड आदि लगभग पचास ग्रंथ कंठस्थ किए। सहस्राधिक शास्त्रों-पुस्तकों का अध्ययन किया और उस ज्ञान से अन्य भव्य जीवों का अज्ञान तम दूर किया। अपनी आदर्श चर्या के माध्यम से जगत भर को तप-साधना का संदेश दिया। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व और सार्वभौमिक ज्ञान को देखते हुए यदि उन्हें चलता-फिरता पुस्तकालय भी कह दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ऐसे महाज्ञानी गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के प्रकृष्ट वचनों को जन-जन तक पहुँचाने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ।

प्रस्तुत पुस्तक 'गुरुत्तं' का दूसरा भाग जो पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों का संकलन है आप सभी के जीवन को मंगल मय व उत्कृष्ट बनाने में निमित्त होगी।

यदि इस पुस्तक के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़ें। हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से इसका अध्ययन करें। इस पुस्तक की पांडुलिपि आदि तैयार करने में संघस्थ त्यागीव्रती तथा मुद्रण प्रकाशन में सहयोगी सभी धर्मस्नेही बंधुओं को पूज्य गुरुदेव का धर्मवृद्धि शुभाशीष। गुरुवर श्री का संयम पथ सदैव आलोकित रहे, शताधिक वर्षों तक यह वसुंधरा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से आलोकित रहे। पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु.....

''सर्वेषां मंगलं भवतु''

-आर्यिका वर्धस्व नंदनी

''अनुक्रमणिका''

1.	भाग्य और पुरुषार्थ	1
2.	सबसे बड़ा दु:ख	21
3.	सन्मार्ग दर्शक गुरु	30
4.	जिनदर्शन से निजदर्शन	45
5.	मनोनुशासन	56
6.	सपना या अपना	73
7.	निर्भयता का मार्ग :- वैराग्य	87
8.	दर्शनं मोक्षसाधनं	106
9.	कायोत्सर्ग	120
10.	प्रेय से अप्रेय की ओर	136
11.	दु:खों से मुक्ति	150
12.	समर्पण	167
13.	कारागृह नहीं सुधार गृह	180
14.	साधना समाधि की	192

''वर्तमान का पुरुषार्थ ही भविष्य का भाग्य बनता है। पुरुषार्थी पुरुष के जीवन में से दुर्भाग्य द्रुतगति से भाग जाता है और सौभाग्य नींद से अंगड़ाई लेता हुआ उठ खड़ा हो जाता है।''

जीवन में पुरुषार्थ और भाग्य दोनों का कितना महत्व है, इस संबंध में आज थोड़ी चर्चा करेंगे। कहीं ऐसा तो नहीं हम किसी भ्रम में पड़े हों, भाग्य की ही बात हो और हम पुरुषार्थ करके थक जायें। और कहीं ऐसा भी तो नहीं कि हमें कोई वस्तु मिल सकती थी किन्तु हमने पुरुषार्थ ही नहीं किया। पुरुषार्थ और भाग्य में कौन प्रबल है किसको श्रेष्ठ कहें ? मैं समझता हूँ पुरुषार्थ और भाग्य नदी के दो किनारों की तरह से हैं दोनों किनारों में से किसी को भी बलवान् और कमजोर नहीं कह सकते हैं। पुरुषार्थ और भाग्य ऐसे ही हैं जैसे संतान उत्पत्ति में माता-पिता, भाग्य और पुरुषार्थ किसी पक्षी के पंख की तरह से हैं जब उड़ते हैं तब दोनों का समान रूप से कार्य होता है। पुरुषार्थ और भाग्य ऐसे ही हैं जैसे कोई बल्ब जल रहा है उसमें अर्थ का वायर भी है और करंट का वायर भी है, दोनों का समान महत्व है। पुरुषार्थ और भाग्य का उतना ही महत्व है जितना हमारी आत्मा में ज्ञान चेतना और दर्शन चेतना का महत्व है।

पुरुषार्थ को कभी कम नहीं कर सकते और भाग्य को भी कभी कम नहीं कर सकते। इन दोनों का साथ दिन रात जैसा साथ है किन्तु लोक व्यवहार में एक बात तो तय है जो पहले आता है लोग उसे बड़ा कहते हैं और जो पीछे आता है उसे लोग छोटा कहते हैं। आत्मा न कोई छोटी होती है और न कोई बड़ी होती है आत्मा सबकी समान है फिर भी जिस भाई का जन्म पहले हुआ उसे बड़ा कहते हैं और जिसका जन्म बाद में हुआ उसे छोटा भाई कहते हैं। पिता को बड़ा, पुत्र को छोटा कहते हैं, दादा को बड़ा, पोते को छोटा कहते हैं भले ही दोनों का जन्म साथ-साथ हो। बेटे का जन्म और पिता का जन्म साथ-साथ होता है। जिस समय पुत्र का जन्म हुआ तभी उसके पितृत्व का जन्म हुआ। जब तक उसके बेटा नहीं था तब तक उसे पिता कौन कहता? पोते का जन्म हुआ तभी उसकी दादा पर्याय का जन्म हुआ। जब तक पोता-पोती का जन्म नहीं होता तब तक उसे दादा कौन कहता ऐसे ही पुरुषार्थ और भाग्य है। सरल शब्दों में समझने का प्रयास करते हैं।

वर्णमाला के अनुसार पहले 'प' आता है या 'भ', पहले 'प' आता है 'भ' बाद में। पहले पुरुषार्थ करना पड़ता है पुरुषार्थ वर्तमान की क्रिया है। भाग्य उस क्रिया के उपरांत संस्कार बंध को प्राप्त हो गया है कर्म रूप अवस्था बंध को प्राप्त हो गयी है जब वह उदय में आयेगा तब वह कर्म, भाग्य, विधि इत्यादि नामों से पुकारा जायेगा। पुरुषार्थ व भाग्य के दो-दो भेद हैं। पुरुषार्थ सम्यक् भी होता है और मिथ्या भी होता है, भाग्य अच्छा भी होता है बुरा भी होता है। अच्छे भाग्य को सौभाग्य भी कहते हैं और जब बुरे भाग्य का उदय होता है तो उसे दुर्भाग्य कहते हैं। अच्छे पुरुषार्थ को पुण्यकर्म कहते हैं, बुरे पुरुषार्थ को पाप कर्म कहते हैं। चारों अवस्था जीवन में आती हैं।

एक व्यक्ति देखकर के चल रहा था, चलते-चलते अचानक उसके पैर में दर्द होने लगा, वह बैठ गया, दर्द बढ़ता ही चला जा रहा

है, बाद में मालूम चला पैर में कभी बचपन में चोट लगी थी। किन्तु वह दर्द आज फिर शुरू हुआ है यकायक दर्द हो गया और एक व्यक्ति ऐसा है जो छत के ऊपर से नीचे कूद गया, उसका पैर टूट गया। दर्द दोनों के है, जो छत से गिरा उसने मिथ्या पुरुषार्थ किया और अपना पैर तोड़ लिया और जो जीवन भर सावधानी से रहा बचपन में कभी पालने में से गिर गया, उस समय तो उस चोट का अहसास नहीं हुआ अब 48 साल की उम्र में उसका दर्द प्रारंभ हुआ।

तो एक के मिथ्या पुरुषार्थ से चोट आयी और दूसरे के पाप कर्म का उदय आया जो कि अचानक उसके दर्द शुरू हुआ। 'सम्यक्' लगा कर चलें सम्यक् भाग्य और सम्यक् पुरुषार्थ। किसी व्यक्ति ने अच्छा कार्य किया समाज में उसकी प्रतिष्ठा बनी, लोग उसका आदर सम्मान करने लगे, उससे जीवन में सुख शांति का अनुभव कर रहा है तो यह सम्यक् पुरुषार्थ रहा। एक व्यक्ति ऐसा है जिसने कोई अच्छा काम नहीं किया किन्तु पूर्व पुण्य के उदय से लोग उसका सम्मान कर रहे हैं, यश प्राप्त हो रहा है, उसे स्वयं में भी आनंद की अनुभूति हो रही है, यह उसके सौभाग्य का उदय है। तो भाग्य के भी दो भेद हैं-सत् और असत्। पुरुषार्थ के भी दो भेद हैं सत् और असत्।

महानुभाव ! किन्तु फिर भी भाग्य के भरोसे बैठना मैं समझता हूँ बुद्धिमानी तो नहीं कही जा सकती, क्योंकि भाग्य के भरोसे वे बैठें जिन्होंने पहले पुरुषार्थ कर लिया है। किसान ने पहले अपने खेत में बीज बो दिया, इंतजारी की और अब खेत में फसल खड़ी है अब फसल को देखकर हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाये। बालों में जो अनाज आ गया है, धूप आयेगी तो वे बालें स्वयं पकेंगी। तो ये तो भाग्य की बात हो गयी। इसलिये वह शांति से बैठा है किन्तु इसके पहले उसे पुरुषार्थ करना भी जरूरी था। खेत को पहले जोतना भी था, उसकी निराई, गुराई, सिंचाई जो कुछ भी की वह सब जरूरी था

यदि नहीं करता तो फसल सामने नहीं आती। हाँ उतना भाग्य भी आवश्यक है, उतनी इंतजारी करना भी आवश्यक है।

फसल खेत में आ गयी बस काटने ही वाला था कि ओले पड़ गये या दो बांसों के रगड़ने से खेत में आग लग गयी, फसल नष्ट हो गयी, तब ये कहो कि मैंने पुरुषार्थ तो किया था किन्तु पूर्व का पाप उदय में आ गया फसल नष्ट हो गयी। तो जब भी फल प्राप्त होगा तो भाग्य से ही होगा किन्तु भाग्य बिना पुरुषार्थ के नहीं बनता। आज का पुरुषार्थ कल का भाग्य बन जाता है और कल जो पुरुषार्थ किया था वह आज का भाग्य बन गया है और कल जो पुरुषार्थ करोगे वह परसों के लिये भाग्य बन जायेगा। लेकिन पहले पुरुषार्थ ही होता है।

घर बसाने के लिये किसी पिता ने अपने बेटे की शादी की। सुयोग्य कन्या घर में आ गयी। किन्तु फिर भी वंश वृद्धि नहीं हुयी तो कन्या का क्या कसूर, जब दम्पत्ति के भाग्य में संतान सुख नहीं है तो क्या करोगे? कई बार ऐसा होता है कि स्वयं का बेटा साथ नहीं दे पाता और गोद लिया बेटा जीवन भर साथ निभाता है। महानुभाव ! पुरुषार्थ और भाग्य का समान महत्व होते हुये भी प्रथमतः तो पुरुषार्थ ही किया जाता है बिना पुरुषार्थ के तो कोई कार्य किया ही नहीं जा सकता। जब कोई क्रिया की जाती है तो वह संकल्प के साथ आगे बढ़ता है, तो कहा जाता है कि वह पत्थर को भी पानी कर सकता है।

जब व्यक्ति स्वयं अपने धैर्य, साहस आदि को लेकर के आगे बढ़ता है तब प्राकृतिक शक्तियाँ भी उसका साथ देती हैं और जो व्यक्ति कोशिश ही न करे, नदी किनारे बैठा रहे, मुझे पार होना होगा तो हो जाऊँगा, तो ऐसे पार नहीं होता। औषधि का सेवन करना भी जरूरी है कैसा भी रोग आया है ठीक होना होगा तो हो जायेगा ये तो

कायर पुरुष कहते हैं पुरुषार्थी व्यक्ति ऐसा कभी नहीं कहते, पुरुषार्थी तो नदी में तैर करके हाथों से पार हो सकता है या नाव मिल गयी तो नाव खेकर के पार हो सकता है किन्तु कायर पुरुष, आलसी पुरुष नदी किनारे बैठा रहता है, कहता है पार होना होगा तो हो जाऊँगा।

लहरों से डरकरके नौका पार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती॥
नन्हीं चींटी जब दाना लेकर चलती है,
चढ़ती दीवारों पर सौ बार फिसलती है।
मन का विश्वास रग-रग में साहस भरता है,
गिरकर चढ़ना, चढ़कर गिरना नहीं कभी अखरता है,
आखिर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती।
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती॥
गोताखोर समुद्र में गोते खूब लगाते हैं
जा-जा कर वह बार-बार खाली हाथ ही आते हैं
मिलते सहज नहीं मोती गहरे पानी में
बढ़ता दुगुना उत्साह उसी हैरानी में,
मुट्ठी उसकी खाली हर बार नहीं होती।
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती॥

महानुभाव !

व्यक्ति कोशिश करता रहे Try again, Try again ऐसा नहीं है कि उसे सफलता नहीं मिले।

जो व्यक्ति परिश्रमी होता है, वीर होता है, धैर्यवान होता है, उद्यमी होता है सफलता उसके आकर के कदम चूमती है। भाग्य के भरोसे बैठे व्यक्ति कुछ नहीं कर पाते। हाथ में रखा ग्रास मुँह में तब जायेगा जब वह हाथ को आगे बढ़ायेगा, ऐसे बैठने से थोड़े ही काम

चलेगा। पुरुषार्थ करने वाला व्यक्ति भले ही पाप लेकर आया हो किन्तु पुरुषार्थ करके स्वर्ग तक की यात्रा कर सकता है। स्वर्ग प्राप्त कर सकता है और चाहे कोई स्वर्ग से आया हो अपने पुण्य को नष्ट करके नरक तक की यात्रा कर सकता है। इस भव में किसी मनुष्य ने अच्छा पुरुषार्थ किया, तो मनुष्य से वह देव बन गया और यहाँ तक ही नहीं वह पुरुषार्थ के बल से सिद्ध भी बन गया, भगवान् भी बन गया। और एक व्यक्ति आलसी बनकर बैठ गया, पुण्य को खाता रहा और पुण्य खाली हो गया। पाप का उदय आ गया दुर्गति की प्राप्ति हो गयी। **''मंगत इसी जतन तै इक दिन भव सागर तिरना''।**

मंगत राय जी ने ये नहीं कहा कि इसी भाग्य से भव सागर तिरना, **'जौलों पौरुष थके न तौलों उद्यम सो चरना'।** जब तक तुम्हारा पुरुषार्थ न थके, जब तक तुम्हारी इन्द्रियाँ न थकें, तब तक पुरुषार्थ करते रहो-

करना है सो जल्दी कर लो सुकृत तरुण अवस्था में,
पैसा पास निरोगी काया इन्द्रिय ठीक व्यवस्था में।
कर न सकोगे वृद्धापन में बल पौरुष थक जाने से,
लगी आग कुटिया में फिर क्या होगा कूप खुदाने से॥

यदि पहले ही पुरुषार्थ करके कुआँ खुदवा लिया तो आग लगने पर उसके पानी से आग बुझायी जा सकती है और यदि भाग्य के भरोसे बैठ गये तो कुछ और काम होने वाला नहीं। प्रत्येक संसारी प्राणी के जीवन में पुण्य का उदय भी आता है, पाप का उदय भी आता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसा समय भी आता है जब वह सिर पकड़ के रोता है कि हे भगवान्! इससे अच्छी तो मौत है और प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसा पुण्य का उदय भी आता है जब वह जो काम करना चाहे सबमें सफलता ही मिलती है। अच्छे से अच्छा और बुरे से बुरा समय प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आता है, चाहे

तीर्थंकर ही क्यों न हों। एक बार तो तीर्थंकर प्रभु भी सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि अरे ! संसार के ये चेतन अचेतन पदार्थ जिनमें मैं भूला रहा ये सब तो नश्वर हैं।

महानुभाव !

आपने सुना होगा चारुदत्त के बारे में चारुदत्त बचपन से ही धर्मात्मा रहा उसका विवाह जल्दी कर दिया गया। चारुदत्त की सास अपनी बेटी से मिलने के लिये आयी। बेटी से पूछा-बेटी ! तू ससुराल में सुख शांति का अनुभव कर रही है ना ! बेटी रोने लगी। बोली सुख-शांति क्या, पति ने मेरी तरफ देखा भी नहीं, मेरी मेंहदी, मेरा श्रृंगार तो ज्यों की त्यों फीका पड़ गया। चारुदत्त की सास ने चारुदत्त की माँ को उलाहना दिया-जब बेटा ऐसा ही वैरागी था तो मेरी बेटी से शादी क्यों रचाई? माँ को बड़ा विकल्प आया, उसने अपने देवर रुद्रदत्त को बुलाया-कहा जैसे भी हो चारुदत्त को भोगों में फंसाओ।

चारुदत्त का चाचा रुद्रदत्त उसे पहले से ही योजना बनाकर उस गली से ले गया जहाँ वेश्या का घर था और सामने से हाथी छुड़वा दिया। हाथी उच्छृंखल होकर के आ रहा था, चाचा हाथ पकड़ कर उसे वेश्या के घर पर ले गया, वहाँ पर थोड़ी देर बैठा रहा-थोड़ी देर बाद चारुदत्त बोला चाचा मुझे प्यास लगी है, उसे उसने पानी के बदले मादक पदार्थ पिला दिया, पुनः वहाँ चौपड़ खेलना प्रारंभ किया। रुद्रदत्त चौपड़ में हारने लगा तब चारुदत्त ने कहा चाचा तुम नहीं मैं खेलता हूँ, वेश्या बोली तुम्हें खेलना है तो मेरी बेटी के साथ खेलो, बेटी के साथ चारुदत्त को खेलते-खेलते इतना प्रेम हुआ कि वह वहीं रह गया। चाचा ने कहा घर चलो पर अब तो चारुदत्त का घर जाने का नाम ही नहीं। उसके घर से प्रतिदिन धन आता गया 16 करोड़ दीनार का धन चारुदत्त ने उस वेश्या के लिये लुटा दिया।

नौकरों ने कहा-अब तो चलो, तुम्हारे पिता जी बीमार हो गये हैं। उसने कहा मैं न वैद्य हूँ, न डॉक्टर और न हकीम, बीमार हैं तो इन सभी को दिखाओ मैं अभी नहीं आ सकता। बाद में पुनः उसके पास समाचार भेजा गया कि तुम्हारे पिताजी दिवंगत हो गये, अब तो चलो, वह बोला-जब पिता जी मर ही गये तो अब क्या? मैं जिंदा थोड़े ही न कर दूँगा संस्कार कर दो मैं अभी नहीं आ सकता। पुनः 16 करोड़ दीनार और आ गयीं। हवेली, गहने आदि सब गिरवी रख दिया गया। उसकी माँ और पत्नी झोंपड़ी में आ गये, जब उसकी पत्नी का मंगल सूत्र भी आ गया तब नौकरों ने कहा-अब उनके पास कुछ भी नहीं रहा। तब वेश्या ने अपनी पुत्री से कहा कि इसे प्यार मत कर, जो धनी होता है उससे प्यार किया जाता है, पुत्री नहीं मानी तब वेश्या ने बोरी में बंद कर चारुदत्त को गटर में डाल दिया, जब सूअर चाटने लगे तो चारुदत्त बोला-वसंततिलके ! मुझे सोने दे, परेशान न कर। सामने से एक गश्त खोर आ रहा था उसने देखा आवाज कहाँ से आ रही है। बोरा बाहर निकाला, उसमें से आदमी निकला पुनः घर जाता है माँ और पत्नी से मिलने किन्तु वहाँ कोई नहीं मिला। फिर पूछा मेरी माँ आदि कहाँ हैं, बताया गया वे दोनों एक झोंपड़ी में रहती हैं। पुनः झोंपड़ी में पहुँचा।

माँ से पिताजी के बारे में पूछा माँ ने बताया वह तो दीक्षा ले चुके हैं। सोचा ये मैंने क्या किया सब कुछ नष्ट कर दिया। वह बोला माँ अब तक मैं भाग्य के भरोसे बैठा रहा सब बर्बाद हो गया। अब पुरुषार्थ करूँगा। विदेश गया धन कमाने के लिए। धन कमाकर वापस आ रहा था कि जहाज फट गया किंतु हार नहीं मानी पुनः धन कमाया पुनः जहाज फटा, ऐसा 7 बार हुआ फिर भी पुरुषार्थ करता रहा। पुनः अपने चाचा के साथ रत्नदीप गया वहाँ अमितगति मुनिराज के दर्शन किए। वहीं पर वराग्रीव और सिंहग्रीव नाम के मुनिराज के गृहस्थ जीवन के दोनों पुत्र आए हुए थे।

उन्होंने चारूदत्त को पहचाना कहा इसने हमारी बचपन में सहायता की थी। इसलिये चारूदत्त को पर्याप्त धन आदि से इसकी सहायता करना। रत्नदीप जाते समय चारूदत्त के चाचा ने बकरे को काट दिया था तब उसने उस बकरे को णमोकार मंत्र सुनाया था जिससे वह मरकर देव हो गया और एक बार रसकूप में पड़े एक व्यक्ति को चारुदत्त ने णमोकार मंत्र सुनाया था, वह भी मरकर देव हो गया था। चारुदत्त जैसे ही धन लेकर आया उसने वह सबकुछ अपनी पत्नी व माँ को सौंप दिया इसके कुछ समय बाद उसने दीक्षा ली व तपस्या करके सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त किया।

महानुभाव ! धर्म पुरुषार्थ प्रारंभ में किया, फिर काम पुरुषार्थ में फँस गया, फिर अर्थ पुरुषार्थ किया फिर मोक्ष पुरुषार्थ किया। तो पुरुषार्थ करने वाला व्यक्ति उसने चारों रंग अपने जीवन में देख लिये। भरत चक्रवर्ती घर में रहकर भी पुरुषार्थी रहे, घर में रहकर भी मोक्ष मार्ग का पुरुषार्थ किया इसलिये दीक्षा लेने के बाद ज्यादा पुरुषार्थ नहीं करना पड़ा। यदि भाग्य के भरोसे कोई मुनिमहाराज बैठे रहें, मेरा मोक्ष होना होगा तो हो जायेगा, तो जैन दर्शन में से तपस्या को निकाल देना पड़ेगा। तपस्या इसलिये की जाती है कि उस तप के पुरुषार्थ से कर्म जल्दी क्षीण हो जायें, अविपाक निर्जरा हो जाये इससे जल्दी मोक्ष की प्राप्ति हो जाये।

श्री रामचन्द्रजी ने पुरुषार्थ किया-पिता का आदेश हुआ वन जाना है तो वन गये, राज्य का संचालन करना है तो संचालन किया, प्रतिकूलताओं में भी संघर्ष किया कभी भी कहीं भी भाग्य के भरोसे बैठकर नहीं रहे। पुरुषार्थ करने में बहुत कुछ संभावनायें हैं कि वह सफलता को प्राप्त कर सकता है लेकिन केवल भाग्य के भरोसे बैठे व्यक्ति के लिए केवल 1% संभावना है पूर्व का कोई तीव्र पुण्य उदय में आ जाये, अंधे के हाथ कोई बटेर लग जाये, यह बहुत बड़ी बात है, सभी के हाथ तो नहीं लगती। सभी व्यक्ति आँख बंद कर बटेर

पकड़ना चाहें तो नहीं आयेगी। वह किसी एक के हाथ में लग गयी तो उसका पुण्य।

पुरुषार्थ भी करना है और भाग्य भी सराहना है पुरुषार्थ करने पर भी जब सफलता न मिले तब कहना चाहिये कि हाँ ये चीज हमारे भाग्य में नहीं थी। आज भाग्य में नहीं है किन्तु जो पुरुषार्थ किया है उसका फल हमें आगे अवश्य मिलेगा। जैन दर्शन की कोई भी क्रिया बांझ नहीं होती। बांझ का आशय समझते हैं आप लोग, वह स्त्री जो संतान उत्पन्न करने में असमर्थ हो, जैन दर्शन की चाहे शुभ क्रिया हो, चाहे अशुभ क्रिया हो नियम से फलवती होती है, पुष्पवती होती है वह कभी बांझ नहीं होती। तुमने जो पुरुषार्थ किया है उसका फल चाहे आज मिले या नहीं किंतु आगे अवश्य मिलेगा। आचार्य कहते हैं-

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति, कार्याणि न मनोरथैः।
उद्यमात्कृमि कीटोऽपि, भिनत्ति महतो द्रुमान्॥

उद्यम के द्वारा ही कार्यों की सिद्धि होती है। मात्र मनोरथों से, भावनाओं से, आशाओं से, इच्छाओं से कार्य की सिद्धि नहीं होती। उद्यम से ही छोटे-छोटे कीड़े यदि वृक्ष को लग जायें दीमक आदि लग जाये तो पूरी फसल को ही सफा कर दे। टिड्डी आदि लग जायें तो पूरी की पूरी फसल स्वाहा हो जाये।

बहुतन को न विरोधिये, निबल जान बलवान।
ज्यों लग जाये पिपीलिका करि नगै निष्प्राण॥

चींटियाँ यदि घायल हाथी (करि) पर लग जायें तो उसके भी प्राण ले लें। सर्प (नगै-नाग) भी चाहे कितना ही बड़ा व भयंकर क्यों न हो यदि कहीं उसके खून आ जाये, उस पर चींटियों का झुंड लग जाये तो सर्प के भी प्राण ले लें। निरंतर लगी रहें 1-1 कण इकट्ठा

करती रहें तो वे पहाड़ जैसा ढेर लगा देती हैं। चलती हुयीं चींटियाँ हजारों कोसों-योजनों को भी पार कर लेती हैं और आलसी गरुड़ पक्षी जो कि 1 घंटे में सौ मील की दूरी पार कर सकता है यदि वह बैठा रहे तो कहीं न पहुँच पाये अथवा कोई भी वायुयान एक कदम भी न चले यूँ ही रखा रहे तो क्या, उससे तो साइकिल भली जो कि चलते-चलते सैकड़ों मील की दूरी तय कर लेती है। ऐसे ही पुरुषार्थी व्यक्ति जीवन में कुछ न कुछ हासिल अवश्य कर लेता है और जो पुरुषार्थी नहीं होता है उसके जीवन में कुछ नहीं होता। आचार्य महोदय कहते हैं-

पश्य कर्मवशात् प्राप्तं भोज्यकाले च भोजनं।
हस्तोद्यमं विना वक्त्रे प्रविशेन् न कथञ्चन॥

आपको पूर्व पुण्य के उदय से भोजन प्राप्त हो गया। थाली आपके सामने रखी है और यदि हाथ न लगायें तो क्या थाली का भोजन स्वयं मुख में चला जायेगा ? बालक के पुण्य के उदय से माँ के आँचल में दूध आ जाता है किन्तु बालक आँचल तक मुँह न ले जाये तो क्या दूध स्वयं उसके मुँह में पहुँच जायेगा। मिलता भाग्य से है किन्तु वह भाग्य पुरुषार्थ से बनता है। भाग्य से मिले हुये को भी पुरुषार्थ पूर्वक भोगना पड़ता है, केवल ऐसे भाग्य से भोगने में नहीं आता।

उद्योगी प्राप्नुयादर्थं यशो वा मृत्युमेव वा।
मृत्युमेव निरुद्योगी न यशो नार्थ सम्पदः॥

जो पुरुषार्थी होता है वह जीवन में यश भी कमाता है, धन भी कमाता है, ज्ञान भी कमाता है। किन्तु जो निरुद्यमी होता है उसके जीवन में न यश होता है, न सुख होता है, न अर्थ होता है और न कोई सम्पत्ति होती है न संयम होता है, न ज्ञान होता है, न विवेक होता है उसके पास केवल मृत्यु तुल्य असफलता होती है इसीलिये

यदि जीवन में सफलता प्राप्त करना है तो पुरुषार्थ को बहुत महत्व देना चाहिए।

महानुभाव ! एक छोटा व्यक्ति पुरुषार्थ करते-करते एक सेठ बन जाता है। जो आज छोटी-छोटी कम्पनियों के मालिक हैं ऐसे व्यक्ति जब सम्पर्क में आये तब उनसे पूछा अपने बचपन का हाल-चाल कहो तो किसी ने बताया हमने फुटपाथ पर बैठकर के चने बेचे हैं, किसी ने कहा-हमने साइकिल की पंचर जोड़ी है। किसी ने कहा हमने चाय बेची, किसी ने कहा हमने पल्लेदारी की है ऐसे पचासों व्यक्ति मिले नाम लेना उचित नहीं उन्होंने अपने जीवन में इतनी प्रतिकूलता सहन की। स्ट्रीट लाइट में बैठकर पढ़े, दूसरों को पढ़ाने जाते फिर वहाँ से पैसा कमाकर अपनी फीस भरते थे। एक ड्रेस में ही पूरी साल निकाल देते थे ऐसी प्रतिकूलता में ही पूरा साल पढ़ते रहे और आज वहाँ पहुँच गये जिनकी सामर्थ्य ऐसी है कि आज वे 1000 व्यक्तियों को नि:शुल्क पढ़ा सकते हैं और पढ़ा भी रहे हैं।

महाराष्ट्र का एक छोटा सा बालक उसने अपना स्टेटमेंट दिया-पिता दिवंगत हो गये थे मेरी माँ इतनी गरीब थी कि दलिया खिलाती थी। 24 घंटे में 1 बार दलिया खाकर, पानी पीकर हम गुजारा करते थे और कहते-कहते उसकी आँखों से आँसू आ गये। वह 30-32 साल का बालक आज 3-4 कम्पनियों का मालिक है। पुरुषार्थ किया भगवान् के प्रति श्रद्धा कम नहीं की, एक छोटी सी दुकान डाली और आगे बढ़ता चला गया। जब पुरुषार्थ किया तभी तो भाग्य ने साथ दिया। ऐसे उदाहरण आपने भी सुने होंगे कि पुरुषार्थ के बल से व्यक्ति झोंपड़ी से महल तक पहुँच गया। एक व्यक्ति जो अपने मौहल्ले का पार्षद नहीं बन पाया वह आज राष्ट्रपति बन गया। पुरुषार्थ में बड़ी शक्ति है। जिस व्यक्ति को एक दिन में एक श्लोक भी याद नहीं होता था आज उसने पुरुषार्थ के बल से 1 दिन में 70-70 गाथायें याद कीं। जो व्यक्ति कभी एकासन नहीं कर पाता था, पुरुषार्थ के बल से

आज इतना प्रबल हो गया कि 8-8 उपवास करना भी उसके बाँये हाथ का खेल हो गया। ऐसे कई व्यक्ति मिले।

महानुभाव ! ये तो अपना मन है जैसा ढालना चाहो ढाल सकते हो। यह कुम्हार की गीली मिट्टी की तरह से है यदि दुर्बल बनाओगे तो दुर्बल बन जायेगा, बलवान् बनाओगे तो बलवान् बन जायेगा। पुरुषार्थ तुम्हारे हाथ में है जब पुरुषार्थ का किनारा पहले मजबूत हो तब भाग्य का किनारा स्वयं मजबूत बन जाता है। एक किनारे के सहारे पानी बहेगा, तब दूसरा किनारा अपने आप बन जायेगा। किन्तु पुरुषार्थ की दीवार के मजबूत हुये बिना दूसरी दीवार टिकाना असंभव है। व्यक्ति जब पहला कदम उठाता है तब पुनः दूसरा कदम स्वयं उठने लगता है वह यदि सोचे कि मैं पहला कदम न उठाऊँ दूसरा उठ जाये, पर नहीं, पहला कदम है पुरुषार्थ और दूसरा कदम है भाग्य। जब तक पहला कदम नहीं उठायेगा तब तक दूसरा कदम कैसे उठेगा।

न दैवमिति संचिन्त्य त्यजेदुद्योगमात्मनः।
अनुद्योगे तु कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्तुमिच्छति॥

यदि तुम्हारे पास कुण्टलों के कुण्टलों तिल भरे रखे हैं और तुम्हें तेल चाहिये तो क्या तिलों में से तेल स्वयं निकल कर आ जायेगा। या तुम्हारे पास दूध है तो क्या घी अपने आप टपक कर आ जायेगा ? पुरुषार्थ करके तिलों में से तेल निकाला जाता है, पुरुषार्थ करके दूध में से घी निकाला जा सकता है। जिसके पास तिल हैं उसके पास तेल है किन्तु वह मिलेगा पुरुषार्थ से। जिसके पास पुरुषार्थ करने की शक्ति है भाग्य उसका अनुकरण करता है किन्तु जिसके पास पुरुषार्थ करने की शक्ति है फिर भी न करे तो फिर भाग्य साथ नहीं देता।

महानुभाव ! पुरुषार्थ तो करना पड़ता है। संसार में न ऐसा कोई व्यक्ति था, न है और न होगा जो सिर्फ और सिर्फ भाग्य के भरोसे

बैठकर के फल की प्राप्ति कर ले। तरीके अलग-अलग हो सकते हैं। एक व्यक्ति दुकान पर बैठकर पुरुषार्थ कर रहा है। एक व्यक्ति मंदिर में पूजाकर पुरुषार्थ कर रहा है। उसने दुकान एक घंटे के लिये खोली और 10,000 रु. कमा लिये। एक व्यक्ति ने महीने भर दुकान खोली 2000 भी नहीं कमा पाया जबकि दुकान वह सुबह से खोलता है रात के 9 बजे तक। तो पुरुषार्थ दोनों ने किया एक ने मंदिर में बैठकर पुण्य किया, एक ने दुकान पर बैठकर। यद्यपि वह पुरुषार्थ जब भाग्य बन जाता है तब व्यक्ति पुरुषार्थ को भूल जाता है कि मैंने कभी पुरुषार्थ किया था, भाग्य-भाग्य रह जाता है।

किसी नगर में एक भद्र परिणामी, सरलस्वभावी दम्पत्ति रहते थे। उनके छह बेटे व दो बेटियाँ थी दोनों बेटियों की शादी हो गयी और छहों बेटों की भी शादी हो गयी। घर का खर्च पूरा चल रहा था किन्तु अब पिता जी वृद्ध हो गये, उनसे पुरुषार्थ नहीं होता। घर में दो भाई ऐसे थे जो बहुत मेहनत करते थे और सब भाई अपने-अपने काम में लगे रहते। सबसे बड़ा भाई सुबह-सुबह नहाया धोया सफेद कुर्ता पाजामा पहना, पगड़ी पहनी और घर से निकल जाता और वहाँ पहुँच जाता जहाँ पंचायत हो रही होती, वह पंच बन गया। दूसरा बेटा भी सुबह नहा धोकर निकल जाता दोपहर में भोजन करने आता पुनः रात में आता। वह देखता जूआ का गढ़ कहाँ है वहीं बैठ जाता और जूआ खेलता। तीसरे नंबर का बेटा व्यापारी था, सुबह से जाकर दुकान खोलता भोजन वहीं करता और पुनः काम पर लग गया। चौथा बेटा किसान था, सुबह तीन बजे से उठकर बैलों को लेकर उनके कंधों पर हल रखकर जाता और पूरे दिन खेत में काम करता उसकी पत्नी उसका भोजन लेकर वहीं जाती थी। पाँचवें नंबर का बेटा अंधा था। छटवाँ बेटा प्रातःकाल उठकर सीधे मंदिर जाता, वहीं नहाया-धोया वहीं स्वाध्याय सामायिक अभिषेक पूजन पाठ की। दोपहर में आया

भोजन तैयार मिल गया कर लिया पुनः पहुँचकर स्वाध्याय किया शाम को सामायिक की आरती की रात को 10-11 बजे लौट कर आता।

एक बार जो बेटा खेती करता था उसकी पत्नी ने उससे कहा-तुम सुबह से शाम तक काम करते हो और भाई तो कोई काम नहीं करते पिता जी से कह दो हम तो न्यारे होंगे। ऐसा ही व्यापारी की पत्नी ने भी कहा, उन दोनों ने कहा भाग्यवान मैं किससे न्यारा होऊँ ? उनसे जिस पिता ने बचपन से पाला पोसा बड़ा किया। एक भाई कमाता नहीं, एक अंधा, एक धर्मात्मा, एक जुआरी है बता किससे न्यारा होऊँ ? किन्तु पत्नी तो पत्नी रात भर मंत्र फूंकती रही तभी तो पति परमेश्वर बन जाता है। आचार्य तो मूर्ति में सूर्यमंत्र देते हैं वह मूर्ति भगवान् बन जाती है और ये महादेवी अपने पति के कान में सूर्यमंत्र देती हैं तो पति परमेश्वर हो जाता है।

एक दिन हुआ 2-3-4 दिन हुये वह तो आठों याम एक ही रट लगाती न्यारे हो जाओ, बेचारे क्या करते पहुँच गये माँ-बाप के पास। पिता ने पूछा कैसे आना हुआ तो बेटों की आँखों से आँसू आने लगे। अब पिता जी से कैसे कहूँ लौट कर आ गये। पत्नी ने पूछा क्या हुआ-बोले हम से नहीं कहा जाता वे बोली कोई बात नहीं तुमसे नहीं होता तो हम कह देते हैं। दोनों भाई (व्यापारी, किसान) और उनकी पत्नी गये। पिता जी से कहने लगे-कहने के साथ ही रोने लगे पत्नियों ने कहा ये क्या कहेंगे हम कहते हैं-घर में इन दोनों के अलावा कोई काम ही नहीं करता हम तो न्यारे होंगे, ये सुनकर माँ-बाप की आँखों से आँसू आ गये।

पिताजी बोले ठीक है तुम चाहते हो तो न्यारा कर देंगे किन्तु उससे पहले साझे में ही हम सब मिलकर एक तीर्थ यात्रा कर आयें बाद में किसने देखा है कौन अमीर बन जायेगा, कौन गरीब रह जायेगा। यह निर्णय सभी को पसंद आया। बैलगाड़ी बुलायी, सब

बेटे-बहु, 6 भाई, पत्नी, माता-पिता ऐसे 14 लोग चले। घर के मालिक पिताजी थे पैसा पिताजी की जेब में रहता। अन्य किसी के पास कम रहता। पहले दिन एक स्थान पर पड़ाव डाला पहले बेटे को बुलाया कहा-बेटा ये 100 रु. पकड़ो, बाजार जाओ हम 14 प्राणी हैं सबके लिये भोजन लेकर आओ, बैलों के लिये चारा लेकर आओ।

वह कहता है पिताजी की बुद्धि को क्या हो गया। वह चला गया, नगर में चक्कर लगा रहा था कि देखा एक जगह झगड़ा हो रहा था। वहाँ पहुँच गया। बात का पता लगाया-पूछा झगड़ा किस बात पर है ? तो वह बाई कहती है मेरा हार इसने चोरी किया है, दूसरी बोली मैं अपने बेटे की सौगंध खाती हूँ मैंने नहीं चुराया। वह पंच तो था ही, पूछा-तुमने हार कहाँ रखा था। बोली यहाँ रखा था, दूसरी से पूछा तू कब आयी बोली अभी आयी। ठीक है, जहाँ हार रखा था उस स्थान पर गया वहाँ जमीन पर कुछ निशान सा बना था, वह निशान एक बिल में जा रहा था।

उसने एक फावड़ा मंगाया फावड़े से उस बिल को खोदा उसमें हार रखा मिल गया। वह पहली बाई से बोला मैंने तुम्हारा झगड़ा निबटाया तुम मुझे क्या दोगी? बोली 5000 रु. और जिसके सिर से आक्षेप मिटा था उसने 2000 रु. दिए हार भी दे दिया। उसने 7000 रु. जेब में रखे और मूछों पर हाथ फेरता हुआ चल दिया, बाजार से हलवा, पूडी, रबड़ी आदि सब बनवा कर घर आया। नौकरों से बैलों के लिये चारा भी मंगवा लिया। पिताजी से कहा-ये रुपये और बचे हैं आप ले लो, सब भाई देखते रहे 100 रु. में इतना सामान भी आ गया और रुपये भी लौटा दिये।

दूसरे बेटे का नंबर आया, वह जुआरी था। पिताजी ने बुलाया 100 रु. दिये कहा हम 14 प्राणियों का भोजन व बैलों का चारा लेकर आओ। वह गया, चक्कर लगाता रहा पूछा चौराहे पर जाकर यहाँ जूआ

कहाँ खेला जाता है–पता चला इस मौहल्ले में खेला जाता है। वह वहाँ गया और शुरू हो गया, जेब में 100 रु. थे लगा दिये दाव पर और एक दाव में ही 100 के 900 हो गये, दुबारा 500 रु. का दाव लगाया हो गये 4500, 4500 के 5000 और 5000 के 45,000 हो गये बस अब क्या हाथ जोड़े जुहार साहब ! अब मैं जाता हूँ। बाजार गया बहुत से मिष्ठान्न पकवान लिये, बैलों के लिये भी अच्छा दाना–पानी लिया और नौकरों को बुलवाकर घर सामान भिजवाया। पिताजी से कहा–ये रहा सामान और बचे 40,000 रु. तुम रखो।

अब इसके बाद पिता जी ने तीसरे बेटे को बुलाया वह था व्यापारी। उसे भी 100 रु. दिये, वह भी गया बाजार में पूछा गेहूँ क्या भाव ! दूसरी–तीसरी दुकान से पूछा एक से खरीदा दूसरे को बेचा, कहीं से शक्कर खरीदी कहीं बेची, ऐसे करते–करते सुबह से शाम तक उसने 100 रु. के 300–400 रुपये कर लिये पसीने से चकनाचूर हो गया। शाम को सब्जी पराठें व बैलों के लिये भूसा खरीदकर घर पहुँचा, पिताजी से कहा पिता जी मेरे पास तो बस यही है।

अगला चौथा दिन आया, चौथे बेटे को बुलाया जो किसान था उसे भी 100 रु. दिये। वह कहता है लगता है पिताजी की बुद्धि सटिया गई 100 रु. में तो एक व्यक्ति का भोजन नहीं आयेगा इससे क्या होगा? पिताजी बोले बेटा मैं नहीं जानता, तू जाने तेरा काम, मैंने सबको 100 रु. दिये तुझे भी दे रहा हूँ। अब वह गया 100 रु. लेकर खेत पर वहाँ मूली गाजर रखीं थीं उसने वह 50 रु. में उठवाईं और घर ले गया। सभी ने गाजर मूली खायी। बैलों के लिए उनके पत्ते थे वे खिलाये।

अगला 5वाँ दिन आया अंधे बेटे को बुलाया 100 रु. दिए। वह बोला–पिताजी मैं तो अँधा हूँ–पिताजी बोले मैं नहीं जानता 100 रु. ले जा और समान ला। उसने कहा पिताजी आपकी आज्ञा हो तो पत्नी

को साथ ले जाऊँ उसकी पत्नी और वे दोनों रोते हुये गये। रास्ते में चलते-चलते एक पत्थर से ठोकर लगी, वे गिर पड़े। पति ने कहा इस पत्थर को हटाकर अलग रख दो वरना जो भी आयेगा वो ठोकर खाकर गिर पड़ेगा। पत्नी ने पत्थर हटाया, संयोग की बात पत्थर के हटाते ही वहाँ गढ़ा हुआ एक कलश जिसमें सोने की मोहरें थी वह मिला। पत्नी ने कलश में से 1 मोहर निकाली बाजार से सामान ले आयी और बाँकी का भरा कलश घर पर जाकर पिता जी को दे दिया।

अब अगले दिन उस पुजारी का नंबर आया उसे भी पिता ने 100 रु. दिये और कहा 14 लोगों का भोजन व बैलों का चारा ले आओ। वह बोला-पिताजी ये तो आपका काम है-पहले पेट पूजा बाद में काम दूजा किन्तु मैं तो पहले भगवान् की पूजा बाद में काम दूजा। वह गया सीधे 100 रु. की मंदिर की द्रव्य लेकर आया, मंदिर में जाकर खूब धूमधाम से पूजा की। संयोग की बात मंदिर का क्षेत्रपाल आया उसने देखा कौन भक्त इतनी भक्ति से पूजा कर रहा है। अवधिज्ञान से जाना इसके पिता और भाई आदि सभी वहाँ ठहरे हैं 100 रु. लेकर आया है भोजन पानी के लिये पर यहाँ पूजा कर रहा है। क्षेत्रपाल ने उस बालक का रूप बनाया और उसके निवास तक गाड़ियों की लाइन पर लाइन लगा दी।

भोजन आभूषण वस्त्र आदि अनेक सामानों की लाइन लगी है वह क्षेत्रपाल बालक का रूप बनाकर पहुँचा बोला-पिताजी ये सब आपकी कृपा है। भोजन पानी स्वयं आपके परिवार के लिये और पूरे गाँव के लिये है वस्त्रादि हैं आप जिसे चाहें दें, भेंट करें। पिताजी ने कहा ठीक है और वह देव अदृश्य हो गया, शाम को वह बालक पहुँचा बोला पिताजी मुझे क्षमा कर दो मैं तुम्हारा दुष्ट पुत्र हूँ, कुपुत्र हूँ मैं कुछ भी नहीं लाया 100 रु. की द्रव्य लेकर पूजा कर चला आया हूँ। पिताजी बोले बेटा ! मजाक करते हो तुमने तो गाड़ी की गाड़ी

खड़ी कर दी हैं, तू ही तो अभी आया था। बोला नहीं पिताजी मैं नहीं लाया, पिताजी बोले तू नहीं तेरा पुण्य लेकर आया है।

महानुभाव ! सभी पुत्र आये पिताजी ने कहा-अब बताओ कौन-कौन न्यारा होना चाहता है? देखो! छहों भाईयों ने अपना भाग्य परख लिया। किसान से कहा बेटा तुम्हारे भाग्य में गाजर-मूली ही बंधे हैं दिन भर कमाओ और यही खाओ। व्यापारी से कहा-तुम्हारे भाग्य में पराठें रोटी-बंधी हैं उसे ही खाओ। पंच से कहा तुम्हारा भाग्य बलवान्! है 100 के 7000 कमाकर लाया। जुआरी से कहा-तुम्हारा पुण्य बलवान् है तुमने पूर्व में पुण्य किया तुम्हें इस भव में राजा होना चाहिये किन्तु जूआ खेलकर पुण्य बर्बाद कर रहे हो जब तक पुण्य है तब तक जूआ में भी तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ने वाला किन्तु पुण्य का घड़ा फूटते ही पापों की झड़ी लग जायेगी। पुनः अंधे से कहा-तुमने पूर्व में पुण्य किया था, पाप भी किया-पाप से अंधे हुये किन्तु पुण्य से स्वर्ण कलश मिल गया इससे तुम्हारी जिंदगी पार हो जायेगी। पुजारी से कहा-तुम्हारी तो देव ही सहायता कर रहे हैं तुम्हें कौन दु:खी कर सकता है।

महानुभाव ! पुण्य से भाग्य से व्यक्ति बहुत कुछ प्राप्त करता है जब तीव्र पाप कर्म का उदय होता है तब उस पुरुषार्थ का फल तत्काल में नहीं मिलता है। आ. गुणभद्र स्वामी ने लिखा है-

पुरागर्भादिन्द्रो मुकुलितकर:किंकर इव
स्वयं सृष्टा सृष्टे; पतिरथ निधीनां निजसुत:।
क्षुधित्वाषण्मासान् स किल पुरुरप्याट जगती,
महोकेनाप्यस्मिन् विलसित मलंघ्यं हतविधे:॥

जो भगवान् आदिनाथ तीर्थंकर थे जिनके गर्भ में आने के छ: माह पूर्व कुबेर ने व्यवस्था बनवाई इन्द्र ने नगरी की रचना की, रत्नों

की वृष्टि करवायी, देवियों ने सेवा की। जन्म होने के उपरांत उनके भोजन वसन आभूषण की व्यवस्था इन्द्र स्वर्ग से ही करता रहा जब तक दीक्षा नहीं ली 83 लाख वर्ष पूर्व तक। जिनका एक बेटा चक्रवर्ती था 6 खण्ड का अधिपति, 96000 रानियों व नवनिधि, चौदह रत्नों का स्वामी था। दूसरा कामदेव तीसरा वृषभसेन प्रथम गणधर और अन्य बेटे सभी मोक्षगामी। जिनके 100-100 पुत्र लाखों पुत्र वधुयें। फिर भी वे आदिनाथ स्वामी मुनि अवस्था में 13 महीने 8 दिन निराहार रहे। यह है भाग्य। जब तीव्र पाप कर्म का उदय होता है तो तत्कालीन पुरुषार्थ फलदायी नहीं होता।

महत्व भाग्य का भी है पुरुषार्थ का भी फिर भी व्यक्ति को पुरुषार्थशील होना चाहिये। पुरुषार्थ से भी फल नहीं मिले तो समझना चाहिये मेरा अभी तीव्र पाप कर्म का उदय चल रहा है। अभी नहीं आगे फल अवश्य मिलेगा। भाग्य पुरुषार्थ के विषय में समझकर हम अपने जीवन में यही निर्णय लें कि सम्यक् पुरुषार्थ सदैव करते रहो सम्यक् पुरुषार्थ की आरी से पाप भी कट जाता है और जो पुरुषार्थ नहीं करता है उसका पुण्य चला जाता है, फिर व्यक्ति पाप का फल भोगने को मजबूर हो जाता है। अपने जीवन में भाग्य पुरुषार्थ दोनों को महत्व देते हुये अपने जीवन का सम्यक् संचालन करना चाहिये तभी हम सच्ची सुख शांति को प्राप्त कर सकते हैं।

आप सभी लोगों को वात्सल्यपूर्वक शुभाशीष आप सभी का मंगल हो, शुभ हो, कल्याण हो इन्हीं सद्भावनाओं के साथ...

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

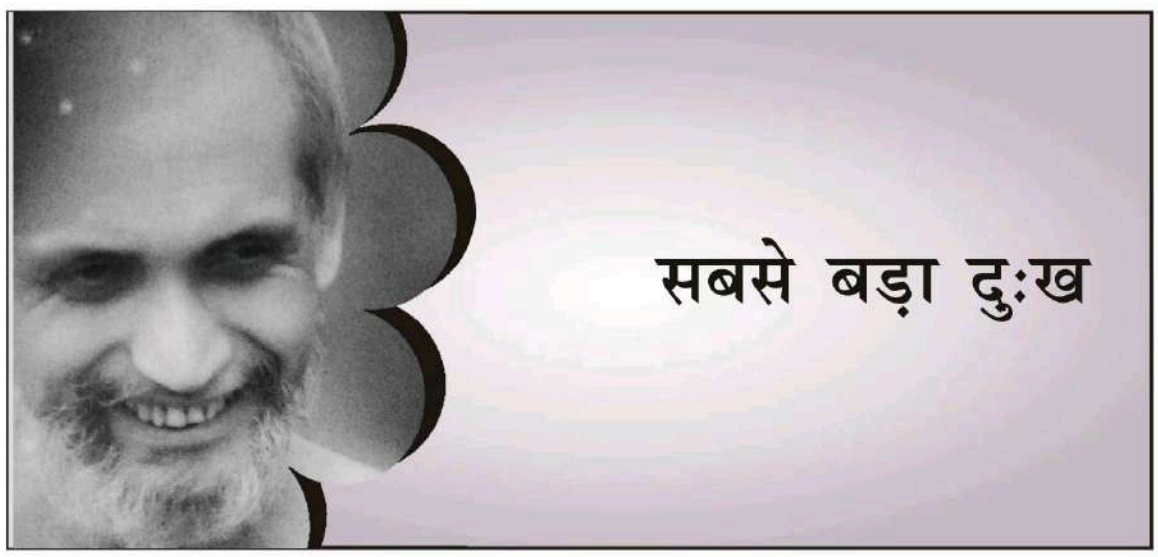

धन संग्रह का चक्कर बड़ा बुरा है धन चक्कर में मनुष्य कई बार घनचक्कर बन जाता है और वहीं से उसकी दु:खद कहानी प्रारंभ हो जाती है। हमारे शुभ परिणाम ही हमारी शाश्वत निधि है।

प्रकाश के अभाव में अंधकार में जीया हुआ जीवन नारकीय जीवन कहलाता है, दु:ख से परिपूरित जीवन कहलाता है। जीवन जो दु:खों से सहित है उसे अभिशाप का जीवन माना जाता है। संसार में यदि सबसे बड़ा दु:ख है तो वह है गरीबी का दु:ख, निर्धनता का दु:ख। जो व्यक्ति निर्धन है, गरीब है वह बहुत दु:खी है। निर्धनता के मायने केवल इतना नहीं है कि उसके पास बाह्य धन नहीं है निर्धनता के मायने सही रूप से तो यही है कि वह अंदर से खाली है।

अंदर से खाली राजा भी हो सकता है और एक भिखारी भी हो सकता है। यदि भिखारी और राजा दोनों खाली हैं तो दोनों एक बराबर हैं। राजा कई बार भिखारी से भी ज्यादा गरीब वृत्ति वाला हो सकता है। राजा का अंतरंग इतना खाली हो सकता है कि दूसरे देश को जीतकर, लूटकर भी तृप्ति न हो पाये। एक भिखारी का अंतरंग इतना

भरा हो सकता है कि उसे अपने लिये एक पाव आटा मिल गया तो उससे गुजारा कर लेता है, कोई दुबारा उसे आटा देने के लिये आये तो वह उसे हाथ जोड़कर के मना कर देगा बस! आज के लिये मेरे पास है, कल के लिये कल देखूँगा। कोई कहे कल के लिये रख लो तो वह कहेगा जिसने आज भेजा है वह कल भी भेज देगा, और यदि मेरे भाग्य में नहीं होगा तो यहाँ रखकर भी नष्ट हो जाएगा मैं भोग नहीं पाऊँगा, इस प्रकार की धारणा और मान्यता जिसकी होती है वह व्यक्ति जीवन में कभी दु:खानुभूति नहीं करता है। जिसकी धारणा मान्यता ऐसी नहीं है वह व्यक्ति दु:खी होता है।

देखो ! वर्तमान काल में भौतिक विकास चरम सीमा पर है, इतना भौतिक विकास प्रथमकाल से लेकर अभी तक कभी नहीं हुआ, न भोगभूमि के काल में न कर्म भूमि के काल में। यह जो विकास हुआ है वह पदार्थ का विकास है, जब-जब पदार्थ का विकास होता है तब-तब चेतना का ह्रास होता है, दोनों विकास एक साथ चल नहीं सकते। चौथे काल के पहले-पहले जो विकास था, नाना तरह की विद्यायें सिद्ध की जाती थीं वह भौतिक शक्ति के माध्यम से नहीं आध्यात्मिक शक्ति के माध्यम से। चतुर्थ काल में ऋषि, मुनि, योगी, संत धर्म साधना के माध्यम से नाना प्रकार की ऋद्धियाँ प्राप्त करते थे। विद्याधर लोग विद्याओं के माध्यम से कार्य सिद्ध कर लिया करते थे, वह विद्या कई प्रकार की होती थीं किन्तु आज पदार्थ का विकास हुआ है। पदार्थ के विकास के संबंध में देखा जाये तो व्यक्ति बहुत सम्पन्न है। पहले व्यक्ति यात्रा भी करता था तो पैदल या घुड़सवारी, हाथी पर या रथ पर या बैल गाड़ी के माध्यम से। यदि उसे शिखर जी जाना है तो वर्षों लग जाते थे लौटकर आने में किन्तु आज भौतिक विकास इतना हो गया है कि मन में विचार आया और आज ही शिखर जी पहुँच सकते हो। यदि कहीं समाचार

भेजना होता था दूरी भले ही 4-5 कोस की हो तो पत्रवाहक पत्र लेकर जाता था दो-चार दिन में समाचार लेकर पहुँच पाता था, किन्तु आज विज्ञान ने वह सभी दूरी पाट दी है, घर बैठे-बैठे एक सैकण्ड में कोई घटना घटित होती है पूरी दुनिया में आप उसे देख सकते हैं।

विकास तो काफी हुआ है जिनको एक साइकिल भी नसीब नहीं थी वे आज एरोप्लेन में घूम रहे हैं। जो पहले जड़ी-बूटियाँ खाते-खाते भी स्वस्थ नहीं हो पाते थे किन्तु आज वैज्ञानिक विकास इतना हुआ कि डॉक्टरों ने पार्ट को ही चेंज करना शुरू कर दिया। इतना सब कुछ होते हुए भी व्यक्ति दु:खी है। पहले व्यक्ति के पास पूरे जीवन काल में सौ रुपये भी इकट्ठे नहीं हो पाते थे। पहले लोग ऐसा कहते थे कि स्वयं व्यक्ति इतना सिर पर बोझ लेकर गया या एक बैल पर लादकर के ले गया तब अनाज बेचा, सोचा बाजार में एक रुपया मिल जायेगा तब भी एक रुपया बन नहीं पाया। यानि पहले एक रुपया प्राप्त करना भी बड़ा कठिन था।

आपको यदि ज्ञात हो आप अपनी दो-चार पीढ़ी पहले की बात सोचें तो घर में कभी एक लाख रुपये की गड्डी नहीं देखी होगी। 1 लाख क्या 1 हजार रुपया भी नहीं देखा होगा किन्तु आज लाख, दो लाख, दस लाख तो ऐसे हो गये हैं सामान्य से। आज जो सामान्य कार्य करने वाला व्यक्ति है वह भी गाड़ी में बैठकर चलना चाहता है। दिल्ली आदि में तो सफाई करने वाला स्वीपर भी गाड़ी में बैठकर जायेगा, उसके पास भी सब सुविधायें हैं। आज विज्ञान ने ये सब कुछ दिया है क्योंकि उस समय ये सब नहीं था यदि होता तो जब सीता जी का अपहरण हुआ था तब रामचन्द्र जी क्यों परेशान होते, एक फोन कर देते, पर उस समय मोबाइल व्यवस्था नहीं थी किंतु ये सब अभी हैं तो इन सब व्यवस्थाओं से सुख-शांति मिलना चाहिये किन्तु दरअसल में अशांति बढ़ी है, उसने झूठ बोलना सिखाया है धोखा देना सिखाया है।

दूसरी बात ये है कि जीवन में जब-जब भी भौतिक पदार्थों की मात्रा बढ़ती जाती है तब-तब जीवन में अशांति दु:ख कलह बढ़ती है और ज्यों-ज्यों व्यक्ति भौतिक संसाधनों का त्याग करता चला जाता है तो वह अपने में डूबने का प्रयास करता है अपने निकट पहुँच जाता है। भौतिक वस्तुयें हमें हमारी आत्मा से बहुत दूर ले जाती हैं किन्तु भौतिक वस्तुओं से जब हम तृप्त हो जाते हैं, उन्हें छोड़ देते हैं तब नि:संदेह अपनी आत्मा के वैभव को पहचान लेते हैं। जिसको भौतिक वैभव की चाह है वह आत्मा के वैभव को नहीं देख सकता और जिसने आत्मिक वैभव को देख लिया है वह भौतिक वैभव को मिट्टी ही मानता है सोना नहीं मान सकता।

जो बहिरंग से लगा हुआ है, वह अंतरंग से खाली होता है, जो अंतरंग से लगा हुआ है उसे बहिरंग से कुछ ओढ़ने की या लादने की आवश्यकता ही नहीं। अंतरंग से भरा हुआ ही वास्तव में भरा है यदि आपने कोई मटका नदी में छोड़ दिया और उस मटके के चारों तरफ खूब पानी है किन्तु मटका फिर भी अंदर से खाली है उसे भरा नहीं कह सकते। जो अंदर से भरा है वही वास्तव में भरा है, वही खरा है, जो बाहर से भरा है वह वास्तव में बुरा है। जो अंदर से खाली है वह बाहर से बटोरने का प्रयास करता है और जो अंदर से भरा है वह बटोरने का नहीं बांटने का भाव रखता है। जिसके पास अंदर में कुछ है वह बांटता चला जाता है और जिसके पास अंदर में कुछ नहीं है वह बाहर से इकट्ठा करता चला जाता है।

विश्व विजेता बनने का स्वप्न देखने वाला वह यूनान का सम्राट अलकजेंडर सिकन्दर जिसके बारे में आपने सुना होगा वह छोटे-छोटे देशों को जीतता हुआ आया और अब उसकी दृष्टि भारत की ओर गयी। उस समय भारत छोटे-छोटे देशों में विभक्त था, सभी अपने-अपने राज्य के बादशाह थे, कोई किसी से कम नहीं, कोई किसी के सामने झुकने को तैयार नहीं और तो और मन में ये भाव भी था कि सिंकदर

का साथ लेकर विश्व में भ्रमण करूँ। प्राय: करके हमारे देश में यही हुआ है बाहर के शत्रुओं को पनाह देश के बादशाहों ने ही दिया है अपने निजी शत्रुओं का दमन करने के लिये, किन्तु जो सर्पों को पालते हैं वे सुरक्षित नहीं रहते जिसने भी शत्रु को स्थान दिया वह उसी से घात को प्राप्त हुआ।

सिकन्दर जब भारत आया तो उसने सबसे पहले एक ही प्रश्न पूछा कि यहाँ सबसे ज्यादा आदरणीय, पूज्यनीय व सम्मानीय कौन है? लोगों ने कहा राजा-महाराजा, वह उनसे मिला उन्होंने कहा-हमारे भी कोई पूज्यनीय हैं वह हैं भगवान्। भगवान् को कौन बनाते हैं बोले संत महात्मा, संत महात्मा ने यदि कुछ कह दिया तो उनकी बात को कोई नकारता नहीं है। इस काल में यदि जीवंत कोई भगवान् हैं तो वो हमारे संत महात्मा हैं। पुन: पूछा सबसे बड़े संत कौन से माने जाते हैं जिनका सब आदर करें लोगों ने कहा जो फक्कड़ सन्यासी हैं, फकीर हैं, जिनके पास कुछ भी न हो, गृह परिग्रह आदि का त्याग किया हो, स्त्री पुत्रादि का त्याग किया हो यहाँ तक कि शरीर पर एक धागा भी नहीं रखते ऐसे दिगम्बर, वह सबसे बड़े माने जाते हैं। सिकन्दर ने कहा-मैं छोटे-मोटे व्यक्तियों को मारना नहीं चाहता हूँ तुम्हारे शासक को बस में करना चाहता हूँ और सैनिकों को भेजा कहा-जाओ उसे मेरे पास बुलाकर लाओ। सैनिक जंगल में एक दिगम्बर संत के पास पहुँचे।

सर्दी का समय था, पहाड़ के किनारे तलहटी से धूप आ रही थी, 10-5 दिगम्बर साधु पत्थर पर टिक कर बैठे हुये थे, सम्राट सिकन्दर के सैनिक जैसे ही पहुँचे उन्होंने निवेदन किया, हमारे सम्राट ने आपको स्मरण किया है वह आपसे मिलना चाहते हैं, साधु ने पहली बार तो कुछ कहा ही नहीं किन्तु सैनिकों के ज्यादा कहने पर उन्होंने कहा-पहली बात कि तुम्हारे सम्राट मिलना चाहते हैं किन्तु हम

उनसे नहीं मिलना चाहते हमें उनसे मिलने की कोई आवश्यकता नहीं है, सैनिकों ने कहा-क्या तुम इसका परिणाम जानते हो? संत ने कहा-हमें परिणाम जानने की आवश्यकता नहीं। ठीक है इसका परिणाम बहुत बुरा होगा यह कहकर वे चले आये। सिकन्दर के पास पहुँचे और उससे कहा-उस संत ने आपके पास आने को मना कर दिया और आपके प्रति कोई सम्मान जनक शब्द भी नहीं बोले। सिकन्दर ने सोचा-ये भारत के बहुत बड़े गौरव हैं, आदरणीय हैं, पूजनीय हैं, वंदनीय हैं, आराध्य हैं, भगवान् हैं मैंने उन्हें ऐसे बुलाया, हो सकता है उन्हें खराब लगा होगा, मुझे सम्मान करना चाहिये तो पुनः अपने सम्मानीय मंत्री आदि को भेजा और भेंट स्वरूप थालों में रत्नभरकर भेजे और सिकन्दर के मिलने की इच्छा प्रकट की। मुनिराज ने कहा-इन पत्थर के टुकड़ों का हम क्या करेंगे, इन्हें ले जाओ, जिसकी भूख इससे तृप्त होती है उसे जाकर खिलाओ।

मंत्री आदि भी वापस हो गये, सम्राट ने पूछा-कहो क्या हो गया? उन्होंने कहा आने को मना किया और आपकी भेंट को अस्वीकार कर दिया, सम्राट सिकन्दर ने कहा-मैं ही स्वयं चलकर के देखता हूँ वह तुरंत घोड़े पर सवार होकर चल दिया, पहुँचा और घोड़े पर बैठे-बैठे ही कहा-तुम क्या कहना चाहते हो? संतों ने कहा-हमें क्या कहने की आवश्यकता है, जब हमें कहने की आवश्यकता पड़ेगी तब हम तुम्हारे पास पहुँच जायेंगे, अभी तो तुम बताओ तुम क्या कहना चाहते हो यहाँ पर कैसे आये? सम्राट ने कहा-मैं सम्राट हूँ। दौलामस नाम के आचार्य ने कहा-तुम कैसे सम्राट? सम्राट तो हम हैं तुममें सम्राट जैसे कौन से लक्षण हैं? वह बोला सम्राट तो वह है जिसके पास बहुत वैभव हो और जिसे अन्य किसी वैभव की इच्छा न हो। तो आचार्य ने कहा-बस ! हमें अन्य किसी वैभव की इच्छा नहीं है, हम तृप्त हो गये। बहुत बड़ी सेना क्यों चाहिये, सुरक्षा के लिये, हमें सुरक्षा का

भय नहीं है इसीलिये हम तुमसे ज्यादा सुरक्षित हैं, हमारा कोई शत्रु नहीं है किसी आक्रमण का भय नहीं है अत: शस्त्रों की आवश्यकता नहीं है।

बड़ा मुश्किल हुआ, सिकन्दर कहाँ तक सहन करता, उसे आवेश आया और तलवार निकालकर कहता है-तुम किससे बात करते हो? ज्यादा पहेलियाँ न बुझाओ अभी इस तलवार से तुम्हारे दो टुकड़े कर दूँगा, आचार्य को हँसी आ गयी, तुम्हारे पास कोई ऐसी तलवार है जो मेरे दो टुकड़े कर सकती है, हम तो संसार में कब से खोज रहे थे हमें तो कहीं मिली ही नहीं वह और खींझ गया। आचार्य ने कहा-आत्मा को मारने वाली कोई चीज संसार में है नहीं तुम जिसको मारोगे वह तो शरीर है वह तो मरा है उसे कौन जीवित कर सकता है और जो आत्मा है उसे कोई मार नहीं सकता, रख लो अपनी तलवार को। उसे बड़ा गुस्सा आया कि किसी में इतनी निर्भीकता भी हो सकती है कि तलवार गर्दन पर रखी हो और उसे मरने का भय तो दूर, चेहरे पर शिकन भी न हो। इसे कोई लोभ भय लालच नहीं यह ऐसा-कैसा संत है, पुन: घोड़े से नीचे उतरकर आता है बताओ मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ? बस सेवा बहुत हो गई, साइड में हो जा वह जो धूप आ रही है जिसे तू दे नहीं सकता उसे छीनने का तुझे क्या अधिकार है।

सम्राट सिकन्दर के पैरों से तो जमीन ही खिसक गयी कि ऐसा भी हो सकता है, वह चरणों में नत मस्तक हो गया, तलवार को दूर फेंक दिया और कहा-बस मैं तुम्हें लेकर के चलना चाहता हूँ, दौलामस आचार्य कहते हैं हमें तुम्हारे साथ जाने की आवश्यकता नहीं है हम अपनी अंदर की यात्रा में निमग्न रहते हैं। जिसे अंदर की यात्रा करनी हो वह बाहर में मग्न नहीं होते हैं और तुम जिस किसी भी उद्देश्य से निकले हो किन्तु तुम्हारा शरीर अब विदा लेने की प्रतीक्षा

में है। उस समय सम्राट सिकन्दर की आयु 32 साल की थी, 32 वर्ष का युवा था, तब उसके साथ कालांस (कल्याण) नाम के मुनि चलने को तैयार हुये उन्होंने मार्ग में बता दिया तुमने जो कुछ भी युद्ध में प्राप्त किया वह साथ में जाने वाला नहीं है। वह सिकंदर जो स्वयं को सूर्य पुत्र कहता था उसने कहा मैंने बाहर की लड़ाई करके जो धन प्राप्त किया है वह मेरे साथ जा न सकेगा। इसलिये उन्होंने संसार के प्राणियों को जीवंत उपदेश देने के लिये कहा-कि मृत्यु के समय मेरे दोनों हाथों को अर्थी से बाहर निकाल देना एक हाथ को काला कर देना, एक हाथ को सफेद, मेरी अर्थी को कंधा देने में डॉक्टर वैद्य, हकीम आदि हों जिससे जमाना जान ले कि डॉ. वैद्य, हकीम केवल रोग का उपचार कर सकते हैं किन्तु मृत्यु की दवा नहीं कर सकते हैं और दोनों हाथों को देखकर जमाना जान सके कि व्यक्ति खाली हाथ आता है और खाली हाथ जाता है। केवल अपना पुण्य-पाप साथ लेकर आता जाता है और सब यहाँ छोड़ जाता है।

महानुभाव ! सम्राट सिकंदर जैसा विश्व सम्राट बनने का सपना देखने वाला अपने साथ कुछ भी नहीं ले गया गरीब रहा और जो गरीब रहता है वह जीवन भर दु:खी रहता है, जिसके अंदर से अमीरता आ जाती है अंदर से भर जाता है वह स्वयं भी परिपूर्ण होता है और दूसरों को भी शांति देने वाला होता है। जो कलश अंदर से पानी से भरा है वह अपने में पूर्ण है और दूसरों को तृप्ति देने वाला हो सकता है किन्तु जो कलश अंदर से खाली हो बाहर कितना भी पानी हो उससे अंदर का खालीपन भर नहीं सकता। कहने का आशय यह है कि जीवन में जो खालीपन है वही दु:ख का कारण है।

कई बार ऐसा भी होता है व्यक्ति के पास बाहर में कोई वस्तु न हो किन्तु अंदर की सम्पन्नता का जिसे बोध हो जाता है, ऐसा व्यक्ति जीवन में कभी दु:खी नहीं हो सकता। जिसे अंदर की वैभवता का

बोध नहीं होता, जिसके ज्ञान के चक्षु उन्मीलित नहीं होते तब तक वह दु:खी होता रहता है, तब तक वह बाहर की वस्तु पकड़ता रहता है, बाहर की वृत्तियों को पकड़ता रहता है, बाहर की ख्याति-पूजा-लाभ को पकड़ता है, वह बाहर की छींट से अंदर की अग्नि को बुझाना चाहता है यदि मटके में अग्नि रखी है और केवल बाहर छींटा मारते रहोगे तो अग्नि बुझेगी नहीं अंदर पानी डालना पड़ेगा। यह इच्छा की अग्नि ऐसी है जो जल से भी तृप्त नहीं होती है। वह त्याग के माध्यम से शांत होती है। जिसने इच्छाओं को शांत किया उसने ही ईशत्व को प्राप्त किया है।

केवल संक्षेप में इतना ही कहना है कि अंदर की शक्ति को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करो, पर पदार्थों में न सुख आज है, न था, न मिलेगा, इसलिये जब चाहो तब जाग जाना किंतु इस बात को नोट कर लेना कि मुझे सुखशांति अंदर से मिलेगी। अंदर के वैभव को निहारने का सम्यक् पुरुषार्थ करो, इसी में आत्मा का कल्याण निहित है। मेरी आप सबके प्रति यही मंगल भावना है कि आप सभी संसार के दु:खों का नहीं अपनी आत्मा के वैभव का अनुभव करते हुये शाश्वत सुख के पथिक बनें। इसी के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

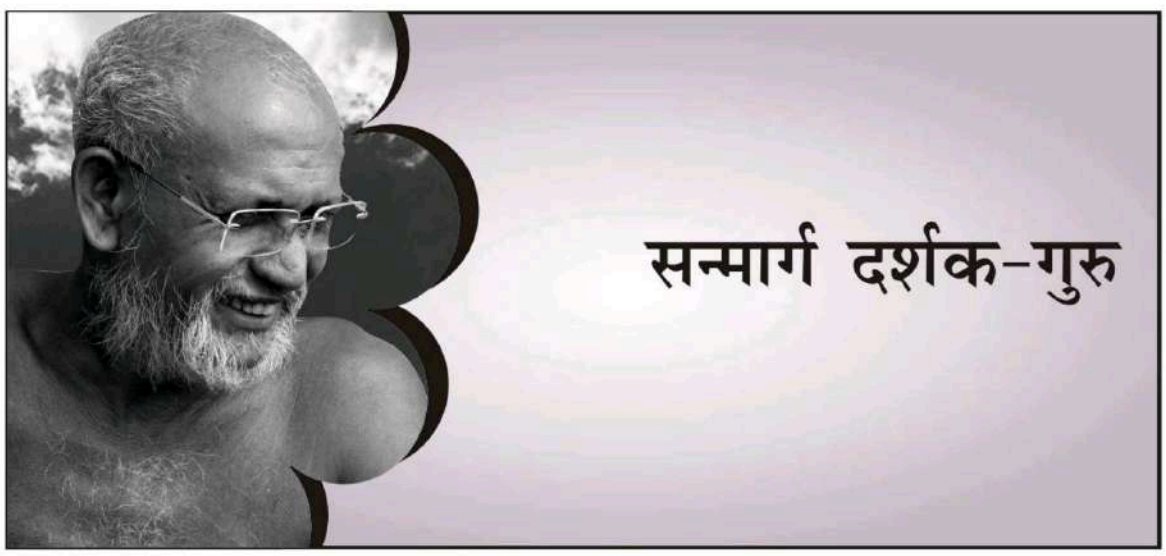

''चींटी को अगर मुम्बई से दिल्ली जाना हो तो वो पूरी उम्र भी चलती रहे फिर भी पहुँच नहीं पाती है, लेकिन किसी इंसान के वस्त्र के ऊपर चढ़ जाये तो एक दिन में पहुँच जाती है, इसी प्रकार किसी सन्मार्ग दृष्टा गुरु का हाथ पकड़ लेने से सफलता पूर्वक गंतव्य स्थान पर (मोक्ष) पहुँच सकते हैं।''

जो व्यक्ति जानता है किन्तु मानता नहीं वह घातक है। जिस सम्यक् क्रिया को जान तो लिया किन्तु उस पर विश्वास नहीं किया और ना ही माना तब तक अपने को सार्थक न कर पायेंगे। आपने किसी भी ज्ञान को प्राप्त किया और तदनुरूप क्रिया नहीं की तो प्राप्ति या विषय वस्तु की उपलब्धि निरर्थक है। भले ही थोड़ा जानो किन्तु उसे मानो। इससे तो जो व्यक्ति कुछ भी नहीं जानता वह ज्यादा अच्छा है कम से कम यही कहा जायेगा कि वह जानता नहीं, यदि उससे गलती हो भी जाये तो वह क्षम्य हो सकती है, किन्तु जो जानता है उसके बाद भी न मानकर जो गलती करता है वह क्षम्य नहीं हो पाती। जानने के बाद अहंकार उत्पन्न हो जाता है और जब तक नहीं जानता तब तक वह ज्यादा विनम्र रहता है।

पढ़े लिखे मूर्ख को समझाना ज्यादा कठिन है बजाय किसी अनपढ़ व्यक्ति के। महानुभाव ! ये यथार्थ सत्य है जब तक हम जान रहे हैं वह तब तक सफल और सार्थक नहीं है जब तक कि हमारी क्रिया उसी के अनुरूप न हो। जो सही है उसे सही मानो जो गलत है उसे गलत जानो और मानो तभी जीवन की गाड़ी बैंलेस रूप से चलायी जा सकती है, अन्यथा नहीं। अत: अपने जीवन को जीवंत रूप जानो, मृतरूप नहीं। तुम्हारे जीवन की उन्नति तभी संभव है जब उसे जीवंत रूप जानोगे, मानोगे और तदनुरूप चलोगे। खाली जानने से भी काम नहीं चलेगा, खाली मानने से भी काम नहीं चलेगा, काम तो तभी चलेगा जब सही रूप से जानकर और मानकर उस रूप क्रिया करोगे।

''देखो भालो चलो'' माँ कहती है, गुरु कहते हैं, शिक्षक कहते हैं, देखो अर्थात् सही है या गलत, रास्ता ऊँचा या नीचा तो नहीं है। भालो अर्थात् जानकारी प्राप्त करो क्या ये रास्ता हमारी मंजिल की ओर ही जाता है क्या इस पर रात्रि में चलना ठीक है या नहीं, कहीं रात को इस रास्ते पर चोरी-डकैती तो नहीं होती है, आदि-आदि जानकारी प्राप्त करना। फिर चलो अर्थात् अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिये गमन करना प्रारम्भ कर दो।

यदि आपने देख भी लिया और जान भी लिया और उस पर चले नहीं तो क्या आप अपने लक्ष्य तक पहुँच पाओगे ? नहीं, कभी नहीं बस वहीं उसी मील के पत्थर की तरह टिके रहने से कभी किसी को मंजिल की प्राप्ति नहीं हो पाती है। जिन्हें ये तो पता है कि रास्ता ये ही है सबको बतायेंगे भी, वह मील का पत्थर जिस पर कि.मी. लिखे रहते हैं वह उस मार्ग से जाने वाले हर व्यक्ति को दर्शाता है कि यहाँ से कितनी दूरी पर क्या है किन्तु वे मील के पत्थर क्या स्वयं कभी गमन करते हैं ? नहीं।

जीवन को जीवंत रूप से जीने के लिये, उन्नतशील रहने के लिये देखभाल कर चलना चाहिये। आज देश में बहुत उन्नति हो रही है, शहर क्या गाँव-गाँव में भी उन्नति हो रही है। आज व्यक्ति ऐसी उन्नति करता है जो दूसरों को दिखा सके। जीवन में जीवंतता तभी आ सकती है जब किसी उपलब्धि को किसी को बताया न जा सके, हमारी वह उपलब्धि कोई छीन न सके। किन्तु वह उन्नति रूप उपलब्धि आज पौद्‌गलिक सम्पत्ति मात्र ही रह गयी है। आज व्यक्ति ने पुद्‌गल के चंद टुकड़ों के पीछे अपना मोती सा जीवन नरक रूप बना लिया है। ये पुद्‌गल के टुकड़े हमारी वास्तविक उन्नति व हमारे आत्म विकास में सहायक नहीं बाधक हैं। आज ऊँची बिल्डिंग, चिकनी सड़क, ऊँचे मकान महल, इमारतें, टी.वी. सिनेमा, कम्प्यूटर, मोबाइल, गाड़ी नौकर-चाकर बस इन्हीं को व्यक्ति अपना स्टेटस मानता है। किन्तु हाय रे मानव ! जिसकी चकाचौंध में तू अंधा हुये जा रहा है उसी की प्राप्ति में दिन रात कोल्हू के बैल की तरह लगा है और सोच रहा है कि मैंने बहुत उन्नति कर ली है। दु:ख में, सुख में पुद्‌गल के अलावा अन्य कोई वस्तु दिखाई देती ही नहीं क्योंकि ये आँखें बाहर की मूर्तिक वस्तुयें ही देख सकती हैं। बाहर की आँखों से अमूर्तिक वस्तुयें नहीं देखी जा सकतीं।

जब हम अपने आपको देखने में असमर्थ हैं, तब हमें एक सहारे की आवश्यकता होती है। वृद्ध को लाठी का सहारा तो बालक को माँ की अंगुली का सहारा है। बालक को लाठी नहीं दी जा सकती और वृद्ध को तीन पहिये वाली गाड़ी नहीं दी जा सकती। वृद्ध जानता है कि उसके शरीर में शक्ति नहीं है इसलिये कहीं पैर रखता है कहीं पैर पड़ता है इसलिये उसके हाथ में लाठी चाहिये। उसे ज्ञात है कि माँ-बाप की अंगुली उसे काम न दे पायेगी और किसी बालक के कंधे पर हाथ रखकर चलता है तो बालक कहता है दादा मेरा कंधा

दु:खने लगा। और यदि कोई बालक है तो उसे सहारे के लिये माँ की अंगुली आवश्यक है, तीन पहिये की काठ की गाड़ी भी आवश्यक है, वह सहारा आवश्यक है। सहारा तो हर क्षेत्र में आवश्यक है क्योंकि प्रारंभ से हर व्यक्ति बेसहारा होता है जब किसी का सहारा मिल जाता है, इशारा मिल जाता है तब अपने आप में परिपक्व हो जाता है, पूर्ण हो जाता है। जो आज सिद्ध बन गये हैं उन्होंने भी किसी सिद्ध का सहारा लिया था, जो आज अरिहंत बन गये उन्होंने भी पहले किसी अरिहंत का सहारा लिया था, आज जो भी कोई मुनि, आचार्य, उपाध्याय बने हैं उन्होंने भी किसी आचार्य, उपाध्याय, साधु का सहारा लिया है।

जो आज वकील बना है उसने भी किसी का सहारा लिया था, जो आज डॉक्टर बना है उसने भी किसी डॉक्टर का सहारा लिया था, जो आज उद्योगपति है उसने भी किसी उद्योगपति का सहारा लिया था, बिना सहारे के और बिना उसके इशारे के उपलब्धि जीवन में हो ही नहीं सकती।

महानुभाव! आपको भी जीवन में भावना भानी चाहिये कि मैं भी अवलोकन करूँ उनका जिन्होंने अपनी आत्मा का अवलोकन कर लिया है। तुम्हें भी उनके इशारे पर चलना चाहिये जो आत्म कल्याण कर चुके हैं। आत्मा का अवलोकन करने वाले अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी सिद्धालय में विराजमान हैं उनका सहारा कैसे लें? उनकी अंगुली कैसे पकड़ें? वे पकड़ में नहीं आते। अरिहंत भगवान् का सहारा लो, क्योंकि वे देखने में आते हैं, किन्तु आज वे हैं नहीं, अब कौन बचा? आचार्य-उपाध्याय साधु। पाँच परमेष्ठी में से देव कहा जाता है-अरिहंत और सिद्ध को और आचार्य उपाध्याय साधु को गुरु कहा जाता है।

इतना ही नहीं उन्हें गुरुदेव कहा जाता है क्योंकि देव का ज्ञान कराने वाले भी वही होते हैं, चाहे भले ही देव तुम्हें गुरु का ज्ञान न करा पायें किन्तु गुरु ही ऐसे होते हैं जो देव का ज्ञान करा देते हैं। इसलिये अरिहंत को प्रथम स्थान पर रखा गया है, सिद्धों को वे गुरु मानकर दीक्षा लेते हैं, गुरु का सहारा बनाकर वे अरिहंत आगे बढ़ते हैं। अरिहंत भगवान् उपदेश देते हैं, दिखते हैं किन्तु सिद्ध अशरीरी हैं न दिखते हैं न बोलते। अरिहंत भगवान् के इशारे को समझने के लिये भी बुद्धि चाहिये, क्या पता तुम इशारा समझो न समझो और इशारा समझने के लिये भी पहले किसी का सहारा चाहिये।

मंजिल तक पहुँचने वाला सहारा नहीं दे सकता किन्तु हम इतने प्रज्ञ भी नहीं कि इशारा समझ सकें, हमें तो आवश्यकता है सन्मार्ग दर्शक की। प्रभु का सहारा और इशारा क्या करेगा जब तक हम बुद्धि सम्पन्न, प्रज्ञा सम्पन्न नहीं हैं-जैसे कोई छोटा बालक हो और उसे हम इशारा करें तो क्या वह समझ पायेगा, नहीं, पहले उसे अंगुली का सहारा देकर अपने तक लाने की आवश्यकता है, क्योंकि उसमें अभी इतनी बुद्धि नहीं कि वह हमारा इशारा समझ सके। इसीलिये आज हमें अपनी आत्मा का अवलोकन करने के लिये, अपने आप को देखने के लिये एक सहारे की आवश्यकता है, एक सन्मार्ग दर्शक की आवश्यकता है।

हे गुरुवर शाश्वत सुख दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है॥

हमें उसकी आवश्यकता है जो सत्ता का दिग्दर्शन कराये, सन्मार्ग को दिखाये यदि उस सन्मार्ग का दिग्दर्शन न हो तो हमारे पैरों में चाहे दौड़ने की शक्ति भी क्यों न हो हम मंजिल को नहीं पा सकेंगे। जिसके पैरों में ज्यादा शक्ति न हो किन्तु सन्मार्ग दर्शक हो तो धीमे-धीमे आपको चलायेगा, आपको प्रेरणा देगा, तुम्हारे प्राणों में शक्ति

का संचार करेगा वह तुम्हें आज नहीं तो कल मंजिल तक पहुँचा देगा। तो पहला होता है-

उपदेशक-जो तुम्हारे समीप में बैठकर के उपदेश देता है। उप (समीप) तुम्हारे पास बैठकर देशना देने से आशय जिस भाषा में तुम बोलते हो वह उस भाषा में बोलता है। उपदेशक जैसे माँ होती है-जो तोतली भाषा में बोलकर बेटे को समझाती है, मात्र इसलिये जिससे बालक धीरे-धीरे उच्चारण करना सीख जाये। यदि प्रारंभ से ही माँ कठोर शब्द कहकर समझाना प्रारंभ कर दे तो बालक सीख न पाये। पहले वह बालक के समीप में बैठ जाये, तभी वह उपदेशक है, जो बालक से बहुत दूर बैठे जैसे सिद्ध परमेष्ठी वे हमारे उपदेशक नहीं हो सकते, वे हमारे पास बैठ नहीं सकते, उठ नहीं सकते। आचार्य उपाध्याय साधु हमारे उपदेशक हैं, हम उनके पास बैठ सकते हैं वे हमारे पास बैठ सकते हैं। एक जमीन पर खड़े होकर हम उन्हें कुछ दे सकते हैं और उनसे ले सकते हैं, एक ही स्थान पर वे हमें उपदेश देते हैं और हम स्वीकार करते हैं। जब निर्देश दिया जाता है तो निर्देश देने वाला व्यक्ति थोड़ा ऊँचा होता है, इशारा करता है कि रास्ता यूँ जायेगा या यूँ अथवा पहले पूरब में जाना है या पश्चिम में जाना है, जो भी इशारा देता है वह आगे होकर इशारा देता है उसे ऊँचा होना चाहिये तभी सभी लोग समझ सकेंगे। यदि निर्देशक तुमसे छोटा है अथवा पीछे है तो वह तुम्हें देख ही नहीं सकेगा और तुम उसके निर्देश का पालन ही न कर सकोगे। इसलिये उपदेशक तुम्हारे समीप में बैठने वाला होता है।

निर्देशक-तुमसे बहुत आगे होता है। तो जो हमारी भावनाओं को, भाषा को, व्यवहार को समझ लेता है वही हमें सही तरह से समझा सकता है। जो वैद्य हमारी नाड़ी को, हमारी प्रकृति को समझ ले हमारे खान-पान को समझ ले वही हमारे रोग का निदान कर

सकता है। वैद्य चाहे कितना ही बड़ा बना रहे हमारी प्रकृति जाने बिना हमारी विकृति को दूर नहीं कर सकता। हम उसी के निर्देश को जल्दी समझ सकते हैं जो हमारे साथ ताल-मेल बैठाकर चल सके। कई बार अच्छे-अच्छे अध्यापक एक छोटे बालक को नहीं पढ़ा पाते और उसी छोटे बालक को छोटी-छोटी मैडम अच्छी तरह पढ़ा देती हैं। बच्चे ये नहीं देखते तुम्हें कितना आता है बच्चों को तो प्यार से, सरलता से सहजता से समझाने पर जल्दी समझ आता है।

तो पहले उपदेश, फिर निर्देश उसके बाद आदेश होता है। सबसे पहले आदेश नहीं दिये जाते। निर्देश, उपदेश, आदेश देने का अधिकार गुरु को होता है। गुरु शब्द की व्याख्या करते हुये मनीषियों ने कहा-

गुशब्दस्त्वंधकारे च रुशब्दस्तन्निवर्तका:।
अंधकार विनिश्यत्वात् गुरुसंज्ञा विधीयते॥

गुरु शब्द में दो अक्षर हैं-पहला गु-जिसका अर्थ होता है अंधकार और दूसरा अक्षर है-रु-नाश करने वाला-जो अंधकार का नाश करे। तो सूर्य गुरु है? नहीं वह तो बाहर के अंधकार को दूर करने वाला है, गुरु तो अंदर के अंधकार को दूर करने वाला होता है। कोटि सूर्य कोटि चन्द्रमा भी जिस अंधकार का नाश नहीं कर सकते उस अंधकार को नष्ट करने वाले गुरु हैं। आप पढ़ते हैं-

अज्ञान-तिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम:॥

अज्ञान के अंधकार को नष्ट करने के लिए ज्ञानरूपी शलाका के द्वारा जो भव्य जीवों के नेत्रों को उन्मीलित करते हैं, वही गुरु हैं अथवा गुरु शब्द की और व्याख्या करेंगे तो चार अक्षर हैं।

पहला-ग, दूसरा उ, तीसरा र चौथा उ इन चार अक्षर का अर्थ आप समझ लें-

ग-गरिमा युक्त उ-उन्नतशील

र-रहस्य पूर्ण उ-उद्घाटक

जो स्वयं गरिमा युक्त हो, स्वयं उन्नतशील हो और जो दूसरों में छिपे रहस्यों को उद्घाटित कर सके वही वास्तव में गुरु है। अथवा

गुरु-अर्थात् जिसके अंदर दूसरों को खींचने की, आकर्षित करने की शक्ति हो। चुम्बक में गुरुत्वाकर्षण तो है किन्तु सामने 10 टन का लोहे का गोला रखा है तो चुंबक स्वयं ही खिची चली जायेगी किन्तु गुरु ऐसा हो जो दूसरों को अपनी ओर खींच सके, अंधकार से प्रकाश की ओर। अथवा गुरु शब्द का अर्थ है-गुरु माने आत्मा जो व्यक्ति की आत्मा के अंदर ऐसा गुरुत्वाकर्षण पैदा कर दे, उसके मन को ऐसी चुम्बक बना दे, उसका मन, उसका वचन, उसका तन, गुरु के प्रति (आत्मा) समर्पित हो जाये, खिंचा चला जाये, तीनों योग बाहर में न भटकें। जो आकर्षण पैदा करने वाला होता है वह वास्तव में गुरु होता है।

गुरु की परिभाषा हम ऐसे भी समझ सकते हैं-

''जो बुद्धि के धरातल पर नहीं प्रज्ञा के धरातल पर खड़ा होकर जीता है वह गुरु है।''

बुद्धि के धरातल पर तो दुनिया के सभी लोग जीते हैं किन्तु जो प्रज्ञा के धरातल पर खड़ा हो जाये वह गुरु है। बुद्धि तो वह कहलाती है जो अच्छे बुरे का निर्णय कर दे, बुद्धि वह कहलाती है जो सामने वाले को झुका दे नतमस्तक कर दे, निरुत्तर कर दे, दुनिया जिसे कहे कि इसकी बुद्धि का सब लोहा मानते हैं। किन्तु प्रज्ञा इससे अलग है-बुद्धि बुद्धिमानों के पास हो यह जरूरी नहीं है प्रज्ञा-प्रकृष्ट व्यक्ति के पास होती है जिसका ज्ञान संयम की धारा से धुल गया है, जिसके ज्ञान में निर्मलता आ गयी है। वह निर्मलता संयम की धारा से धुलने पर आती है। जब तक संयम की धारा चेतना पर नहीं पड़ती, ध्यान की अग्नि में जब तक वह नहीं जला तब तक ज्ञान प्रज्ज्वलित नहीं होता।

जिसके अंदर ज्ञान का दीप प्रज्ज्वलित हो गया है वह प्रज्ञावान् है। माचिस की तिली जेब में रखना यह बुद्धिमानी है, उस तिली को जलाना प्रकाशित करना यह प्रज्ञा का खेल है। माचिस की तिली का ढेर अपनी जेब में रखने से प्रकाश नहीं मिलेगा और एक तिली का भी प्रकाश दिखाई दे रहा है तो यह प्रज्ञा है। जब तक बुद्धि की परीक्षा नहीं की जाती तब तक प्रज्ञा का जन्म नहीं होता। तो महानुभाव ! संसार में शिक्षक तो बहुत मिल जायेंगे निरीक्षक, परीक्षक तो बहुत मिल जायेंगे किन्तु प्रज्ञा सम्पन्न मिलना बहुत कठिन है स्थिति प्रज्ञ मिलना मुश्किल है। गीता में बड़ा अच्छा शब्द दिया है-स्थिति प्रज्ञ।

बुद्ध परम्परा में कहते हैं-बुद्ध जो बोधि को प्राप्त हो गया। गीता में श्री कृष्ण नारायण ने इसकी अलग व्याख्या की और श्रमणों ने इसे कहा-आत्मलीनता, निश्चय अवस्था, निर्विकल्प ध्यान, अभेद रत्नत्रय अभेद अवस्था, प्रज्ञा की अवस्था।

जीवे मरणे लाहा लाहे संजोग विप्प जोगे य।
बंधुरिह सुह दुक्खादो समदा सामायियं णाम॥

जहाँ समता की दशा है, जिसमें जीवन मरण के प्रति समभाव, लाभ-अलाभ के प्रति समभाव, शत्रु मित्र के प्रति समभाव, काँच कनक के प्रति समभाव, सबके प्रति समता का भाव आ जाये वह प्रज्ञा की दशा है, स्थिति प्रज्ञ की दशा है। उस दशा की प्राप्ति है तो बहुत कठिन, किन्तु असंभव नहीं है, कोई भी काम असंभव नहीं है सब संभव हैं। जो काम किसी एक व्यक्ति के द्वारा संभव है तो यह कह सकते हैं कि यह काम संभव है। यदि वह किसी एक के लिये असंभव होता तो वह सबके लिये ही असंभव होता। यदि एक व्यक्ति प्रज्ञा के धरातल पर खड़े होकर बोधि प्राप्त कर सकता है तो हम भी प्राप्त कर सकते हैं। यह सब संभव है असंभव कुछ भी नहीं किन्तु हाँ जब तक किसी सन्मार्ग दर्शक का सहारा नहीं है तब तक तो

असंभव सा ही प्रतीत होता है। छोटी सी नदी भी तैरना असंभव है यदि नाव नहीं हो तो यदि नाव भी हो और नाविक भी हो तो बड़ी नदी को भी पार करने की चिंता नहीं है। भगवान् के सामने हम कहते हैं-

अद्याभवत् सफलता नयन-द्वयस्य,
देव! त्वदीय चरणाम्बुज-वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोक तिलक! प्रतिभासते मे,
संसार वारिधि रयं चुलुक-प्रमाणः॥

यह संसार ऐसा लग रहा है अंजली भर पानी सा, क्योंकि मैं भगवान् आपके सामने खड़ा हूँ, और तुम्हारे सामने नहीं होता तो कहता-हे भगवान् ! संसार तो बड़ा निस्सीम है, ऐसा है, वैसा है, सब कुछ आकर कहता और अब तुम संसार के किनारे पर खड़े हो मुझे क्या चिंता, मैंने तो तुम्हारा हाथ पकड़ लिया और तुमने मेरा, डर तो तब तक था जब तक हाथ पकड़ में नहीं आया था, डर तब तक था, जब डोर हमारी उनके हाथ में नहीं थी, डर तब तक था जब तक हमारा उनसे कोई संबंध जुड़ा नहीं था। जब किसी बड़े व्यक्ति से तुम्हारा नाता हो जाता है तब तुम्हें डर किस बात का। इसलिये कई भक्त कहते हैं-''चिन्ता करे चिन्तामणी पारस नाथ।''

जो व्यक्ति एक बार भी गुरु के सन्निकट पहुँच जाता है उसकी चिंताओं का जाल धीमे-धीमे कटना शुरू हो जाता है, उसके पास भी प्रकाश की किरणें आने लगती हैं। एक बार भी वहाँ गया तो वहाँ का वातावरण उसे अपनी ओर खींचता है जब तक नहीं पहुँचा है तब तक ही कठिन है। कई बार मातायें बहनें हमारे पास आती हैं कहती हैं महाराज जी हमारा बेटा मानता नहीं है हमारी सुनता नहीं है। हम उनसे कहते हैं कि तुम बस एक बार हमारे पास आने को कहो फिर हम

उसे समझाने का प्रयास करते हैं, एक बार लाने का काम तुम्हारा है बाद में धर्म से जोड़ने का कर्त्तव्य हमारा है।

चींटी यदि एक बार शक्कर का स्वाद ले जाये, तो वह बार-बार वहीं आयेगी, चाहे शक्कर के डिब्बे पर भले ही आप नमक लिख दो किन्तु वह चींटी कहेगी तुम मेरी नासिका को धोखा नहीं दे सकते। ऐसे ही एक बार जो गुरु के पास आ गया और माथा चरणों में रख दिया तो जो विशुद्ध वर्गणा उसके पास पहुँच गयी फिर वह कहेगा-मैं कहाँ पड़ा था अभी तक कीचड़ में। एक बार आकर के ऐसा लगता है इस पार मैं खड़ा हूँ इस पार ही मंजिल है इसे तो मैं एक डग में पार कर लूँगा। एक डग तो बहुत लम्बी बात-संसार वारिधि रयं चुलुक प्रमाण्। गुरु के सामने प्रभु के सामने तो उसे कोई चिंता ही नहीं।

जी के नाथ पारसनाथ वो अनाथ कैसे होय

जिसका कोई नाथ है वह अनाथ कैसे हो सकता है, जिसके कोई नाथ नहीं हों वह अनाथ है। चाहे आदिनाथ कहो, अजितनाथ कहो, संभवनाथ कहो, बिना नाथ के तो भगवान् का नाम अधूरा है जिसके माता पिता जीवित हों उसे अनाथ कैसे कह सकते हो, नहीं कह सकते। ऐसे ही जिस भक्त का कोई प्रभु या गुरु है तो वह जीवन में कभी अनाथ नहीं हो सकता।

एक आयुर्वेदाचार्य या यूँ कहें बहुत सी कलाओं व विद्याओं को जानने वाला वैद्य अपने बेटे को भी वैद्य बनाना चाहता था इसलिये जब भी औषधि बनाता था तो अपने बेटे को अपने पास खड़ा कर लेता था ये दवाई ऐसी है, इस रोग को शमन करने वाली है, सिखाता रहता और बालक भी सीखता रहता था। किन्तु वे जड़ी-बूटियाँ ऐसी थीं समझ में नहीं आती थीं क्योंकि प्राय:कर दिखने में वे सब एक जैसी लगती थीं। दीपावली के लगभग वे आयुर्वेदाचार्य जंगल गये और

अपने बेटे को भी साथ ले गये। दो-चार जड़ी-बूटी जेब में डाल कर ले गये और झोला भी साथ में ले गये पहुँच गये जंगल में, किसी पहाड़ी के ऊपर कहीं किसी खाई के पास और अपने बेटे को सिखाने लगे कि देख इस जड़ी बूटी का पेड़ ये है, इसका ये है और कौन सी जड़ी बूटी किस काम आती है सब बताने लगे। बेटा भी देखने-समझने लगा और कुल्हाड़ी के माध्यम से बहुत सारी जड़ी बूटियाँ खोद निकालकर झोले में भर ली।

अब आयुर्वेदाचार्य कहने लगे-देख बेटा ये नीचे जो खाई है इसमें बहुत सारी जड़ी बूटियाँ हैं। ये जड़ी बूटियाँ बहुत काम आती हैं, जब व्यक्ति की शक्ति का ह्रास होता है तब ये शक्ति का पोषण करने वाली होती हैं और रोग निरोधक क्षमता को बढ़ाने वाली होती हैं और ये जड़ी बूटियाँ प्राय:कर बहुत कम मिलती हैं इन्हें लोग जानते नहीं हैं, इसलिये तू नीचे खाई में उतर जा और जो-जो भी जड़ी बूटियाँ मिले उसे तू इस रस्सी में बांध देना मैं ऊपर खींच लूँगा। वह बेटा रस्सी के सहारे धीरे-धीरे 80 गज लगभग 250 फीट के लगभग गहरी खाई में उतरता है और देखता है अंधेरा ही अंधेरा घने वृक्ष, काँटे ही काँटे, कंकड़ पत्थर पड़े हैं। वह पिता बेटे को आवाज लगाता है बेटा पहुँच गया वह बोला हाँ बापू। बेटा वहाँ से अंधेरे में जड़ी बूटियाँ इकट्ठी करके बांधता जा रहा है।

अब डर पिता जी को भी लगा, मैंने खाई के बीचों-बीच उतार तो दिया-कहीं कोई गड़बड़ हो गई तो, भूत-प्रेत हों या सर्प बिच्छु हों पता नहीं क्या होगा, मैंने उसे जान बूझ करके काल के मुँह में डाल दिया। उसका दिल भी धड़कने लगा वह ऊपर से बार-बार आवाज देता है बेटा ठीक हो-हाँ पिताजी ठीक हूँ बहुत सारी जड़ी बूटियाँ मिल रही हैं मैं इकट्ठी करता जा रहा हूँ। पिता ने एक और रस्सी ऊपर से डाली कहा एक रस्सी से जड़ी बूटियाँ बांधता जा मैं खींचता जाऊँगा और एक रस्सी को तू अपने हाथ से पकड़ ले।

सभी जड़ी बूटियाँ ऊपर आ गयीं उसके बाद में पिता जी ने कहा बेटा तू भी ऊपर आ जा और वह भी रस्सी के सहारे ऊपर आ गया, जैसे ही वह ऊपर आया-पिता जी ने बेटे को सीने से लगाया और जोर-जोर से रोने लगे। बेटे ने देखा पिताजी रो रहे हैं, पूछा-पिताजी क्या हो गया-बोले कुछ नहीं। बेटा बोला बताओ तो सही-पिताजी ऊपर आप अकेले रह गये किसी ने आप से कुछ अपशब्द कह दिये क्या, मैं उससे बदला लेके रहूँगा। पिताजी बोले कुछ नहीं, बात ये है कि मैंने तुझे काल के मुख में, गहरे अंधकार में उस खाई में उतार दिया था, मैं डर गया था इसलिये रोने लगा ? बेटा तुझे नीचे डर नहीं लगा, बेटा बोला पिताजी कैसी बात कर रहे हो-जब मेरी रस्सी तुम्हारे हाथ में है तो डर किस बात का।

जिसकी रस्सी उसके पिता के, परमपिता के हाथ में होती है गुरु के हाथ में होती है उसे संसार में कहीं भी किसी भी बात का डर नहीं लगता और जिसके जीवन की रस्सी किसी और के हाथ में होती है वह जीवन भर दु:खी रहता है। मैं आपसे कह रहा था सन्मार्ग दर्शक की आवश्यकता है, जो तुम्हें दिखा सके कि सामने देखो लक्ष्य दिखाई दे रहा है। जैसे ही वह इंगित करता है अंगुली से, वह वस्तु तुरंत पकड़ में आ जाती है और दिखाने वाला न हो तो भटकते रहें। कई बार घर में भी ऐसा होता है माँ ने कहा बिटिया-वह चीज ले आ, बेटी कहेगी माँ दिख नहीं रही तो माँ कहती है देख उस अलमारी में, उस डिब्बे के अंदर रखी है, तो वस्तु जल्दी मिल जाती है। इसलिए सन्मार्ग दर्शक की आवश्यकता है, बिना दिखाये कोई देख नहीं सकता। यहाँ तक कि तीर्थंकर भी नहीं देख पाये बिना दिखाये तो। उन्होंने भी पूर्व में गुरु बना करके साधना की फिर आगे बढ़े। तो सन्मार्ग दर्शक की आवश्यकता है किन्तु वह शिक्षक नहीं होना चाहिये।

शिक्षक-शिक्षा देता है वित्त अर्जन करने की किन्तु गुरु शिक्षा देता है चित्त को निखारने की।

गुरु चित्त को निर्मल करता है और शिक्षक तन का पोषण करने की बात कहता है। शिक्षक धन कमाने की शिक्षा देता है और गुरु धर्म में रम जाने की बात कहता है। शिक्षक शब्द अपने आप में बता रहा है कि शिक्षक शब्द का अर्थ है-जो शिष्टाचारी हो, क्षमाशील हो, कर्त्तव्य निष्ठ हो (शि+क्ष+क) वास्तव में शिष्टाचारी, क्षमाशील व कर्त्तव्यशील व्यक्ति ही शिक्षक होने के योग्य है अन्यथा नहीं।

गुरु तो और ऊँची चीज है जिसके चित्त में आध्यात्मिकता का प्रकाश हो गया है। अध्यापक शब्द का अर्थ है-जो अधि+आप+क= जो आत्मा के कर्त्तव्य के बारे में चारों ओर से सोचने योग्य हैं। अध्यापक शब्द साहित्यिक है, वह धर्म से मेल खाता है, इसीलिये उपाध्याय शब्द आचार्य वीरसेन स्वामी जी ने दिया अध्यापक-अधि-चारों ओर से आप-आत्मा क-कर्त्तव्य-आत्मा के लिये क्या करने योग्य है। इन सबको बताने वाला अध्यापक होता है, आध्यात्मिक-अधि-आत्मनी, इक प्रत्यय लगाने से वह आत्मा का चारों ओर से कर्ता है, आत्मा के कर्त्तव्यों को अच्छे से जानता है कि मेरी आत्मा को क्या करना चाहिये। जो सिवाय आत्मा में रमने के कुछ नहीं जानता वह आध्यात्मिक कहलाता है।

आवश्यक है बुद्धि से आगे निकलें, जो बुद्धि के परे हो जाता है, बुद्धि के आगे निकल जाता है वह प्रज्ञपने को प्राप्त हो सकता है। जब वह बुद्धि के घेरे में चक्कर लगाता रहता है, बुद्धि की परिधि पर चक्कर लगाता रहता है बुद्धि की तानों पर घूमता रहता है, बुद्धि के ताने-बाने बुनता रहता है तब वह बुद्धि के केन्द्र में तो पहुँचेगा, बुद्धि की परिधि तक पहुँच जायेगा, बुद्धि के जाल में फँस जायेगा किन्तु बुद्धि के पार नहीं पहुँच पायेगा।

बुद्धि के पार पहुँचने का केवल एक ही उपाय है कि अब तक बुद्धि के सहारे-सहारे चले अब बुद्धि से विपरीत चलो। बुद्धि कहती है-कुछ खा-पीले तो प्रज्ञा कहेगी-खाना-पीना तेरा स्वभाव नहीं है। बुद्धि कहती है-सामने वाले से अच्छे से बोल, व्यवहार बना ले, प्रज्ञा कहती है-सामने वाले से तुम्हारा कोई संबंध नहीं है तुम अपने आप में डूब जाओ। बुद्धि कहेगी-आँख खोलकर देख, प्रज्ञा कहेगी-आँख बंद करके देख। बुद्धि कहेगी सोच समझ से काम ले-प्रज्ञा कहेगी-अनादि काल से सोच रहा है अब तो बिना सोचे कूद जा। प्रज्ञा और बुद्धि दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं जब तक बुद्धि से काम करोगे तब तक प्रज्ञा सम्पन्न न हो सकोगे और जब प्रज्ञा को प्राप्त हो जाओगे तो बुद्धि से काम न कर सकोगे। बुद्धि का काम है व्यवहार चलाना और प्रज्ञा का काम है निश्चय में डूब जाना, इसलिये आत्मावलोकन के लिये बुद्धि की नहीं प्रज्ञा की आवश्यकता है।

बाहर की टॉर्च अंदर के बल्ब को नहीं जला सकती, अंदर का बल्ब जब जलेगा तभी प्रकाश हो सकता है। यदि कमरे में अंधेरा है तो बाहर के चन्द्र सूर्य को अंदर में नहीं ले जा सकते हैं। आशय यह है कि कनेक्शन चाहे कहीं से जोड़े किन्तु बल्ब को तो अंदर जलाना पड़ेगा। अंदर का बल्ब जलते ही स्वतः प्रकाश हो जायेगा और अंदर बल्ब न लगायें, बाहर में हजारों बल्ब लटकायें तो उससे अंदर में प्रकाश होने वाला नहीं है।

महानुभाव ! बस इतना ही कहना है कि हम बुद्धि के धरातल से ऊपर उठें और प्रज्ञा के धरातल पर पहुँचें। हम अपनी आत्मा को कैसे जानें, आत्मोन्नति कैसे करें, आत्मावलोकन कैसे करें, इसके लिए हमें परम आवश्यकता है एक सन्मार्ग दृष्टा की, हम भी अपने जीवन में एक सन्मार्ग दर्शक का चुनाव करें इन्हीं भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

जब प्रभु से प्रीति, जगत् से भीती होती है तब सही रूप में आत्मा की अनुभूति होती है।

भक्ति के रस में डूबा हुआ भक्त उस आनंद की अनुभूति करता है जिस आनंद की अनुभूति अन्यत्र दुर्लभ है। जो आनंद इंसान को उत्कृष्ट से उत्कृष्ट पदार्थ के भोगने में नहीं आता, जो आनंद संसार की उत्कृष्ट से उत्कृष्ट वस्तु को सुनने में, देखने में नहीं आता वह आनंद वीतरागी मुख मुद्रा को देखने में आता है। कहते हैं-

''मयूरस्येव मेघौघे वियुक्तस्यैव बान्धवे।
तृषार्तस्येव पानीये विबद्धस्येव मोक्षणे॥
सव्याधेरिव कल्यत्वे विदृष्टेरिव लोचने।
जायते नुश्च सन्तोषो जिनवक्त्रविलोकने॥

जिनेन्द्र भगवान् के जिनबिम्ब को देखने मात्र से ऐसी आत्मानुभूति होती है-जिस प्रकार श्याम मेघ को देख मयूर का चित्त रंजायमान हो जाता है। मयूर रोगी ही क्यों न पड़ा हो आकाश में गतिशील श्याम मेघ को देखकर उसका चित्त भी चंचल हो जाता है वह हर्षित होकर नृत्य करने लगता है। जिस प्रकार वियोगी व्यक्ति को अपने इष्ट की

प्राप्ति होने पर जो आनंद की अनुभूति होती है तथा प्यास के कारण जिसके प्राण कंठ में आ गये हैं ऐसे उस प्यासे व्यक्ति को शीतल, निर्मल, मधुर जल की सम्प्राप्ति होने पर जिस आनंद की अनुभूति होती है तथा बंधे हुये व्यक्ति को जब मुक्ति की प्राप्ति होती है चाहे वह प्यार के बंधनों में बंधा हो चाहे वह कर्मों के बंधन में बंधा हो बाहर में बंधन खुलने पर व्यक्ति को उतनी सुख-शांति की प्रतीति नहीं होती जितनी आनंद की अनुभूति अंतरंग के बंधन खुलने पर होती है। आगे आचार्य महोदय कहते हैं-जो व्याधि से पीड़ित है उससे छटपटा रहा है और भगवान् से यह कह चुका है कि हे भगवन् ! अब आयु का अवसान कर दो मैं इस शरीर को बदलना चाहता हूँ, ऐसे व्यक्ति को यदि आरोग्य लाभ की प्राप्ति हो जाये और जन्म से ही अंधे व्यक्ति को नेत्र ज्योति की प्राप्ति हो जाये तो उसे जो आनंद की प्राप्ति होती है उससे कई गुना आनंद ''जिनबिम्ब विलोकने'' जिनेन्द्र भगवान् के जिनबिम्ब को देखने मात्र में सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा को होता है।

यदि किसी को भगवान् के दर्शन करने पर चित्त में आनंद की अनुभूति नहीं हो रही है, जिनबिम्ब को देखकर जिसे अपने बिम्ब का ख्याल नहीं आ रहा है, जिनदर्शन करके जो निजदर्शन के लिये आतुर नहीं हो रहा है, निज को पाने की ललक प्यास नहीं है तो समझो उसके मन में सम्यक् श्रद्धा नहीं है।

महानुभाव ! जिनबिम्ब को देखने मात्र से, भावना मात्र से सैकड़ों हजारों उपवास के फल की प्राप्ति होती है, जिनबिम्ब के दर्शन करने से नि:संदेह अपने चैतन्य बिम्ब की अनुभूति होती है। जिस व्यक्ति ने जीवन में कभी वीतरागी जिनबिम्ब का सहारा नहीं लिया वह कभी भी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता। मोक्ष को प्राप्त करना तो दूर की बात है सत्यता तो यह है कि वह सम्यक्दर्शन भी

प्राप्त नहीं कर सकता। चाहे वर्तमान काल में वीतरागी मुद्रा को देखकर सम्यक्त्व को प्राप्त कर ले, चाहे अतीत में देखी हुयी जिनमुद्रा की अनुभूति करके उसका पुनः स्मरण करके सम्यक्त्व को प्राप्त कर ले किन्तु बिना जिन मुद्रा को देखे आज तक किसी ने सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं किया। जैसे ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, दृष्टि निर्मल होती है, वैसे ही व्यक्ति की आँखों से गंगा यमुना जैसी अश्रुधारा बहने लगती है। भगवान् महावीर स्वामी का जीव जब सिंह की पर्याय में मृग का शिकार कर रहा था उस समय चारण ऋद्धिधारी युगल मुनिराज का सम्बोधन प्राप्त करके स्तम्भित हो गया। उसके अंदर अपने प्रति ग्लानि का भाव जाग्रत हुआ और पश्चाताप करते हुये रोने लगा कि मेरे बारे में मुनिराज कह रहे हैं कि मैं तीर्थंकर बनूँगा अहिंसा का पुजारी, अहिंसा का उद्घोषक बनूँगा और आज मैं ही हिंसा कर रहा हूँ। उसको अंदर से पश्चाताप हुआ। जीवन में जब भी सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी चाहे सिंहनी को हुयी थी जो अपने पुत्र सुकौशल को खाने को आतुर थी, चाहे उस स्यालिनी को हुयी थी जो सुकुमार का भक्षण कर रही थी, चाहे उपसर्ग करने वाले कमठ जैसे किसी दुष्ट जीव को हुयी हो और चाहे सम्यक्त्व की प्राप्ति राजा श्रेणिक को हुयी हो। यशोधर मुनि के गले से मृत सर्प को निकालने के बाद रानी चेलना ने नमस्कार किया पुनः राजा श्रेणिक ने भी हाथ जोड़ लिये किन्तु मुनिराज ने दोनों से कहा ''सद्धर्मरस्तु''। राजा श्रेणिक सोच रहा है कि रानी चेलना ने उपसर्ग को दूर किया, मैंने उपसर्ग किया किन्तु इनका दोनों के प्रति समता का भाव है धन्य हैं ऐसे मुनिराज के लिये और श्रेणिक का हृदय परिवर्तित हो गया। उसका हृदय परिवर्तित होते ही उसकी चेतना पर जो मिथ्यात्व की कालिमा जमी थी वह गंदगी दूर हो गयी उसके नेत्रों से पश्चाताप का जल निकलते ही मिथ्यात्व का मल धुल गया।

जिनेन्द्र भगवान् का दर्शन करने से आज नहीं तो कल नियम से तुम अपना दर्शन कर सकोगे। आचार्यों ने लिखा है, हिन्दी के कवियों ने भी लिखा है, जिन दर्शन निजदर्शन का कारण है, और उन्होंने तो यहाँ तक लिख दिया कि जिनदर्शन के साथ यदि तुम्हें निज दर्शन की अनुभूति, प्रतीती नहीं हो रही है तो तुम्हारे वह जिनदर्शन सफल व सार्थक नहीं हैं।

''जिन दर्शन से निज दर्शन है निज दर्शन है तो दर्शन है।
जिन दर्शन से निज दर्शन ना, वह दर्शन नहीं प्रदर्शन है।''

यदि जिनेन्द्रदर्शन से हमें यह अनुभूति हो रही है कि हाँ वास्तव में मेरा स्वरूप भी यही है, मुझे भी ऐसे स्वरूप की प्राप्ति करनी है, मैं भूल न जाऊँ इसलिये बार-बार उनके दर्शन को आता हूँ तो वास्तव में जिनदर्शन करना सफल व सार्थक है। और यदि अपने अंतरंग में अनुभूति नहीं हो रही, अंतरंग में ऐसा ख्याल विचार नहीं आ रहा है तब तो यही कहा जायेगा कि वह दर्शन नहीं प्रदर्शन है। दर्शन दूसरों को रिझाने की क्रिया नहीं है, दर्शन दूसरों को प्रभावित करने के लिये नहीं किया जाता है दर्शन तो स्वयं के चित्त का निर्मल परिणाम है। दर्शन तो स्वयं के अन्तरंग में, परमात्मा से मिलने की जो प्यास जाग्रत हुयी है उसका रूपान्तरण है। दर्शन जितनी तीव्र भावना के साथ होता है उतनी ही तीव्र गति तुम्हारे परमात्मा बनने में आ जाती है, तुम्हारी आत्मा परमात्मा रूप बदल जाती है। दर्शन एक ऐसा कैमिकल है जिसे आत्मा में डाला जाता है तो आत्मा परमात्मा रूप बन जाती है जैसे दूध में जामन डाला जाता है तो दही बन जाता है ऐसे ही भगवान् की छवि अपनी आत्मा में डाल ली जाती है तो अपनी आत्मा में भी परमात्मा की छवि बनकर आ जाती है। जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन से अनेक जन्मों के अर्जित पापों का नाश होता है आप पढ़ते भी हैं-

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम्॥
दर्शनेन जिनेन्द्राणां साधुनां वंदनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं छिद्रहस्ते यथोदकम्॥

मनुष्यों द्वारा जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने से अनेक जन्मों में अर्जित पाप भी नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्य का उदय होने से अंधकार नष्ट हो जाता है, जैसे अंजुली में भरा जल शनैः-शनैः निकल जाता है उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान् रूपी चन्द्रमा का अवलोकन करने से चेतना में विद्यमान पाप कर्म मानो पिघलने लगता है। लोग सोचते होंगे भगवान् के दर्शन करने से क्या होता है-भगवान् के दर्शन करने से वह सब हो सकता है जो संसार के अन्य कार्य करने से नहीं हो सकता। किन्तु वह दर्शन हीन पुण्यात्मा स्वप्न में भी नहीं कर सकता और जो सातिशय पुण्यात्मा है जिसे निकट भविष्य में पूज्यनीय व स्तुत्य बनना है वही व्यक्ति भगवान् के दर्शन पूजन स्तुति कर सकता है। आ. कल्याणकीर्ति जी महाराज ने वीतराग स्तोत्र में लिखा-

''पश्यन्ति पुण्य रहिता न हि वीतरागम्''

जो पुण्य से रहित होते हैं वे वीतरागी मुद्रा को स्वप्न में भी नहीं देख सकते। स्वप्न में भी यदि आपने वीतरागी मुद्रा के दर्शन किये हैं तो समझ लेना कि स्वप्न देखते समय आपने असंख्यात गुणित कर्मों की निर्जरा कर ली। और स्वप्न में आपको ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आप हिंसा कर रहे हैं, किसी को मार रहें हैं तब समझ लेना कि स्वप्न में भी आप पाप कर्म का बंध कर रहे हैं। सपने में आपने यदि देव, शास्त्र, गुरु की अविनय की है, तो सपने में की गयी अविनय के द्वारा भी व्यक्ति 70 कोड़ा-कोड़ी सागर तक मिथ्यात्व का बंध कर सकता है, बात ये नहीं है कि स्वप्न में तुमने मारा या नहीं, बात ये नहीं कि

सपने में अविनय की किन्तु बात ये है कि क्रिया करने वाले तो तुम हो और यदि तुम कहो कि मैंने क्रिया तो की ही नहीं मैं तो बिस्तर पर लेटा हुआ था हाँ क्रिया शरीर से तो तुमने नहीं की पर वह क्रिया तुम्हारी आत्मा की परिणति से हुयी है, कर्म का बंध भी वहीं हो गया। कर्म का बंध शरीर से नहीं होता है कार्माण वर्गणाओं का बंध तो आत्मा के प्रदेशों से होता है और आत्मा के प्रदेशों में जैसी परिणति हो गयी वैसा बंध हो गया। यदि क्षण भर के लिये भी आपने अनंतानंत सिद्धों का ध्यान लगा लिया तो समझो तुमने सिद्धों का ध्यान लगाने से एक अन्तर्मुहूर्त में असंख्यात गुणित पाप कर्मों को पुण्य में बदल दिया, असंख्यात गुणित पाप कर्मों की निर्जरा कर दी क्योंकि करने वाले आप हैं आपकी चेतना ने कार्य किया है तो उसका पुरस्कार और उसका प्रायश्चित अवश्य आपको ही भोगना पड़ेगा। पूज्य आचार्य पूज्यपाद स्वामी अपर नाम देवनंदी जी महाराज ने अर्हत् भक्ति में लिखा-

श्री मुखालोकनादेव, श्री मुखालोकनं भवेत्।
आलोकन विहीनस्य, तत् सुखावाप्तयः कुतः॥

श्रीजी के मुख का अवलोकन करने मात्र से मानो उसने मोक्षरूपी लक्ष्मी का मुखावलोकन कर लिया हो। जिसने श्री जी का मुखावलोकन कर लिया मानो केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी का मुखावलोकन कर लिया, संसार की जो सम्पत्ति है धन, वैभव है उसका मुखावलोकन कर लिया। जो इस अवलोकन से रहित है उसे जीवन में सुख की प्राप्ति कहाँ हो सकती है। जिसने जिनेन्द्र भगवान् का अवलोकन नहीं किया है वह संसार में चाहे कितनी ही तपस्या कर ले, कितना भी ज्ञान का अध्ययन कर ले, कितना ही ध्यान लगाये, कितना ही त्याग कर ले, कितना भी संयम का पालन करे, कितना भी दान दे उसे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है जैसे बीज के बिना वृक्ष की उत्पत्ति नहीं हो

सकती उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान् के मुख अवलोकन बिना सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

आ. वीरसेन स्वामी जी ने कहा-जिनेन्द्र प्रभु का दर्शन करने मात्र से निधत्ति निकाचित जैसे कर्मों के समूह का भी क्षय देखा जाता है। आप कितने पुण्यात्मा जीव हैं जो इस प्रकार भाव सहित भगवान् की पूजन करने में संलग्न हैं।

पोदनपुर नगर में प्रीतिंकर नाम का एक द्विज रहता था। एक दिन किसी कारण वश वह अपनी भगिनी के पास जा रहा था, मार्ग में जाते समय उसे कनकपुर नाम का एक नगर मिला उस कनकपुर नगर का राजा कनकरथ था। राजा कनकरथ बड़ा धर्मात्मा, प्रजावत्सल, पराक्रमी, न्यायप्रिय एवं सत्यवादी राजा था उसके रोम-रोम में जिनेन्द्र भगवान् के प्रति श्रद्धा-भक्ति और समर्पण का भाव कूट-कूट कर भरा था, एक दिन उसने घोषणा करायी प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी जिनेन्द्र प्रभु की महार्चना की जाएगी सभी को उस पूजा में सम्मिलित होना चाहिए। चतुष्पथ पर सुन्दर सा पांडाल बनाकर जिनेन्द्र प्रभु को विराजमान कर सभी ऐसे बैठे थे जैसे मानो देव और देवांगनायें पूजा कर रही हों।

आचार्य अमृत देव सूरि ने लिखा है जो गंदे या फटे वस्त्र पहन कर पूजा करता है वह कितने ही भाव से पूजा करे, उसके फल से वह आगे दासी पुत्र होता है जो दूसरे की द्रव्य से पूजा करता है उसे भी उसी पर्याय की प्राप्ति होती है। चाहे किसी व्यक्ति ने कोड़ियों से पूजा की, तो वह कोड़ियों से पूजा करने वाला व्यक्ति भी राजपुत्र बना, अरे ! वह चुल्लू भर पानी से पूजा करने वाला भी राजा बना, चक्रवर्ती बना, देव बना, देवेन्द्र बना पुनः आगे मोक्ष का अधिकारी बना, चाहे केवल जल ही चढ़ायें किन्तु पूर्ण विशुद्धि के साथ चढ़ायें।

उस राजा ने एक और घोषणा करवाई कि नगर के चारों दरवाजे बंद कर दिये जायें, पहरेदार खड़े कर दिये जायें, कोई भी व्यक्ति यदि किसी भी रास्ते से जाता है तो उसे पहले यहाँ लाओ वह भगवान् की पूजन की अनुमोदना करे, हाथ जोड़े, पुनः भोजन-पानी कर ही यहाँ से जायेगा, अन्यथा कोई भी यहाँ से जायेगा नहीं। वह प्रीतिंकर कुमार जैसे ही उस नगर की ओर से गुजरा संगीत की ध्वनि उसके कर्ण गोचर हुयी वह उस मधुर तान से ऐसे खिंचा चला आया जैसे गंध के लोभ में भ्रमर पहुँच जाता है, जैसे प्रकाश का लोलुपी पतंगा दीपक के पास पहुँच जाता है, जैसे खाद्य की लोलुपी मछली आटे के पास पहुँच जाती है, जैसे मधुर ध्वनि का लोभी सर्प या मृग ध्वनिकार के पास पहुँच जाता है ऐसे ही वह मधुरगान का लोभी प्रीतिंकर द्विजपुत्र वहाँ पहुँच गया और संगीत की लहरियों में मस्त हो गया। आगे बढ़कर उसने देखा कि तीन लोक के नाथ जिनेन्द्र भगवान् यहाँ विराजमान हैं, उसकी कोई श्रद्धा नहीं थी, वह मिथ्यादृष्टि था किन्तु सभी पूजा कर रहे हैं, सभी को पूजा करते हुये देखकर एक मिथ्यादृष्टि भी हाथ जोड़ लेता है उसने भी हाथ जोड़कर के सिर झुकाया और पुनः आँख बंद करके एक क्षण के लिये मन में ये भावना भायी, हे प्रभु ! जीवन में कभी मेरे पास भी इतना वैभव हो तो मैं भी ऐसी महाअर्चना कराऊँ। केवल एक बार आँख बंद करके उस भव्य मिथ्यादृष्टि प्रीतिंकर ने भावना भायी कि जैसे राजा ने सभी को आमंत्रित कर पूजा रचायी है ऐसे ही मैं भी रचाऊँ और पुनः नमस्कार कर वहाँ से चला गया।

वह द्विज पुत्र प्रीतिंकर आगे मृत्यु को प्राप्त कर व्यंतर देव हुआ उस व्यंतरदेव ने जंगल में मुनिमहाराजों को साधना करते हुये देखा। उस समय भी उसे कोई श्रद्धा नहीं थी, किन्तु हुआ क्या बांसों के रगड़ने से जंगल में आग लग गयी, वह आग मुनिमहाराज तक पहुँचने ही वाली थी, तभी उस तडिलंग नाम के देव ने अपनी विद्या के बल

से समुद्र से जल लाकर के उस जंगल में मूसलाधार वर्षा कर दी। जिससे अग्नि शांत हो गयी, मुनिराज का उपसर्ग शांत हुआ और उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गयी। इसके उपरांत वह देव अपनी आयु को पूर्ण करके उदितोदय नाम का राजपुत्र हुआ उसने जैसे ही होश संभाला तो अपने पिता से कहा-पिताजी यह राज्य वैभव जिसका आप संचालन कर रहे हैं इस पर किसका अधिकार है, पिता श्री ने कहा यह सब तुम्हारे लिये है इस पर भविष्य में तुम्हारा अधिकार होगा और आज भी तुम्हारा ही है। उसने कहा-पिताजी यदि ऐसी बात है तो मेरे मन में एक भावना है मैं महाअर्चना करवाना चाहता हूँ, यह सुनकर धर्मात्मा पिता का हृदय खिल गया और उन्होंने कहा धन्य है तेरे लिये, वास्तव में तू मेरा पुत्र है तूने मेरे मन की बात कह दी। मैं तो पूजन कराता ही था किन्तु तेरे अंदर भी ऐसे संस्कार हैं यह बहुत अच्छी बात है। उदितोदय ने चतुष्पथ पर पूरे देश की जनता को बुलाकर धूमधाम से महार्चना करायी और महाअर्चना करने के बाद उसके मन में इतनी विशुद्धि बढ़ी कि उसने पिताजी के चरणों में प्रणाम किया और कहा पिताजी क्षमा करना मैं संसार की कीचड़ में फंसना नहीं चाहता मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ। आज्ञा पाकर उसने दिगम्बर दीक्षा स्वीकार की और मुनि बनकर साधना करने लगा।

महानुभाव ! उस साधना के फलस्वरूप उसे अनेकों ऋद्धियों की प्राप्ति हुयी। एक दिन एक मुनिमहाराज को केवलज्ञान की प्राप्ति हुयी तब ये मुनिराज भी वहाँ उपस्थित थे। केवलज्ञानी मुनि की पूजन हेतु चार निकाय के देव व अनेक राजा-महाराजा पधारे। एक विद्याधर राजा अपनी 4000 रानियों और बड़े वैभव के साथ इठलाता हुआ विमान में आया उसे देखकर इसके मन में एक क्षण के लिये यह परिणाम हो गया काश ! मेरे पास भी ऐसा वैभव होता तो मैं भी विद्याधर बनके ऐसी ही कामक्रीड़ा करता। वे मुनिमहाराज समाधि को

प्राप्त करके स्वर्ग में देव हुये वहाँ से आकर के राक्षस वंश के शिरोमणी ''महारक्ष'' नाम के विद्याधर हुये, मण्डलेश्वर राजा हुये उन्होंने अपने जीवन में उत्तम-उत्तम भोगों का भोग किया।

एक दिन अपनी देवांगनाओं सम रानियों के साथ जल क्रीड़ा कर रहे थे जल क्रीड़ा करते समय उन्हें दिखाई दिया एक कमलपुष्प सूर्य किरण पड़ते ही खिल रहा है। उन्होंने उसे हाथ में लेकर सूंघना चाहा तो देखा कि उस कमल पुष्प में एक भ्रमर मृत पड़ा है। उसे देखकर के उन्हें आश्चर्य हुआ यह भ्रमर, पुष्प में मृत पड़ा है, अगर ये भ्रमर चाहता तो लकड़ी में भी छेद करके बाहर निकल जाता किन्तु इस नाजुक कमल की पांखुडी को भेद नहीं सका, क्यों नहीं कर सका? क्योंकि ये घ्राण इन्द्रिय में आसक्त था और मैं तो पाँचों इन्द्रियों में आसक्त हूँ, मेरी कौन सी गति होगी और देखते ही देखते उसका विचार बदल गया। संयोग की बात नदी किनारे उसे एक मुनिमहाराज मिले, उनकी वंदना की और उनसे अपनी जिज्ञासा पूछी-हे प्रभु ! मुझे इतना वैभव किस पुण्य से प्राप्त हुआ और किस कारण से आज मुझे वैराग्य की प्राप्ति हुयी है, मुनिराज ने पूर्वभव का सारा वृत्तान्त कहा। पुनः अपने योग्य पुत्र भानुरक्ष, अमररक्ष को राजा और युवराज बनाकर के जैनेश्वरी दीक्षा को स्वीकार किया और समस्त कर्मों को नष्ट करके मोक्ष को प्राप्त हुआ।

महानुभाव ! वह मिथ्यादृष्टि प्रीतिंकर नाम का जीव जब 2-4 भव में मोक्ष को प्राप्त कर सकता है केवल यह भावना भाने से कि जीवन में कभी वैभव सम्पन्न होऊँ तो मैं भी महा अर्चना रचाऊँ ऐसी भावना भाने से पहले व्यंतर देव हुआ, वहाँ मुनिराजों का उपसर्ग दूर करने से राजपुत्र हुआ पुनः जिनेन्द्र प्रभु की महार्चना की फिर बाल्यावस्था में दीक्षा लेकर निदान कर लिया उससे विद्याधर बनना पड़ा आगे वैभव को भोग करके साधना करके मोक्ष को प्राप्त किया।

जब एक क्षण के लिये अनुमोदना करके वह ऐसी अवस्था को प्राप्त कर सकता है तो आप और हम जिन्होंने जैन कुल में जन्म लिया है जन्म से ही नहीं गर्भ से ही जैनत्व के संस्कार प्राप्त किये हैं, गर्भ में रहते हुये हजारों बार णमोकार मंत्र के शब्द सुने हैं। पुनः जन्म लेने के उपरांत 45 दिन होने के बाद मंदिर में आकर किन्हीं मुनिराज, त्यागीव्रती के श्री मुख से सबसे पहले णमोकार मंत्र सुन जैनत्व को प्राप्त किया। दिन में, रात में, सोते, उठते, बैठते समय महामंत्र पढ़ते रहते हैं, भगवान् के प्रति पूर्ण श्रद्धा भी है, भक्ति भी है तो क्या हम कर्मों को नष्ट करके वैसी अवस्था प्राप्त न कर सकेंगे ? अवश्य ही प्राप्त कर सकेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है।

महानुभाव ! आप सभी को यही आशीर्वाद है कि देवदर्शन, जिनभक्ति के माध्यम से देवत्व की भी प्राप्ति होती है, जिनत्व की भी प्राप्ति होती है। भक्ति, मुक्ति का अंकुर है। भक्ति की धारा में अवगाहन किए बिना मोक्ष रूपी महल में प्रवेश नहीं किया जा सकता। चेतना के धरातल पर जमी अष्ट कर्मों की किट्ट कालिमा भक्ति रूपी जल से धोयी जा सकती है। भक्ति और पूजा के सम्पूर्ण महात्म्य को कहने में कौन समर्थ है चार ज्ञान के धारी गणधर भी नहीं, तो वह फल आप सबको भी प्राप्त हो। इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

।। शांतिनाथ भगवान् की जय ।।

''मन को दर्पणवत्-साक्षी बनाओ, स्थाई तस्वीर नहीं, क्योंकि जो मन जप, तप, स्वाध्याय भक्ति आदि किसी भी कार्य में सहजता से लग सके वही समाहित मन है।''

चित्त की वृत्ति को बदले बिना आत्मा को परमात्मा नहीं बना सकते, चित्त की वृत्ति को बदले बिना बहिरात्मा अन्तरात्मा नहीं बनता, चित्त की वृत्ति को बदले बिना पापात्मा पुण्यात्मा नहीं बन सकता, कोई भी आत्मा शुद्ध आत्मा नहीं बन सकती। चित्त की वृत्तियों को बदलना बहुत जरूरी है। बदलना इस संसार का, संसार के प्रत्येक पदार्थ का स्वभाव है, निरन्तर बदलाव हो रहा है। कोई भी द्रव्य कूटस्थ नहीं रहता द्रवित रहता है। द्रव्यत्व गुण होता है, अगुरुलघु गुण होता है जिसमें कोई न कोई पर्याय अवश्य आती है। चित्त की वृत्तियों को बदलने के लिये बाह्य साधनों को बदलना बहुत जरूरी है जिनसे हमारा चित्त प्रभावित होता है। शरीर की क्रिया को बदलना जरूरी है जिससे चित्त प्रभावित होता है। अपने वचनों के प्रयोग की विधि को बदलना जरूरी है जिससे हमारा चित्त प्रभावित होता है, उन विचारों को बदलना जरूरी है जिससे चित्त प्रभावित होता है। जिसने मन को बदल दिया तो संभव है उसने पहले के सब साधनों को बदल लिया।

मनोनुशासन जीवन में बहुत आवश्यक है। अनुशासन शब्द आपने कई बार सुना है। शासन के अनुसार चलना अनुशासन है। शासन एक व्यवस्था होती है पहले राजा लोग होते थे बादशाहित एक राजा होता था सभी उसकी बात मानते थे। आज प्रजातंत्र है सभी मिलकर राजा का चुनाव करते हैं और उसमें कोई भी राजा बन सकता है किन्तु जिसे बना दिया उसके शासन में रहना जरूरी है। शासन वर्तमान काल में सरकार को कहा जाता है। सरकार जिसके माध्यम से अनुशासन करती है वह शासन है और शासित वह प्रजा कहलाती है जिनको शासन और प्रशासन के अण्डर में रहना है। महानुभाव ! जो व्यक्ति शासित नहीं है वह कभी शासक नहीं बन सकता। हम यदि जिनेन्द्र भगवान् के शासन में शासित हैं तो कल हम भी जिन शासक बन सकते हैं। जिनशासन, धर्मशासन, आत्मानुशासन, ये शासन शब्द अपने आप में बड़ा रूखा सा लगता है, फीका सा लगता है क्योंकि इसमें एक बंधन जैसा दिखाई देता है, उसने जैसा कहा वैसा करना पड़ेगा। जैसी आज्ञा है वैसी माननी पड़ेगी, किन्तु दरअसल में बात ये है कि बंधन को स्वीकार किये बिना कोई शासन बन भी तो नहीं सकता। मनोनुशासन हम मन के शासक बनना चाहते हैं तो मन के शासक बनने के पहले मन का शासन भी मानना पड़ता है, पहले मन का अनुशासन मानना पड़ता है तब मन का अनुशासक बना जाता है।

मन के मते न चालिये मन के मते अनेक
जो मन पर असवार है सो साधु कोई एक।

मन क्षण-क्षण में गिरगिट की तरह से रंग बदलता रहता है। मन भी मौसम की तरह बदलता रहता है मौसम को बदलने में फिर भी समय लगता है किन्तु मन को बदलने में समय नहीं लगता। एक ईमानदार व्यक्ति एक क्षण में बेईमान हो सकता है। व्यक्ति का शरीर नहीं बदलता मन बदल जाता है और मन बदलते ही चित्त की सब

वृत्तियाँ बदल जाती हैं। जिस वस्तु पर तुम मोहित थे, आसक्त थे तुम्हें पता चले कि वह वस्तु सोने की नहीं है लोहे की है, पीतल की है या सोने की पॉलिश की हुयी है तुरंत ही आपका मन बदल गया। मन के बदलने में देर नहीं लगती, किन्तु मन पर शासन कैसे किया जाये ? मन पर शासन करने से पहले आवश्यक है हम छः चीजों पर शासन करें तब मन पर शासन किया जा सकता है।

आहारानुशासन-अपने आहार पर अनुशासन। कोई व्यक्ति कहेगा कि मन का और आहार का क्या संबंध है, आहार का संबंध पेट से हो सकता है, लीवर से हो सकता है, आँतों से हो सकता है किन्तु आहार का संबंध मन से क्या हो सकता है। आहार का संबंध मन से भी होता है क्योंकि जो कुछ भी ग्रहण किया जाता हैं उसका रस भाग और खर भाग बनता है रस भाग रक्त बनकर के आर.बी.सी. द्वारा पूरे शरीर में बहता है। खर भाग जो कि कठोर अवयव है उनसे अस्थि आदि बनती हैं माँस मज्जादि बनती हैं, पूरे शरीर में जो कठोर अवयव हैं वे सब बनते हैं।

इसके साथ-साथ एक और नयी बात होती है, ये बात तो सब जानते हैं कि आहार करने के उपरांत सब शरीर में लग जाता है पच जाता है किन्तु एक जैसा भोजन करने वाले व्यक्ति के परिणाम अलग-अलग क्यों होते हैं ? एक जैसा भोजन करने वाले व्यक्ति के परिणाम एक जैसे होने चाहियें। सभी शाकाहारी व्यक्तियों के परिणाम शाकाहार रूप होने चाहिए। सबके एक जैसे क्यों नहीं होते उनके परिणामों में महान् अंतर देखा जाता है। आहार में अंतर है तब परिणामों में अंतर है यह बात तो समझ में आती है किन्तु एक तरह का सात्विक आहार करने वाले सौ व्यक्तियों का रिसर्च किया जाये तो निःसंदेह सौ के परिणाम सौ प्रकार के मिल सकते हैं। यदि आहार से सबके परिणाम अलग हो सकते हैं तब निश्चित मानना चाहिये कि तुम्हारा आहारानुशासन मनोनुशासन में कारण है।

आहार के माध्यम से एक व्यक्ति आनंद की अनुभूति कर रहा है दूसरा व्यक्ति संक्लेशता में जी रहा है। एक व्यक्ति आहार करते हुये क्रोध का अनुभव कर रहा है, एक मान का। एक गृद्धता के साथ खा रहा है, एक संतोष के साथ खा रहा है। आहार के साथ सभी के परिणाम अलग-अलग प्रकार के होते हैं। उस आहार को चबा-चबा कर खाने से, शरीर में जो ग्रंथियाँ होती हैं उनसे हार्मोन्स निकलते हैं वह हार्मोन्स व्यक्ति के रोगी और निरोगी अवस्था में बहुत कार्यकारी होते हैं वह तुम्हारे परिणामों को चेंज कर देते हैं। किसी व्यक्ति को कृत्रिम क्रोध भी दिया जा सकता है, कृत्रिम अंहकार भी पैदा किया जा सकता है, कृत्रिम मायाचारी के परिणाम बनाये जा सकते हैं कृत्रिम लोभी बनाया जा सकता है।

वैज्ञानिकों व डॉक्टर्स का मानना है कि आज ऐसी औषधि है जिससे रोते को हँसाया, हँसते को रुलाया जा सकता है। कोई व्यक्ति हँस रहा है तो हँस ही रहा है बिना कारण हँस रहा है और कभी ऐसा भी होता है कि कोई कारण नहीं फिर भी रोता जा रहा है। ऐसा भी होता है कि कोई पदार्थ दिया तो व्यक्ति बेहोश पड़ा है और कभी जागरूक हो गया, उसकी चेतना पूर्णरूप से काम कर रही है। इस बात को तो सभी स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति के तीन प्रकार के मस्तिष्क हैं एक दाँया, एक बाँया और एक पिछला भाग।

जब कोई व्यक्ति दाँया हाथ मस्तिष्क पर रखकर बैठा है तो समझो वह व्यक्ति किसी अतीत की चिंता में डूबा हुआ है। जब कोई व्यक्ति समाधान खोजता है तो माथे पर हाथ रखता है। जब व्यक्ति सिर को दोनों घुटनों के बीच में रखकर बैठता है तो समझो वह किसी व्यक्ति/वस्तु के वियोग का पश्चाताप कर रहा है। व्यक्ति के दाँया बाँया मस्तिष्क के सारे पार्ट एक्टिव होते हैं किन्तु जो पिछला भाग है जिसमें रहस्य होता है यह किसी-किसी का ही जाग्रत हो पाता है,

जिसका संबंध पीछे मेरुदण्ड और ब्रह्मस्थान से होता है। यदि यह हिस्सा जाग गया तो वह अतीत और अनागत की सब बात बता सकता है ऐसा वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं।

जो ब्रह्म में लीन होने वाले योगी हैं यदि वे अपनी साधना के द्वारा अपनी ब्रह्म शक्ति को जाग्रत कर लें, ब्रह्म शक्ति क्या? मस्तिष्क का वह हिस्सा जिसे आप कूड़ा कचरा समझते हैं। जैसे घर का दक्षिण-पश्चिम का कोना वह नैऋत्य कोण वहीं गृहस्वामी की रक्षा होती है। यदि वह सही है, व्यवस्थित है, ठोस है तब नि:संदेह कोई उसका बाल बाँका नहीं कर सकता। यह सिर ईशान केन्द्र है, पूज्यता का स्थान तो है ही किन्तु पीछे से ब्रह्मस्थान तक का स्थान भी मजबूत होना चाहिये। ब्रह्मस्थान से लेकर पीछे मेरुदण्ड तक का हिस्सा जितना सुदृढ़ होता है वह व्यक्ति उतना सुदृढ़ कहलाता है, यदि यहाँ से कोई पार्ट डेमेज होता है तो व्यक्ति अपने आप में अपंग, विकलांग सा हो जाता है।

कृत्रिम तरीके से चेतना के भावों को जाग्रत भी किया जा सकता है और चेतना के भावों को दबाया भी जा सकता है। कृत्रिम रूप से जैसे बाह्य बारिश की जाती है उसी प्रकार कृत्रिम रूप से अंदर में भी बारिश की जा सकती है। डॉक्टर्स लोग प्राय:कर के बहुत कुछ आगे बढ़ गये, उन्होंने कहा जो काम योगी करता है उतना तो नहीं किन्तु उस क्षेत्र में कुछ हम भी सफल हुये हैं। डॉक्टर चाहे तो किसी रोते हुये व्यक्ति को, चाहे वह कितना भी टेंशन में हो उसे हँसा सकता है और कोई कितना भी हँसने वाला हो उसे ऐसी दवाई दे सकता है जिससे वह रो भी सकता है। यदि इन बाह्य साधनों का प्रभाव पड़ता है व्यक्ति की वृत्तियों पर और चित्त वृत्तियों पर तब नि:संदेह यह बात नियामक है कि आहार का प्रभाव भी व्यक्ति के परिणामों पर पड़ता है। किस आहार को लेकर व्यक्ति के परिणाम कैसे होंगे ?

यदि व्यक्ति का आहार अनुशासित है अति नहीं खाता है तो व्यक्ति नि:संदेह उस आहार के माध्यम से अपने परिणामों को सुधार करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। जिसका आहार पर नियंत्रण नहीं है या आहार का अनुशासन नहीं है तो वह शरीर पर अनुशासन नहीं कर सकता और जो शरीर पर अनुशासन नहीं कर सकता वह व्यक्ति रोग का निदान करने में हमेशा असमर्थ रहता है। जिसने आहार पर अनुशासन कर लिया उसका शरीर उसके हाथ में रहता है। किसी व्यक्ति को दो बार या चार बार भोजन करके भी शरीर में कमजोरी आ सकती है तो ऐसा भी हो सकता है जो व्यक्ति एक बार ही भोजन करे, अल्प भोजन करे उसका शरीर भी बलिष्ठ हो सकता है। जो एक बार चबा-चबा कर आनंद से प्रसन्नचित्त होकर भोजन करता है इससे उसके शरीर में हार्मोन्स से स्रवित जो शक्ति उसे प्राप्त होती है उससे रोग निरोधक क्षमता बढ़ती है। इन सब बातों से पता चलता है कि आहार का प्रभाव चित्त वृत्तियों पर पड़ता है। दूसरा है-

२. शरीरानुशासन-शरीर की प्रवृत्ति पर नियंत्रण। कोई भी शरीर की प्रवृत्ति हमारी आज्ञा के बिना नहीं हो सकती, जब हम शरीर को सुलायेंगे तभी सोएगा, जितना शरीर को देंगे उतना ही खायेगा, शरीर से जब जो कहेंगे तब उसे वही कार्य करना पड़ेगा। यदि हमारा आहार पर अनुशासन है तो शरीर पर भी हो जायेगा। इन्द्रियाँ हमारे कहने से जाग्रत होंगी, जिसने शरीर पर अनुशासन कर लिया फिर वह तीसरे अनुशासन के लिए तैयार रहता है वह है-

३. इन्द्रियानुशासन-वह व्यक्ति जिसने अपने आहार पर नियंत्रण किया है, शरीर की प्रवृत्तियों पर नियंत्रण किया है ऐसा व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण कर सकता है। यदि वह चाहे मुझे आँख खोलनी है तभी आँख खोलेगा चाहे सामने कितना ही भयंकर दृश्य आ जाये

कोई व्यक्ति उसकी आँख खुलवा नहीं सकता। जिसने नियंत्रण किया कानों पर वह चाहे तो बात को सुनकर भी ग्रहण न करे कान में शब्द पड़े और इधर से निकाल दिये उस पर कोई ध्यान नहीं दिया वे शब्द हमारे अंदर कोई खलबली नहीं मचा सकते, महाभारत पैदा नहीं कर सकते। हम चाहें तो शब्दों को ग्रहण कर सकते हैं, कान ने अपना काम किया किन्तु हम अपना काम करने वाले हैं। शरीर पर अनुशासन रखने वाला इन्द्रियों पर अनुशासन कर सकता है।

महानुभाव ! कई बार व्यक्ति को गर्म स्थान पर बैठकर भी गर्मी का एहसास नहीं हो रहा, सर्दी में सर्दी का अहसास नहीं हो रहा और कोई पदार्थ खा कर उसे अहसास नहीं हो रहा कि मीठा है या कड़वा है या चरपरा है वह खाता जा रहा है उसे पता ही नहीं है, उसने इन्द्रियों को अपने आधीन कर लिया। रूखा खाकर के मीठे का स्वाद ले, कड़वा खाकर मीठे का स्वाद ले किन्तु ये स्वाद लेना हर एक के बस की बात नहीं है। तो इन्द्रियों पर अनुशासन करना जरूरी है। चौथा है-

४. भाषानुशासन-भाषा पर भी अनुशासन करना जरूरी है। यदि भाषा पर अनुशासन नहीं किया तो मन पर अनुशासन करना बड़ा कठिन है। कोई शब्द तुमने हँसी-हँसी में ऐसा बोल दिया, जिसके जवाब में सामने वाले ने तुम्हें ऐसा कह दिया जो तुम्हें चुभ गया। कई घंटों तक मन में चुभा रहा तो मन में विकृति पैदा कर सकता है इसलिए भाषा पर अनुशासन करना भी जरूरी है। अपनी जुबान को रोको, किसी के कान को मत पकड़ो अपनी जुबान को पकड़ो। कई व्यक्ति बोलने के इतने आदी होते हैं मौन से बैठ नहीं सकते, लोगों को पकड़-पकड़ कर अपनी बात कहते हैं तो लोग उन्हें बैठा देते हैं। और कहीं ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जिनकी भाषा को सुनने को व्यक्ति प्रत्येक समय तैयार रहता है, अपना काम छोड़कर दौड़ता हुआ आता

है बात को घर में जाकर सबको सुनाता है। भाषा अनुशासित होती है तो उस भाषा में शक्ति आ जाती है और जिस व्यक्ति की भाषा अनियंत्रित होती है वह स्वयं के लिये दु:खदायी बन जाती है। तो भाषा पर अनुशासन करना भी बहुत जरूरी है, इसके साथ-साथ अगला अनुशासन है-

५. **व्यवहारानुशासन**-हमारा व्यवहार हमारे नियंत्रण में हो। हमें किसके प्रति कैसा व्यवहार करना है वह व्यवहार स्वयं ही तुम्हारी चर्या में ढल जाना चाहिये। किसके प्रति मुझे मौन होना है, किसके प्रति मध्यस्थ होना है, किसकी बात का जबाव देना है, किसको देखकर के हाथ जोड़ना है किसको देखकर के मुस्कुराना है, सहज ही तुम्हारा व्यवहार ऐसा होना चाहिये। जिसका व्यवहार अच्छा होता है तो वह पशु के प्रति भी अच्छा व्यवहार करता है, वह कहलाता है व्यवहारानुशासन। वह जहाँ भी जायेगा उसका अच्छा व्यवहार दूसरे व्यक्ति पर प्रभाव डालेगा। जहाँ आपका काम 100 रु. से चल जाता है तो वहाँ आप 100 रु. खर्च करोगे, 100 की जगह हजार तो खर्च नहीं करोगे, तो जहाँ आपका काम चार शब्द से चल जाता है वहाँ 40 बोलने की क्या आवश्यकता है। पैसे की बचत करते हो शब्दों की बचत भी करो शब्दों को भी बचाओ।

ऐसे शब्दों का प्रयोग करो जो शब्द तुम्हें भी अच्छे लगते हैं **''वचने का दरिद्रता''** वचनों में दरिद्रपना क्यों यदि तुम्हें मीठे फल अच्छे लगते हैं खट्टे फल अच्छे नहीं लगते तो सामने वाले को भी मीठे फल अच्छे लगते हैं, खट्टे अच्छे नहीं लगते। तुम मीठे वचन सुनना चाहते हो तो मीठे वचन बोलो। मीठे वचन बोलने से तुम्हारा मन, तुम्हारा चित्त जल्दी स्थिर हो जायेगा और तुमने कोई ऐसी बात बोल दी जो सामने वाले को चुभ गयी, तुम्हारा मन चंचल हो जायेगा, कहीं मुझे पीटने न आ जाये, कहीं कुछ और न हो जाये, तो मन स्थिर

नहीं हो पायेगा। जो कम से कम बोलेगा, जिसका भाषा पर अनुशासन है क्या बोलना है, कैसे बोलना है, कितना बोलना है, कहाँ बोलना है इस बात को जानता है वही व्यवहारानुशासन और अपने मन पर अनुशासन कर सकता है। अगला अनुशासन है-

६. श्वाँसोनुशासन-श्वाँस पर भी अनुशासन। श्वाँस पर अनुशासन तभी हो सकता है जब ये सभी अनुशासन क्रम से आते जायें। व्यक्ति सहजता में श्वाँस ले रहा है तो वह एक ऐसी नदी की तरह जीवन जीता है जिसमें उफान भी नहीं आता और सूखती भी नहीं है। योगी प्राय:कर के इनका अभ्यासी होता है उसकी श्वसन क्रिया भी शांति से चलती है उसे दौड़ना भी नहीं है और बेहोश होकर खुर्राटे भी नहीं मारने, जब बेहोशी में खुर्राटे लेगा तो श्वाँस की गति अलग रहेगी और दौड़ेगा तब श्वाँस की गति अलग रहेगी, किन्तु जो सहजता में बैठा है, सहजता में चलना, सहजता में चर्चा करना सहजता में आहार करना। सहजता में विहार करना।

इन सब चीजों में सहजता के साथ चलेगा तो श्वसन क्रिया उसकी ज्यादा अंतर की नहीं होगी, उसका गेयर प्राय:कर एक सा चलता रहेगा। सहजता में कभी ब्रेक लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि उसने पहले से ही स्पीड बांध कर रखी है। तो महानुभाव ! मनोनुशासन करने के ये तरीके हैं। जैसे अकेला शास्त्र पढ़ने से तुम्हारा शब्दों पर अनुशासन नहीं हो पायेगा। शब्दानुशासन करने के पहले लिंगानुशासन, छंदानुशासन, अलंकारानुशासन अर्थानुशासन, उच्चारणानुशासन ये सब शासन आपके हों तब तो आपका शब्दानुशासन है। अकेले शब्दों को सीखने मात्र से शब्दानुशासन नहीं हो सकता।

ऐसे ही आहारानुशासन, शरीरानुशासन, इन्द्रियानुशासन, भाषानुशासन, व्यवहारानुशासन और श्वांसोनुशासन इन छहों को जानकर ही मनोनुशासन

हो सकता। यदि इन छह पर अनुशासन नहीं किया तो मन पर अनुशासन करना बड़ा कठिन है और जिसका मन अनुशासित होता है वही आध्यात्मिकता के क्षितिज पर गति कर सकता है। आध्यात्मिकता का मार्ग निरालम्बिता का मार्ग है, आध्यात्मिकता का मार्ग ऐसा मार्ग है जिसमें पदचिह्न नहीं होते। आकाश में पक्षी उड़े तो आकाश में उसके पैर दिखाई नहीं देते, आकाश में कोई विद्याधर चले तो पैरों के निशान दिखाई नहीं देते, आकाश में कोई ऋद्धिधारी मुनि चलें या किसी केवली का विहार हो तो पैरों के चिह्न दिखाई नहीं देते, आकाश में कोई वायुयान चला जाये तो उसका धुँआ भले ही दिखाई दे जाये किन्तु 1 घंटे बाद भी देखोगे तो कोई निशान नहीं मिलेगा।

जैसे रेत पर कोई भवन बनाये तो पानी की लहर आती है और मिटा कर चली जाती है वहाँ तो फिर भी स्थिरता रह सकती है किन्तु आध्यात्मिकता के क्षेत्र में बढ़ने वाले व्यक्ति के कदमों के पद चिह्न देखने में नहीं आते हैं तुरंत मिट जाते हैं इसलिये आध्यात्मिकता का मार्ग प्रत्येक प्राणी मात्र का अपना-अपना अलग होता है, कोई किसी के मार्ग पर चल नहीं सकता। व्यवहार में एक दूसरे का सहारा लिया जाता है विचारों को ग्रहण किया जाता है, विचारों के अनुसार गति की जाती है, विचारों को शब्दों की पोशाक पहनाकर उन्हें मील के पत्थर की तरह काम में लेते हैं शास्त्रों में लिख देते हैं उसके अनुसार चलने का प्रयास करते हैं।

जब तक शब्दों का सहारा ले रहे हैं तब तक हमारी यात्रा व्यवहार की यात्रा है, तब तक निश्चय की यात्रा नहीं है। निश्चय की यात्रा तब प्रारंभ होगी जब हम शब्दों की नाव छोड़ देंगे और अपने हाथों से तैरना प्रारंभ करेंगे। पानी में तैरने का आशय भी यही है कि वहाँ पर किसी के पग चिह्न रहते नहीं हैं, तैरने का आशय ये है कि आध्यात्मिक क्षेत्र में गति कर रहे हैं और यदि नाव का सहारा लिया

है तब तक गुरु आदि की सहायता से किनारे पर पहुँचने का प्रयास कर रहे हैं। महानुभाव ! अध्यात्म के क्षेत्र में कोई आलम्बन नहीं होता किन्तु अध्यात्म के क्षेत्र की देह पर पहुँचने के लिये आलम्बन अवश्य होते हैं।

''निरालम्ब का आलम्बन'' आप कहेंगे महाराज जी आप कैसी बात करते हैं-एयरपोर्ट पर पहुँचने के लिये, वहाँ तक जाने के लिये आप चाहे गाड़ी, तांगा, रिक्शा, स्कूटर, ट्रेन, बस किसी पर भी बैठकर जाओ पर एरोप्लेन में बैठने के बाद फिर किसी घोड़ा, बैलगाड़ी, स्कूटर आदि की आवश्यकता नहीं है। ऐसे ही आध्यात्मिक क्षेत्र में जब आपका प्रवेश हो गया फिर आपको किसी आलम्बन की आवश्यकता नहीं है। किन्तु आध्यात्मिक एयरपोर्ट तक जाने के लिये आलम्बनों की आवश्यकता है। कौन सा आलम्बन लें जिससे आध्यात्मिकता के एयरपोर्ट तक पहुँच जायें, सबसे सरल सहज आलम्बन है **''भक्ति''**।

तीनों लोकों में, तीनों कालों में भक्ति का आलम्बन सबसे सरल, सहज और सुगम है इससे सरल, सहज आलम्बन और कोई है ही नहीं। जो व्यक्ति भक्ति के आनंद रस में डूब जाता है, बाहर की दुनिया से अनभिज्ञ हो जाता है, अपने आप में डूबते-डूबते कहाँ पहुँच जाता है उसे खुद नहीं मालूम मैं कहाँ आ गया, क्योंकि जब तक मालूम रहता है तब तक वह धारा विकल्प की धारा कही जाती है, व्यवहार की धारा कही जाती है, तब तक वह आलम्बन की धारा कही जाती है। जब भक्ति का सहारा लिया था तब तक तो भक्ति दिखाई दे रही थी किंतु जब भक्ति में डूब गये तब नहीं मालूम कौन हैं भगवान्, कैसे हैं भक्त, क्या है भक्ति, नहीं मालूम उसमें डूब गये तो बस डूब गये।

ये सबसे सरल आलम्बन है जिसके लिये किसी व्याकरण, न्याय, सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है, इसके लिये किसी भाषा पर

कमाण्ड करने की भी आवश्यकता नहीं है, इसके लिये कोई गहन तपस्या करना आवश्यक नहीं है, इसके लिये कोई व्रत-उपवास, रसत्याग करना आवश्यक नहीं है। इसके लिये आवश्यक है बिना स्वार्थ के अपने चित्त को अपने आराध्य के चरणों में सौंप देना। यह धारा श्रद्धा से प्रारंभ होती है बिना श्रद्धा के प्रारंभ होती नहीं। यदि श्रद्धावान् ने अपना चित्त, अपना समग्र, अपना हृदय अपने प्रभु, अपने आराध्य के चरणों में सौंप दिया है। यदि कोई एक भी कण्डीशन रखी है तो भक्ति सही हो नहीं सकती वह तो व्यापार हो गया। अपने आराध्य/इष्ट की भक्ति करें और कोई बात सामने रखें, कि मैं महीना भर, सालभर पूजा करूँगा तो ऐसा काम होना चाहिये यह भक्ति का कर तुमने माँग लिया, वह तुम्हें मिल भी गया वह तो वस्तु विनिमय है, मुद्रा विनिमय न करके आपने वस्तु विनिमय कर लिया, यह तो कोई भक्ति नहीं कहलाती है।

भक्ति तो वह कहलाती है जिसमें लेन-देन का सौदा न हो, किन्तु आप तो प्राय:कर सब बनिया बुद्धि वाले हैं, बिना लेन-देन के तो बात कर ही नहीं सकते। कहते हैं कि बनिया वह होता है जो कहीं बैठेगा भी तो लाभ से, यदि बनिया का बेटा गिरा भी होगा तो लोग मानेंगे नहीं, वह कहेंगे गिरा भी होगा तो कुछ न कुछ लाभ होना होगा, उससे पूछा कैसे गिरे तो बोला वहाँ सोने की मुहर पड़ी थी मैं गिरा और चुपचाप से उठा ली, तो बनिया का बेटा गिरेगा भी तो लाभ से गिरेगा। वह तो अपना लाभ देखता है घाटे का काम तो करता ही नहीं है। किन्तु श्रद्धा का काम यह बनिया का काम नहीं है।

भक्ति का काम तो उसका है जो अपना सब कुछ देना जानता है। भक्त वही बन सकता है जो अपना सब कुछ समर्पण कर सकता है। जो बुद्धि को तिलांजजी देकर भक्ति की धारा में बह सकता है जो व्यक्ति मुर्दे की तरह नदी में डूब जाये वह पार हो सकता है, जो

हाथ-पैर चलायेगा तो आज नहीं तो कल डूब जायेगा। भक्ति की धारा वाले कहते हैं भक्ति में गाढ़ श्रद्धा है। वे कहते हैं कुछ करना ही नहीं है भक्ति में डूब जाओ बस। जो कुछ करता है वह मरता है तरता नहीं यदि करना छोड़ दोगे तो तर जाओगे, मर नहीं पाओगे तिर जाओगे।

महानुभाव! मनोनुशासन करने की पहली धारा भक्ति की धारा है। यह बात शत प्रतिशत सत्य है कि यदि भक्ति में रम गया तो ऐसे व्यक्ति के मन को कोई कामी बना नहीं सकता। जब तक उसका मन काम में लगा हुआ था तब तक राम में रमा नहीं था। जब तक उसका मन काम, दाम, नाम में रंगा हुआ है तो राम में नहीं लगा। और काम, दाम, नाम सब कुछ धरे रहेंगे यदि एक बार भी मन राम में लग गया तो वह व्यक्ति फिर एक बार भी मुड़कर देखता नहीं है-आप पूजा में पढ़ते हैं।

अर्हत्भक्ति सदा मन आने, सो जन विषय-कषाय न जाने॥

अरिहंत भक्ति जिस व्यक्ति के मन में आ गयी वह व्यक्ति विषय कषाय को जानता ही नहीं है कि विषय-कषाय क्या चीज है। तुम्हारा मन तुम्हें ऐसे नियंत्रण नहीं करना है कि आँखों को बंदकर, मुख में ताला लगाकर इन्द्रियों को रोक कर बैठ गये, ऐसे कभी मन नियंत्रण नहीं कर पाओगे। भक्ति की धारा मनोनुशासन करने की बहुत अच्छी रीति है दूसरी धारा है **''संयम''**

संयम के माध्यम से हम नियंत्रण करते हैं, क्या नियंत्रण करते हैं संयम का आशय क्या है? संकल्प पूर्वक जीवनभर के लिये प्रतिज्ञा करना। समीचीनता पूर्वक जीवन पर्यंत कोई प्रतिज्ञा करना, समता पूर्वक प्रतिज्ञा करना, सोच समझकर प्रतिज्ञा करना। जो भी हमारी बुराई है उसका मेरा जीवन भर के लिये त्याग। इसलिये प्राय:कर जब भी क्षत्रियों को वैराग्य हुआ तब वैराग्य के समय उन्होंने अणुव्रतों को

स्वीकार नहीं किया कोई ऐलक-क्षुल्लक नहीं बना सीधे मुनि दीक्षा ली। आप कहेंगे महाराज जी क्षत्रिय भी तो अणुव्रतों का पालन करते हैं, हाँ करते थे किन्तु वैराग्य होने पर नहीं, राग होने पर।

''भये जब अष्टम वर्षकुमार धरे अणुव्रत महासुखकार''

वह तो सहज ही उनके कुल की परम्परा होती है। आठ साल के होते ही मौलि बंधन किया, पाँच अणुव्रतों के संस्कार दे दिये। यह तो सहज प्रक्रिया है वैराग्य होने पर पाँच अणुव्रत लिये ऐसा नहीं है जब किसी राजा को वैराग्य होता है आप शास्त्रों में पढ़ना उन्होंने सीधी दिगम्बर दीक्षा ले ली। क्षत्रियों का कार्य होता है या तो इस पार या उस पार, बीच का तो कोई काम नहीं। तो दूसरी धारा है संयम, यह संयम की धारा हर एक के बस की बात नहीं है। संयम की धारा क्षत्रिय के बस की बात है। संयम में तप भी आ जाता है और तप का आशय है जो तार दे पापों से अथवा जो चेतना को तन से पवित्र कर दे वह तप है। जो परमात्मा से तार जोड़ दे वह तप है। तप का आशय इच्छा निरोध कहो, इन्द्रिय निरोध कहो, अशुभ भावों का निरोध कहो, केवल शरीर को बांधकर यूँ बैठ जाना कि मैं मुख से कुछ माँगूगा नहीं, इसका नाम तप नहीं है।

इन्द्रियों को रोकना, शरीर को रोकना, वचनों को रोकना तप नहीं है, अंतरंग के परिणामों को, अंतरंग की इच्छाओं को, भावनाओं को रोकना तप है। यदि बहिरंग तप करते रहे तो उस बहिरंग तप से शरीर की प्रतिष्ठा ख्याति हो सकती है बहिरंग तप से आप लोकपूज्य हो सकते हैं किन्तु बहिरंग तप से चित्त में शांति नहीं मिलती। चित्त में शांति तब मिलेगी जब ऊल-फिजूल की बातें, इच्छायें, वांछायें, आकांक्षायें अवरुद्ध हो जायें। चित्त की वृत्तियों का निरोध करना तप है वह संयम के साथ होने वाला तप और चित्त का निरोध भी क्षत्रिय वृत्ति से संभव है। अगला साधन है-**''शीलव्रत''**

शीलव्रतों को पालन करने वाला व्यक्ति द्विज बुद्धि वाला है। वह कहता है मैं वह नहीं जो पहले था अब तो बदल गया। यदि इतना कहने का भाव मन में है कि मैं पहले वाला नहीं हूँ तो पहले की स्मृति तो अभी भी है, जब बदल जाता है तो पहले का कोई अंश नहीं रहता। द्विज का आशय है जिसका दूसरा जन्म हुआ हो जो दीक्षा लेता है, व्रतों को स्वीकार करता है, शील का पालन करता है, अपनी मर्यादा का पालन करता है, अपनी विशुद्धि का ध्यान रखता है, क्रिया काण्डों का ध्यान रखता है वह द्विज बुद्धि वाला कहता है।

मैं व्रतों के द्वारा अपने मन का नियंत्रण कर सकता हूँ, आज इस वस्तु का त्याग, उस वस्तु का त्याग, आज आँख बंद करके ही बैठूँगा आदि-आदि प्रवृत्ति वाला द्विज कहलाता है वह अपने मन को नियंत्रण करने के लिये इन व्रतों को ज्यादा ग्रहण करता है। यह भी मन पर नियंत्रण करने का एक साधन हो सकता है और अगला साधन तुम वणिक बुद्धि वालों के लिए वह है-**''जाप और स्वाध्याय''**

एक सौ आठ बार पढ़ना है नौ बार नहीं। क्यों? क्योंकि हम 108 प्रकार के ही तो पाप करते हैं वह पाप 108 प्रकार से मन वचन काय से, कृत कारित अनुमोदना से, समरंभ समारंभ आरंभ से, क्रोध मान माया लोभ से इन सबका आपस में गुणा करो तो 3 x 3 x 3 x 4=108 प्रकार का जीवाधिकार, यह जीवाधिकार संबंधी 108 प्रकार का पाप होता है हम अपनी माला में 108 मोती ही फेरते हैं। यदि 107 रह गये तो रात भर विकल्प आयेगा कि आज हमारी माला खण्डित हो गयी वह गिन-गिन के ही पढ़ेगा। एक श्लोक पढ़ेगा, उसका अर्थ पढ़ेगा, इससे क्या लाभ है यदि लाभ है तो पढ़ेंगे वरना पढ़ेंगे ही नहीं, तो उस वणिक बुद्धि वाले को पहले लाभ-हानि चाहिये। लाभ-हानि का पहले ब्यौरा दिखाओ इसमें यह लाभ यह हानि है तब कुछ करने की सोचेगा। वणिक बुद्धि वाला व्यक्ति ज्यादा सयाना होता है इसीलिए

कोई भी खतरा लेने को तैयार नहीं होता है ऐसा व्यक्ति कभी तैरना नहीं सीख सकता वणिक बुद्धि को छोड़कर जो व्यक्ति जीवन में कुछ सहने को तैयार होता है वही जीवन में कुछ उपलब्ध कर पाता है।

"Without Risk No Gain" यदि कोई व्यक्ति जीवन में ये सोच ले कि मुझे जीवन में कोई रिस्क ही नहीं लेना है तो उसका जीवन कोरा का कोरा ही है। जब कोई व्यक्ति घोड़े पर चढ़ेगा तो गिरने का रिस्क तो है जब चलेगा तो पैर फिसलने का रिस्क तो है, जमीन पर यूँ ही पड़ा रहेगा तो क्या रिस्क। महानुभाव ! वणिक बुद्धि वाला व्यक्ति मन पर अनुशासन करता है तो कैसे करता है-जप के द्वारा। जप का आशय क्या है-'ज' जनक 'प'-पवित्रता - जो पवित्रता का जनक है। 'ज'-जल 'प'-परमात्मा-जप ऐसे ही है जैसे परमात्मा का साक्षात्कार रूपी जल ही मिल गया हो चित्त को धोने के लिये। अथवा

जकारो जन्मविच्छेदः पकारोः पापनाशनः।
तस्माद्जपेति प्रोक्तव्यः जन्मपाप-विनाशकः॥

जाप में दो अक्षर हैं 'ज' और 'प'। 'ज' का अर्थ है जन्म-मरण का विच्छेद करने वाला। 'प' का अर्थ है पापों का नाश करने वाला। ''करो जाप हरो पाप''-तो ये वणिक बुद्धि का साधन है कि जाप के माध्यम से स्वाध्याय के माध्यम से मैं अपने मन पर अनुशासन कर सकता हूँ। महानुभाव! ये चार प्रकार की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं मन पर अनुशासन करने की। जो व्यक्ति अपने मन पर अनुशासन कर लेता है उसे तीन लोक में किसी का भय नहीं होता। जो व्यक्ति अपने मन पर इन्द्रियों पर अनुशासन नहीं कर पाता वह जीवन में कभी निर्भीक नहीं बन पाता। चित्त की वृत्तियों को बदलने के लिये आवश्यक है मन पर अनुशासन करना।

सर्प ने काँचली छोड़ दी जहर नहीं छोड़ा तो क्या हुआ, दुष्ट व्यक्ति ने एक मकान छोड़ दिया दूसरा छोड़ दिया किन्तु क्या हुआ यदि दुष्टता नहीं छोड़ी तो। अंदर की दुष्टता, अंदर का जहर जब निकल जाये तब ही नि:संदेह वह दुष्टता शिष्टता में बदल जायेगी। अंधकार को नष्ट करके प्रकाश को बाहर से नहीं लाना पड़ता। जब अंधकार नष्ट हो जाता है वही प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है। वे ही परमाणु जो अंधकार के थे वे प्रकाश में बदल जाते हैं। ऐसे ही अंदर की दुष्टता जब मर जाती है तो वह शिष्टता में बदल जाती है। मिथ्या श्रद्धा ही सम्यक श्रद्धा का रूप लेती है, मिथ्याज्ञान ही सम्यग्ज्ञान बन जाता है, कुचारित्र ही सम्यक् चारित्र बन जाता है, असंयम की शक्ति ही संयमरूप हो जाती है। शक्ति उतनी ही है चाहे क्रोध में खर्च करो चाहे क्षमा में खर्च करो।

कहने का आशय केवल ये है कि चित्त की प्रवृत्तियों को बदलने के लिये मनोनुशासन बहुत जरूरी है। आप सभी भी अपने मन पर अनुशासन करें मैं आपके प्रति ऐसी भावना भाता हूँ जिससे आपकी चित्त की वृत्तियाँ बदलें और आप भी स्वस्थ्य चित्त, परम पवित्र अवस्था को प्राप्त हो सकें ऐसी भावना के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ-

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

संसार वह स्वप्नों की दुनिया है जहाँ हम कभी आँख बंद करके और कभी आँख खोलकर स्वप्न देखते हैं। इसी स्वप्न को हकीकत समझकर जीने वाला व्यक्ति शाश्वत जाग्रति का आनंद लेने से चूक जाता है। और जब मृत्यु आती है तो वह व्यक्ति नींद से जागे बालक की तरह सपना वापस पाने के लिये छटपटाता है।

यह संसार एक रंगमंच है जहाँ हर जीव अपना करतब दिखाता है। संसार का प्रत्येक पदार्थ लुभावना है, चित्ताकर्षक है इसके आगे संसार छोटा पड़ जाता है। व्यक्ति इसके पीछे इतना भागता है कि वह संसार में न रहकर, उसके विकारी चित्त में संसार रहने लगता है। निर्विकारी चित्त तो संसार से निर्लिप्त रहता है। जैसे पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण बल होता है वह सभी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है उसी प्रकार यह संसार भी प्रत्येक आत्मा को अपनी ओर खींचता है।

उस संसार के गुरुत्वाकर्षण को तोड़ने के लिये गुरु रूपी ताकत लगानी पड़ती है। जिनका मोह जितना तीव्र होता है उनका उतना ही बड़ा संसार होता है, जिनके चित्त रूपी आकाश में रागद्वेष रूपी

विकारी तोते उड़ते रहते हैं उन्हें उतनी ही अधिक ताकत लगानी पड़ती है। अनादि काल से यह जीव मोह के दलदल में फंसा पड़ा है उसे यह संसार की पृष्ठ भूमि लुभाती रहती है। यह संसार चक्र सदैव गतिशील है, जब तक यह जीव इस कालचक्र में घूमता रहेगा तब तक संसार से मुक्त न हो सकेगा। दौलत राम जी ने भी हमारी अनादि के भटकने की कथा में यही कहा है-

मोहमहामद पियो अनादि भूल आपको भरमत वादि।

यह जीव मोह रूपी मदिरा को अनादि से पिये बैठा है, जिसके मद में आकर अपने आत्म स्वरूप को भूल व्यर्थ में ही 84 लाख योनियों में भटक रहा है। जहाँ जाता है वहीं उसी में लीन हो जाता है। उसी में मोह कर अपना मान बैठ जाता है।

यह मोहनीय कर्म बड़ा खतरनाक है। सभी कर्मों का राजा है। जिसका सम्पूर्ण क्षय 12वें गुणस्थान में होता है। जिसके समूल नाश होने पर अनंत सुख प्रकट होता है। इस मोहनीय कर्म की 28 प्रकृति जीव को 70 कोड़ा कोडी सागर तक इस संसार में भ्रमण कराती रहती हैं और न जाने हमने कितने 70 कोड़ा-कोड़ी, ऐसे ही निकाल दिए, किन्तु हम उस मोह चक्र से निकल नहीं पाये।

मोहनीय कर्म के दो भेद आचार्यों ने कहे पहला दर्शन मोह दूसरा चारित्रमोह। पुनः दर्शन मोहनीय के तीन भेद कहे-मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति। चारित्र मोह के 25 भेद कहे-25 कषायें 4 अनंतानुबंधी, 4 अप्रत्याख्यान, 4 प्रत्याख्यान, 4 संज्वलन और हास्यादि नव नौ कषाय। दर्शन मोहनीय में पहला भेद कहा-मिथ्यात्व यह जीव अनादि से मिथ्यात्व के संस्कार के कारण ही तो अपने और पर के भेद को नहीं जान पाता। मिथ्यात्व का घोर अंधकार इस आत्मा के पटल पर छाया हुआ है जिस दिन सम्यक्त्व रूपी एक किरण भी

इस पटल पर पड़ जायेगी उसी दिन हमारा यह संसार रूपी सागर ''चुलुक प्रमाणः'' चुल्लुभर पानी के समान रह जायेगा।

यह मिथ्यात्व सभी कर्मों का राजा है। जब राजा बंधन को या क्षय को प्राप्त हो जाता है तो पुनः सारी प्रजा की व्यवस्था भी ढीली पड़ जाती है। ऐसे ही यह मोह की मिथ्यात्व रूपी गांठ जिस वक्त खुल जायेगी पुनः अन्य कर्मबंधन भी ढीले पड़ जायेंगे। मिथ्यात्व से ग्रसित जीव उन्मुक्त होकर पर में मोह से ऐसे लिपटा है जैसे चंदन के वृक्ष से सर्प लिपटे रहते हैं। यह मिथ्यात्व संसार की जड़ है, मूल है और जब तक मूल को उखाड़ कर अलग नहीं कर दिया जाता तब तक उसमें राग द्वेष, मोह रूपी कपोलें निरंतर पैदा होती ही रहती हैं। दर्शन मोहनीय का दूसरा भेद सम्यक् मिथ्यात्व जो राजा तो नहीं किन्तु हाँ राज्य में युवराज की तरह सुशोभित होता है। यह सम्यक् मिथ्यात्व उस राज्य का युवराज है। राजा के जाने के बाद जो कार्य भार राजा सम्भालता था अब वह युवराज (सम्यक् मिथ्यात्व) संभालता है, यह इस आत्मा के कल्याण में अवरोधक तत्त्व है इसका नाश करना भी आवश्यक है और तीसरा भेद सम्यकप्रकृति यह राजा के बेटे के समान है। अभी बेटा छोटा है किन्तु है तो राजा के वंश का ही अंश। भले ही अभी कुछ न कर सके किन्तु बड़ा होकर अपना असर जरूर दिखायेगा। उसे भी अभी ही क्षय कर दो ताकि वह बढ़ ही न सके। और चारित्र मोहनीय की वे 25 रानियाँ भी कम बलशाली नहीं हैं धीरे-धीरे इनकी शक्ति को क्षीण कर 10वें गुणस्थान में इनकी पूर्णता होती है।

महानुभाव ! यह मोहनीय कर्म बहुत ही ताकतवर है इसको नष्ट करने के लिये इसका खण्डन करने के लिये, इसका समूल नाश करने के लिये मोक्षमार्ग एक था, एक है और एक रहेगा। कर्म आठ हैं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय।

ये आठों के आठों कर्मों का काल चक्र सदैव गतिशील रहता है। इनकी निर्जरा ही मोक्ष है। इन कर्मों के बंधन को खोले बिना मुक्ति संभव नहीं। इन कर्मों की रस्सियों का बंधन अनेक प्रकार से दिखाई देता है, अर्थात् इनके ही कारण संसार के अनंत मार्ग हैं किन्तु मुक्ति का मार्ग एक ही है।

बंधन चाहे सूतली का हो, रस्सी का हो, सांकल का हो, स्वर्ण बेड़ी का हो, किसी का भी हो बंधन तो बंधन ही है। अद्रि कुमार जो दृष्टिमात्र से हाथी के बंधन भी तोड़ देते थे वे मोह के 12 सूत के कच्चे धागे 12 वर्ष तक भी नहीं तोड़ पाये।

यह जीव जहाँ जिस गति में जाता है वहीं रम जाता है, चाहे वह नाली का कीड़ा हो उसे उसी बदबू में अच्छा लग रहा है, आचार्य पूज्य पाद स्वामी कहते हैं-

यो यत्र निवसन्नास्ते स तत्र कुरुते रतिं।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति॥

जो जहाँ रहता है उसे वहाँ अच्छा लगता है दूसरी जगह जाना नहीं चाहता, जैसे कीचड़ या विष्टा के मध्य में पड़ा हुआ कीड़ा अपनी आयु, शरीर को छोड़कर जाना नहीं चाहता और यदि सुरालय में देव हैं तो वे भी स्वर्ग को छोड़कर जाना नहीं चाहते, दोनों के अंदर समान रूप से जिजीविषा भरी है, दोनों समान रूप से जीना चाहते हैं। एक रोगी व्यक्ति, उसका शरीर जर्जर हो गया उससे भी पूछोगे-कि मरना चाहते हो तब भी वह कहेगा थोड़ा सा और जी जाते, तुम्हारा शरीर जीर्ण हो गया अब तुम क्या करोगे जी करके? भगवान् से प्रार्थना करो कि हम ठीक हो जायें, वह शरीर के दु:ख से घबरा गया हो तो कदाचित् हो सकता है कि मृत्यु का सुख अच्छा हो इसलिये वह कह दे वरना मरना कोई नहीं चाहता, सिवाय एक नारकी के। बस

एक नारकी जीव ही जीना नहीं चाहते और संसार के जीवों में से कोई मरना नहीं चाहता।

महानुभाव ! कारण यही है कि संसार में जो कुछ भी है सब आकर्षण है यहाँ तक कि घर में गालियाँ मिलती हैं वह भी अच्छी लगती हैं। संसार में इस जीव को सब अच्छा लगता है, कोई कहता है कि मीठा ही मीठा अच्छा लगता है पर नहीं यहाँ तो नमकीन भी अच्छा लगता है। लोग कहते हैं कि प्रशंसा ही अच्छी लगती है अरे यहाँ तो निन्दा और गालियाँ भी अच्छी लगती हैं। जब बुराई भी अच्छी लगने लगे तब तो इस संसार से मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। जब अच्छाई ही अच्छी लगे तब तो ठीक है बुराई से मन टूटकर पुनः विरक्त हो जाये किन्तु जब बुराई को भी अच्छा मानने लगे, यहाँ तो बुरा भी बूरे की तरह स्वादिष्ट लगता है उसे भी खा जाता है, अच्छे को खायें तो ठीक है किन्तु बुरे को भी नहीं छोड़ रहे हैं।

तो कहने का आशय यह है कि संसार बड़ा मोहक है और दूसरी बात एक और है जब रंगमंच पर नाटक खेला जाता है तो बार-बार सीन चेंज कर दिये जाते हैं, पात्र भी चेंज होते रहते हैं और पर्दे भी चेंज होते रहते हैं, कभी जंगल का सीन, कभी महलों का सीन, कभी मंदिर का कभी पहाड़ का। तो जो दर्शक लोग होते हैं वे ऊबते नहीं हैं, ऐसे-ऐसे दृश्य, आवाजें आती हैं कि व्यक्ति वहाँ से उठना नहीं चाहता। उस टी.वी. का दृश्य इतना आकर्षक है कि तुम्हारी आँखों को घूमने नहीं देता है, कहीं किसी क्षण में कोई महत्वपूर्ण बात निकल न जाये। तो संसार में तो अनंत परदे हैं और उन परदों को तुम देखते रहते हो, बस इन परदों में रंजायमान है दुनिया। एक परदा-दूसरा परदा बदलता रहता है। वह यह नहीं सोच पाता कि इस परदे के पीछे कुछ नहीं है बस परदा ही परदा है।

एक बार ईश्वर चन्द्र विद्या सागर कलकत्ता में कोई नाटक देख रहे थे, उन्होंने उसमें देखा कि कोई एक व्यक्ति एक लड़की के साथ छेड़-छाड़ कर रहा है और अन्य व्यक्ति उसे समझाने का प्रयास कर रहे हैं किन्तु वह नहीं माना, ईश्वर चन्द्र विद्या सागर खड़े हुये और उन्होंने अपना जूता उठाकर फेंका, लोगों ने देखा अरे ये क्या कर रहे हैं, फिर उन्होंने इधर-उधर देखा, उन्हें भूल ज्ञात हुयी, ये वास्तव में नहीं मैं तो दृश्य देख रहा था, महानुभाव ! जब व्यक्ति किसी नाटक को देखकर इतना रंजायमान हो सकता है तो फिर ये तो संसार है यहाँ पर नित्य क्षण-क्षण में परदे बदलते रहते हैं, तो व्यक्ति का चित्त रंजायमान क्यों नहीं होगा, अवश्य ही होगा। संसार के दृश्यों को देखने में तुम इतने खो जाते हो कि तुम्हें अपना अहसास नहीं होता। संसार के पदार्थों में, संसार के परदों में तुम इतना लीन हो जाते हो तुम्हारी बुद्धि और संसार के दृश्य एक-मेक हो जाते हैं, जो एकीभाव तुम्हारा प्रभु परमात्मा से होना चाहिये, जिससे तुम्हारी आत्मा भी परमात्मा बन जाये, किन्तु तुम एकीभाव परमात्मा से तो करते नहीं अनात्मा से करते हो, शरीरों से करते हो, संसार की वस्तुओं से करते हो, संसार की पर्यायों से करते हो, द्रव्य से नहीं।

लोग कहते हैं संसार बुरा है, मैं इसे सर्वथा ऐसा नहीं मानता कि संसार बुरा है। मैं नहीं कहता कि बुरा है, जिस संसार में तुम रह रहे हो कैसे कहें संसार बुरा है। महाराज जी ! हम तो नहीं कहते किन्तु धर्मात्मा, त्यागीव्रती, संत आते हैं तो वे कहते हैं कि संसार तो स्वार्थी है, दु:खों से भरा है, संसार तो नश्वर है आदि-आदि बातें कहीं जाती हैं। उन्होंने कैसे कहीं, किस अपेक्षा से कहीं, ये बात भी समझने लायक है।

संसार कैसा है-जैसा है वैसा है तुम्हारी दृष्टि में कुछ फर्क आ गया है इसलिये कह रहे हो कि संसार स्वार्थी है, तुम्हारे स्वार्थ की

सिद्धि नहीं हो पायी इसलिये लग रहा है कि संसार स्वार्थी है। तुम्हें संसार में कोई सुखानुभूति नहीं हुयी होगी, पाप के उदय से तुम्हें पत्नी पुत्र आज्ञाकारी नहीं मिले, इसलिये तुम्हारे लिये संसार असार और दु:खों से भरा हुआ है, ये सब तुम्हें मिल जाता तो तुम कहते किसने कह दिया संसार असार है, यदि तुम्हारे पास सब अनुकूलता होती तो तुम नहीं कह पाते कि संसार में कुछ नहीं है। किन्तु जब कभी ऐसे व्यक्ति को अंदर में चोट पहुँचती है जिसको वह अपना मान बैठा है, अपनी शक्ति के बल पर, सत्ता के बल पर, वित्त के बल पर उसकी सुरक्षा नहीं कर पाता, तब कहता है कि हाँ संसार में कोई शाश्वत पदार्थ नहीं है, सब नश्वर है। तुम अपने सत्ता, बल, ज्ञान, विज्ञान के माध्यम से किसी पर्याय को शाश्वत नहीं कर सकते। वैज्ञानिक चाहें कि वे किसी के शरीर में यदि खून की कमी है तो दूसरे के शरीर में से लेकर खून उसके शरीर में डाल सकते हैं किन्तु खून की एक नयी बूंद तैयार नहीं कर सकते। वैज्ञानिक जो कह रहे हैं कि हम ईश्वर तक पहुँच गये, वे कहाँ तक पहुँचे कहाँ नहीं पहुँचे, विज्ञान की खोज कहाँ कितनी है ये मैं नहीं जानता किन्तु इतना जरूर जानता हूँ कि वैज्ञानिक के पास अभी इतनी शक्ति भी नहीं है कि वह खून की एक बूंद तैयार कर सकें आत्मा को क्या तैयार कर पायेंगे।

यदि कोई संतान पैदा करनी है तो रज-वीर्य लेकर किसी परखनली में पुत्र पैदा कर सकते हैं किन्तु विज्ञान ने क्या कभी कृत्रिम रजवीर्य भी पैदा किया है ? क्या कभी हड्डियों का निर्माण किया है ? महानुभाव ! कहने का आशय यह है कि जो प्राकृतिक चीज हैं वे प्राकृतिक ही रहेंगी उन्हें कृत्रिम तैयार किया नहीं जा सकता और उस प्राकृतिक रूप परमात्मा को तो प्राकृतिक रूप धारण किये बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। हम बात कर रहे थे संसार की। संसार में सब कुछ अच्छा नहीं सब कुछ बुरा नहीं हैं संसार अच्छा भी है बुरा

भी है। यदि हमारी दृष्टि अच्छी है तो हम देखते हैं संसार में क्या आनंद आ रहा है। दु:ख है तो वह संसार में नहीं वह तो तुम्हारे पापकर्म में है, सुख है तो वह संसार में नहीं तुम्हारी आत्मा में है। मोहनीय कर्म समूल नष्ट हो जाये तो तुम्हारी आत्मा अनंत सुख से परिपूर्ण हो जाती है।

ज्ञान है तो संसार की पुस्तकों में नहीं तुम्हारी आत्मा में है। ज्ञानावरणी कर्म का क्षय करो तुम अनंतज्ञानी बन जाओ। अनंत पदार्थों को देखने की शक्ति है तो वह संसार में नहीं, संसार में ऐसा कोई चश्मा नहीं कि जिसकी आँखों में ज्योति नहीं उसे लगाकर दिखा दे। विज्ञान के पास क्या ऐसे कोई उपकरण हैं ? यदि आत्मा में शक्ति है क्षयोपशम है देखने का, तो चश्मा उस दृष्टि को स्थिर तो कर सकता है, वह पदार्थ बड़ा दिखाई दे सकता है, पदार्थ बड़ा हो जायेगा किन्तु आँख की ज्योति नहीं बढ़ जायेगी। चश्मा लगाने से जो अक्षर छोटे-छोटे तुम्हें दिखाई नहीं दे रहे थे वे बड़े दिखाई देने लगे। जो शब्द तुम्हें कानों से सुनाई नहीं दे रहे थे तो मशीन ने श्रवण शक्ति को नहीं बढ़ाया उन शब्दों की ध्वनि कि जो आवृति थी उसे तेज कर दिया तो आपको सुनाई देने लगा।

यदि ज्ञान का क्षयोपशम चेतना के प्रदेशों से घट गया है तो विज्ञान उसे आरोपित नहीं कर सकता किन्तु हाँ ऐसी शक्ति धर्म के पास है, जिसका ज्ञान का क्षयोपशम घट गया है तो वह धर्म के माध्यम से, तप, साधना, संयम के माध्यम से, व्रत-पूजा उपवास के माध्यम से, भक्ति के माध्यम से पुन: प्राप्त की जा सकती है, धर्म में ऐसी शक्ति आज भी है, ऐसे चमत्कार आज भी दिखाये जा सकते हैं कि अग्नि का भी जल बनाया जा सकता है, सर्प भी फूल माला हो सकती है, सूली भी सिंहासन बन सकती है।

महानुभाव ! ये बात श्रद्धा में तो है और श्रद्धा आत्मा का गुण है, ज्ञान आत्मा का गुण है आत्मा की शक्ति है, चैतन्यता आत्मा का गुण है, आत्मा की शक्ति है। जिस शरीर में से प्राण निकल जायें चाहे विश्व के सभी वैज्ञानिक मिल जायें किन्तु फिर वे उस शरीर में प्राण डाल नहीं सकते। जब प्राण डाल नहीं सकते, प्राणों को देख नहीं सकते, प्राणों को पहचान नहीं सकते तो जो प्राण हैं, परम चेतना है, परमविशुद्ध अवस्था है उसे कैसे पकड़ पायेंगे, उसे पकड़ पाना और कठिन है। अभी तो आत्मा अशुद्ध अवस्था में है, कर्मों से सहित अवस्था में है तब दिखाई नहीं दे रही, शुद्ध अवस्था में दिखाई कहाँ से देगी। जिस व्यक्ति को हाथी भी दिखाई नहीं दे रहा उस व्यक्ति को क्या बहुत छोटा सा कीड़ा दिखाई दे पायेगा ? मुश्किल है असंभव है।

महानुभाव ! संसार के स्वरूप को अच्छी तरह से पहचानने का प्रयास करना है, जिसने संसार को जान लिया, उसने अपने आप को जान लिया और जब तक संसार को न जान सकोगे तब तक अपने आपको न जान सकोगे। बुराई को भी जानना बहुत जरूरी है तभी अच्छाई का भी सही मूल्यांकन किया जा सकता है, यदि बुराई को न जान सकोगे तो जीवन में कभी अच्छाईयों का मूल्यांकन न कर सकोगे और कहीं अच्छाई यदि प्राप्त हो गयी तो उसे ग्रहण न कर सकोगे छोड़ दोगे। जिस व्यक्ति की दृष्टि में काँच और हीरे में अंतर ही नहीं है, उस व्यक्ति के सामने हीरे के ढेर लगा दो तब भी कोई फायदा नहीं है क्योंकि वो काँच को भी हीरा कह सकता है और हीरे को भी काँच कह सकता है।

संसार की सभी दशा अच्छी नहीं हैं। सभी दशा बुरी नहीं हैं। जैसे जो सीढ़ी हमारे चढ़ने के लिये कार्यकारी है वह सीढ़ी हमारे लिये उपादेय है और सीढ़ी से उतर के भी जा सकते हैं। सीढ़ी ही पतन की और सीढ़ी ही उत्थान की हेतु है। संसार हमारे उत्थान में भी

कारण है और पतन में भी कारण है। संसार वही है इसी संसार में रहकर जीव मनुष्य से निगोदिया व नारकी बन गया, इसी संसार में मनुष्य देव भी बन गया और देवाधिदेव भी बन गया। संसार तो वही है, संसार कोई बदला नही है और संसार को कोई बदल भी नहीं सकता। यदि बदलना है तो अपनी आत्मा को बदलना है अपने अंदर के संसार को बदलना है।

इसीलिये आचार्यों ने कहा संसार से घबराकर के भागकर के कहाँ जाओगे ? संसार में तो ऐसा आकर्षण है कि राग करो तब भी संसार में द्वेष करो तब भी संसार में है, इसका तो एक ही उपाय है **''वैराग्यमेवाभयं''** संसार से विरक्त हो जाओ, तुम्हारे चित्त की सुई बैलेंस हो जाये-न सुई इधर गिरे न उधर गिरे, कभी भी थोड़ी भी झुक गयी तो अभी तुम संसार में ही डूबे हो अभी पार नहीं हुये। तो चित्त को बिल्कुल मध्यस्थ करना है।

लोग कहते हैं संसार तो सपने की तरह से है, सपना बड़ा मोहक होता है, सपने में कुछ करना नहीं पड़ता अपने आप होता है, और सपना जब भयानक आता है तब नींद टूटती है, थोड़ी देर के लिये नींद टूटी और फिर पुनः प्रारंभ हो गयी, फिर सपना आ गया। संसार में भी जब ऐसी घटना घटती है तब एक क्षण के लिये हमारे चित्त में आता है संसार में कुछ नहीं है इससे अच्छा तो धर्म के मार्ग पर बढ़ जायें, सन्यास ले लें दीक्षा स्वीकार कर लें और फिर पुनः जैसे ही दो-चार दिन व्यतीत हुये, फिर संसार के गोरख धंधे में आ जाते हो, किन्तु संसार छूट नहीं पाता। सपने भी सच होते हैं, आप कहेंगे महाराज जी कैसी बात कर रहे हैं-

सपना जो कभी न होता अपना
जो होता है अपना वह कभी न होता सपना।

जब सपना कभी अपना नहीं होता तो फिर आप उसको शत प्रतिशत सत्य कैसे कह रहे हो, हाँ सपना बिल्कुल सत्य होता है शत प्रतिशत, किन्तु कब तक जब तक नींद नहीं खुली तब तक, जब तक नींद नहीं खुली तब तक सपना सत्य होता है और जैसे ही नींद खुलती है सपना सपना रह जाता है, वह अपना नहीं होता।

एक बार महाराज जनक अपनी राज्य सभा में बैठे अपने पुरोहित से चर्चा कर रहे थे, उन्होंने कहा कि मैंने रात्रि में एक भयानक सपना देखा है, सपने में एक ज्योतिषी आया वह मुझसे कहने लगा महाराज आप बड़े अध्यात्मवादी हो इस राज्य में रहते हुये आप राज्य का संचालन कर रहे हो और आज आपके पुण्य का उदय चल रहा है किन्तु वह दिन दूर नहीं जब आप भिखारी की तरह से भीख मांगते दिखाई देंगे।

और सपने में ही मैं क्या देखता हूँ कि मेरा राज्य सब नष्ट हो गया और मैं भिखारी की तरह भटकता फिर रहा हूँ। दौड़ता जा रहा हूँ-दौड़ता जा रहा हूँ। मुझे बहुत तेजी से भूख लगी है, मैं किसी गाँव के समीप पहुँचा, पूछा यहाँ कहीं भोजन मिलेगा, लोगों ने कहा-यहाँ एक भोजनशाला है जहाँ नि:शुल्क भोजन कराया जाता है, तुम जल्दी पहुँचो। मैं जैसे ही वहाँ पहुँचा तब तक भोजनशाला बंद हो गयी थी तब कुछ लोगों ने कहा यहाँ भोजनशाला 11 बजे बंद हो जाती है दूसरी जगह 11:30 पर बंद होती है वहाँ दौड़कर जाओ, मैं वहाँ तक पहुँचा तब भी मेरा नसीब खराब था वहाँ भी भोजनशाला बंद हो गयी, ऐसे करते हुये जहाँ 12 बजे तक खुलती थी वहाँ पहुँचा, जहाँ 12:30 बजे तक खुलती है वहाँ भी पहुँचा 1:00 बजे तक वाली भोजनशाला में भी पहुँचा किन्तु मेरे पहुँचने से पहले तक सभी बंद हो चुकी थीं, लोगों ने कहा इंतजारी करो अब तो शाम को ही भोजन मिलेगा।

शाम को 4 बजे वाली भोजनशाला खुली नहीं थी, जो 5 बजे तक खुलती थी मैं भागकर वहाँ पहुँचा वह भी बंद होने वाली थी मैंने उस रसोईये के पैर पकड़े, गिड़ गिड़ाने लगा कुछ भी हो खाने के लिये दे दे मैं भूखा-प्यासा हूँ। उस रसोईये को दया आ गयी और थोड़ी सी खिचड़ी भगोने में से खुरच कर के ले आया और पत्तल के दोने पर रख दी। तीन दिन से मैं भूखा-प्यासा था, मेरे प्राण कण्ठ में आ गये थे, जैसे ही मैं खिचड़ी का दोना लेकर के आगे बढ़ा, अकेली खिचड़ी कैसे खायी जाये जो कुछ जली सी है, कुछ कच्ची सी है, मैंने सोचा पहले पानी ले लूँ ताकि खिचड़ी के साथ कुछ पानी पहुँच जायेगा। मैं एक टंकी के पास पहुँचा, मेरे एक हाथ में खिचड़ी थी, एक हाथ से मैंने टोंटी खोली तब तक एक चील ने झपट्टा मारा, मेरी खिचड़ी का दोना लेकर उड़ी मैं धड़ाम से नाली में गिर पड़ा और जैसे ही नाली में गिरा मेरी नींद खुल गयी।

प्राय:कर के व्यक्तियों की नींद तभी खुलती है जब हृदय पर कोई गहरी चोट लगे। राजा जनक की नींद खुली और वे आकुल व्याकुल हो गये। अध्यात्मवादी राजा जनक एक सपने से विचलित हो गए, एक सपने ने उन्हें अंदर तक हिला दिया, आध्यात्मिकता कहाँ रही। वह तो इतने अध्यात्मवादी थे कि यदि चर्चा करते-करते पैर अग्नि पर चला जाये तो उसे उठाने का प्रयास भी नहीं करते अब सपने ने विचलित कर दिया। संसार का रूप ऐसा ही है व्यक्ति पत्थर की चोट सहन कर लेता है और कोई फूंक मार दे तो आँसू आ जाते हैं। जिसके प्रति यह अपेक्षा है कि ये मुझे पत्थर से चोट ही मारेगा वह पहले से उसके लिये तैयार है, सामने शत्रु ने तुम्हें तीर मारा और तुमने निकालकर फेंक दिया तब तो आपकी आँखों में आँसू नहीं आया, किन्तु जिसे तुम प्राणपन से चाहते हो, किसी प्रेयसी ने तुम्हारे ऊपर फूल भी फेंक दिया तो तुम्हारे आँसू आ गये, क्योंकि तुम्हें उससे अपेक्षा नहीं थी।

संसार अपेक्षाओं का घर है। अपेक्षा का आलय है जिससे जितनी ज्यादा अपेक्षा होती है, व्यक्ति उतना ज्यादा दु:खी होता है। यदि कोई अपेक्षा भगवान् से है और वह पूर्ण न हो तो भगवान् से भी शिकायत हो जायेगी और यदि अपेक्षा माँ-बाप से है और कहीं कोई कमी रह जायेगी तो आपको शिकायत तब भी हो जायेगी। जिसकी जिससे जितनी गहरी अपेक्षा होती है और जब-जब वे उन पर खरे नहीं उतर पाते तब-तब व्यक्ति की आँखों से आँसू आ जाते हैं।

एक बाप ने अपने बेटे पर सब कुछ न्यौछावर कर दिया, स्वयं एक समय भोजन कर उसे दो-चार बार खिलाया, स्वयं ने दो जोड़ी वस्त्रों से वर्षभर काट लिया, स्वयं नंगे पैर रहा सिर्फ बच्चे को पढ़ाने लिखाने के लिये किन्तु जब वही बेटा योग्य हुआ तो शादी अपने मन से कर ली, पिता को छोड़कर बाहर पहुँच गया, कोई ख्याल नहीं। माँ-बाप ने फोन भी किया बेटा हमारा ध्यान ख्याल तो कर, बेटा बोला-मैंने क्या तुम्हारा ठेका ले रखा है, तब पिताजी की आँखों में आँसू आते हैं, तब उसका हृदय टूटता है तब लगता है वास्तव में संसार ऐसा है क्योंकि पुत्र से ऐसी अपेक्षा नहीं थी। इसलिये जितनी गहरी अपेक्षा होती है उतना ही दु:ख होता है और जब अपेक्षा से ज्यादा मिल जाता है तब संसार छोड़ने का मन नहीं करता। संसार को छोड़ने का मन तभी करता है जब व्यक्ति की अपेक्षा टूटती है।

तो राजा जनक पुरोहित के साथ बैठकर चर्चा कर रहे हैं कि मैंने ऐसा सपना देखा है, सपने में भी सपना आया कि ज्योतिषी ने बताया कि तुम्हारे जीवन में कंगाली आने वाली है और सपने में भी सपना सत्य हो गया कि मेरे जीवन में कंगाली आ गयी और मैं भीख मांगने लगा। अब समझ यह नहीं आता कि सपना सपने में भी सत्य हो गया क्या वास्तव में भी सत्य हो जायेगा? समझ नहीं आ रहा कि ये सपना सत्य है या जो राजमहल जहाँ मैं दिखाई दे रहा हूँ वह सत्य है।

पुरोहित ने कहा-सत्य कहूँ-पचा सको तो कहूँ, हाँ कहो-पचाने का साहस करूँगा, सत्य ये है कि न वह सत्य है और न यह सत्य है। वह रात्रि का सपना है और यह दिन का सपना है। एक सपना आँख बंद करके देखा जाता है और एक सपना आँख खोल के देखा जाता है, ये राजमहल खुली आँख का सपना है और वह भिखारी बनना बंद आँख का सपना है-

आँख खुली तो सपना गया, आँख मुंदी तो अपना गया।
दो दिन का मेहमान यहाँ पर, साँस रुकी तो दफना गया।।

संसार और कुछ नहीं है कभी आँख बंद कर और कभी खोलकर स्वप्न देखते हैं किन्तु हम सपनों की दुनिया में ही घूमते रहते हैं। संसार और कुछ नहीं है यह स्वप्नों का खेल है, यह संसार कुछ नहीं है पाप पुण्य की आँख मिचौली है, संसार और कुछ नहीं है नाटक का रंगमंच है, संसार और कुछ नहीं है किसी के लिये कीचड़ और किसी के लिये निर्मल है, संसार किसी के लिये उलझी हुयी पहेली है और सुलझ जाए तो सहेली है, संसार और कुछ भी नहीं यह वह खुली किताब है, जो किताब तो खुली है किन्तु पृष्ठ बंद हैं हर पृष्ठ पर कुछ अलग-अलग लिखा है किन्तु यह हम भी नहीं जानते उन पृष्ठों पर क्या-क्या लिखा है जब सामने आते हैं तब पढ़ना पड़ता है, वह कर्म का अध्याय पढ़ना पड़ता है कि कब किस कर्म का उदय आयेगा कोई कह नहीं सकता।

महानुभाव! संसार के लोग इस संसार के बारे में और चिंतन करें और चिंतन करें कि संसार ठीक है या गलत, मैं जो कुछ भी कर रहा हूँ वह ठीक कर रहा हूँ या गलत। संसार में यदि निरपेक्ष भाव से जियो तो मेरी दृष्टि में संसार बुरा नहीं है और अपेक्षा का भाव लेकर के यदि स्वर्ग में भी पहुँच जाओगे तब भी दु:खी रहोगे, इसीलिये अपेक्षाओं को छोड़कर के चाहे कहीं रहो तुम्हें कोई दु:खी कर नहीं सकता।

अपेक्षा ही दु:ख की जननी है, इसके अलावा दु:ख का कोई दूसरा कारण संसार में नहीं है, आप सभी दु:खों के कारण से बचें और शाश्वत सुख को प्राप्त करें, मैं आपके प्रति ऐसी भावना भाता हूँ और अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

भय और आसक्ति से ऊपर उठने का नाम ही आनंद है। उस अभय व अक्षय आनंद की प्राप्ति बिना वैराग्य के नहीं होती, वैराग्य ही संयम की पतवार है और वह संयम बोझ नहीं अपितु सही बोध है।

हम संसार के भय को कैसे दूर करें, ऐसा कौन सा उपाय है जिसके माध्यम से इस जीवन में जो अर्जित किया है उसे परभव में अपने साथ लेकर चलें ? क्योंकि व्यक्ति बड़े प्रयत्न पूर्वक जो कुछ भी अर्जित करता है, चाहे सुख या सुख के कारण या सुख के साधन या सुख के नाम पर दु:ख, उसे छोड़ना नहीं चाहता। जब तक वस्तु के बारे में यथार्थ बोध नहीं होता है तब तक संसारी प्राणी के साथ प्राय:कर यह धोखा चलता रहता है। वह इकट्ठा तो करता है सुख को, परन्तु जैसे ही पोटली को खोलकर देखता है तो उसमें दु:ख ही दु:ख दृष्टि गोचर होते हैं।

महानुभाव ! क्या संसार में दु:ख ही दु:ख है ? या सुख ही सुख है या संसार में सुख और दु:ख मिश्रित हैं, संसार आखिर में है क्या? संसार में जो अनादि से है वह आज भी है कल भी रहेगा। संसार में किसी को दु:ख दिखाई देता है, किसी को सुख दिखाई देता है। संसार

में छः द्रव्य अनादि काल से थे, हैं, रहेंगे। हमारी जैसी मान्यता कल्पना साधना होती है उसी के अनुरूप हमें फल की प्राप्ति होती है। संसार न एकांतत: सुख से भरा हुआ है न दु:ख से भरा हुआ है। संसार में वह सब कुछ है जो संसारी प्राणियों को चाहिये।

''सकल पदारथ हैं जगमांही कर्महीन नर पावत नाहीं''

संसार में सब प्रकार के पदार्थ हैं। सुख के जनक भी और दु:ख के जनक भी, संसार में शांति देने वाली वस्तुऐं भी हैं और क्रांति, क्लान्ति और अशांति देने वाली वस्तुऐं भी हैं, भ्रान्ति पैदा करने वाली वस्तुऐं भी हैं। यह स्वयं हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम किस वस्तु का उपयोग किस प्रकार से करते हैं। किसी व्यक्ति के हाथ में दिया सलाई है, वह दियासलाई के माध्यम से अपनी मोमबत्ती जलाकर के रात्रि के अन्धकार को दूर कर सकता है और प्रकाशमय अपनी रात्रि गुजार सकता है। उसी दिया सलाई से अपना भोजन भी बना सकता है और उसी दिया सिलाई की एक-एक तिली को जलाकर व्यर्थ में खर्च भी कर सकता है। सब कुछ उस पर निर्भर है। इसी प्रकार संसार में क्या है क्या नहीं यह हमारे ऊपर निर्भर करता है।

हम जो चाहें सो संसार में है, संसार में निगोदिया जीव की अवस्था से सिद्ध शिला तक की सभी अवस्थायें हैं, संसार के बाहर कुछ भी नहीं सिवाय आकाश के। कई बार लोग कहते हैं-संसार सागर से हमारा बेड़ा पार कर दो। फिर कहाँ जाना चाहते हो, लोक के बाहर ? लोक ही संसार है ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक। इसके बाहर तो अलोकाकाश है। वहाँ तुम कैसे जाओगे? महाराज जी ! संसार में तो कोई ज्ञान नहीं है संसार तो बेकार है। ये तुम कहते हो, तुम्हारी धारणा, मान्यता, कल्पना कहती है, इसी संसार में अनंतानंत तीर्थंकर हुये जिन्होंने अपनी आत्मा के वैभव को यहाँ पर साधना

करके प्रकट कर लिया। इसी संसार में ऐसे जीव भी हुये जिन्होंने अनंतकाल तक के लिये दु:ख को अर्जित कर लिया। क्योंकि सबकी क्रियाशीलता, सबका पुरुषार्थ अलग-अलग होता है।

महानुभाव ! संसार एक उलझी हुयी पहेली है, जिसको सुलझाना आता है उसके लिये सहेली है, जो सुलझाना नहीं जानते उनका पूरा जीवन उलझी पहेली रहता है। इसे समझना बहुत जरूरी है। यूँ तो कहने के लिये कहा जाता है कि संसार रहस्यमय है किन्तु उसके लिये, जो मुट्ठी बंद करके संसार में आया था और मुट्ठी बंद कर ही संसार से चला गया। जो खाली हाथ आया और खाली हाथ खोलकर चला गया उसके लिये संसार एक खुली किताब है किन्तु इस खुली किताब के भी कई अध्याय होते हैं और एक-एक अध्याय को हमें पढ़ना पड़ता है। जो मुख्य पृष्ठ है जरूरी नहीं अंदर के पृष्ठ वैसे ही हों और ये भी जरूरी नहीं कि मुख्य जैसा ही अंतिम कवर हो, अलग-अलग प्रकार के भी होते हैं और कई बार तो ऐसा देखने में आता है जो पुस्तक का कवर है वह बड़ा अच्छा-आकर्षक होता है, दूसरों को लुभाने वाला होता है किन्तु अंदर कागज बिल्कुल रद्दी होता है और उसमें छपी विषय वस्तु और ज्यादा रद्दी।

महानुभाव ! कई बार हम सोचते हैं कि हमारा जीवन भी कहीं ऐसा तो नहीं कि हमारे जीवन का कवर पृष्ठ बड़ा आकर्षक, सुंदर, दूसरों को लुभाने-रिझाने वाला हो और अंदर के जीवन से कहीं हम ही बोर तो नहीं हो गये, उदास तो नहीं हो गये, अपने अंदर के जीवन से कहीं हम ही तो आकुल व्याकुल नहीं हो रहे? क्या हम ही अपने अंदर के जीवन से बचना तो नहीं चाहते? क्या आप स्वयं अपने अंतरंग के जीवन से संतुष्ट हैं? जब आप ही अपने अंतरंग के जीवन से संतुष्ट नहीं हैं, तो दुनिया का कोई भी व्यक्ति तुमसे संतुष्ट न होगा। यदि हो भी जाये तो उसकी संतुष्टि से तुम्हें संतुष्टि नहीं मिलेगी।

हमारी संतुष्टि हमारे ऊपर होना चाहिये हम प्राय:कर संसार की पर वस्तुओं से, पर व्यक्तियों से सुख-शांति चाहते हैं, हमारी सुख-शांति दूसरों पर निर्भर हो गयी है इसलिये दूसरे हमें नचाते रहते हैं। चाहे हम कर्मों पर निर्भर हों, चाहे माता-पिता पर, चाहे मकान और दुकान पर चाहे सम्पत्ति पर, हमने सुख और शांति की परिकल्पना इन पर पदार्थों में ही खोज ली है। जब तक हम सुख और शांति के सूत्र अपनी आत्मा में नहीं खोजेंगे, तब तक संसार की कोई भी शक्ति हमें सुखी नहीं कर सकती और सबसे बड़ी बात ये है कि संसार में जो कुछ भी चीज हम एकत्रित करते हैं, जो कुछ भी हम अपने हाथों से कस कर पकड़ते हैं, पकड़ने से पहले वह लगती तो साधनभूत है किन्तु जैसे ही हाथ में आती है तो लगता है इससे दु:खद दूसरी वस्तु और कोई संसार में है ही नहीं।

कभी-कभी वह वस्तु हमारे हाथ आ भी जाये जिससे क्षणभर के लिये सुखानुभूति हो भी जाये तब फिर उसका भय रहता है कि कहीं ये नष्ट न हो जाये। जो कोई वस्तु सुखद दिखायी दे रही है उसके नष्ट होने का भय दिखाई देता है। जैसे जिस पुण्य के उदय से आप सुखी हो रहे हैं, तो आपके मन में यही विकल्प आता है कि ये पुण्य कब पूरा हो जाये, कब पाप कर्म का उदय आ जाये कह नहीं सकते, इसलिये व्यक्ति बड़ा बैचेन है। व्यक्ति को ये स्वयं ही ज्ञात नहीं है कि मैं इस कर्म का फल कब तक भोगूँगा। जैसे-यह मनुष्य आयु का उदय चल रहा है तो इस मनुष्य आयु का फल कब तक भोगूँगा, इस मनुष्य गति का फल कब तक भोगूँगा कह नहीं सकते, कब दूसरी गति का उदय आ जाये। आज ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम है कल उसका उदय आ जाये। अच्छे-अच्छे विद्वान् और साधक भी ज्ञानावरणी कर्म के उदय से ऐसे हो जाते हैं कि सैकड़ों बार याद करने पर भी याद नहीं हो पाता।

आचार्य कुंथुसागर जी महाराज के संघ में एक डॉक्टर महाराज थे, उपाध्याय कनकनंदी जी महाराज। वे पूर्व में डॉक्टर थे इसलिए संघ में आने पर भी उन्हें यह काम सौंप दिया गया था कि सभी साधुओं के स्वास्थ्य की व्यवस्था आपको बनाकर रखना है, सभी का ध्यान रखना है इसलिये सब उन्हें डॉक्टर महाराज कहने लगे। उन्होंने पूर्व में एम.बी.बी.एस. किया होगा, एम.डी. किया होगा। किन्तु मुनि बनने के बाद क्षयोपशम को न जाने क्या हो गया, तत्वार्थ सूत्र जब उन्होंने पढ़ना प्रारंभ किया तो उसमें एक सूत्र है-''अर्थस्य''-इस सूत्र को उन्होंने माला लेकर 108 बार पढ़ा, किन्तु जब वे कक्षा में पहुँचे तो सूत्र सुना नहीं पाये-भूल गये। तो कहने का आशय ये है कि व्यक्ति के जीवन में कब किस कर्म का उदय आ जाये कह नहीं सकते। ऐसे ही शास्त्र में कथानक आता है-

यम नाम का राजा था, वह बड़ा प्रभावक राजा था। उसने सुना कि नगर के निकट के उद्यान में मुनिराज का संघ आया है। वह राजा यम, मुनिराज की निंदा करता हुआ वहाँ वाद विवाद करने के लिए पहुँचा। वह अपने आपको बड़ा ज्ञानी मानता था किन्तु जैसे ही वहाँ पहुँचा, महाराज के दर्शन किये कषाय शमित हुयी और जैसे ही उनका उपदेश सुना, संसार शरीर भोगों से विरक्त हो गया और वैरागी हो गया। वह यम नाम का राजा मुनि बन गया। जो राजा अपने आपको बहुत बड़ा ज्ञानी, विद्वान समझता था, अन्तर्मुहूर्त के बाद तीव्र कर्म का ऐसा उदय आया कि वह सब कुछ भूल गया, सात तत्त्वों के नाम तक याद न रख सका, णमोकार मंत्र भी याद नहीं रहा। किन्तु गुरु महाराज के साथ में रहते हुये, साधना करते हुये केवल इतना भेद विज्ञान कि जीव अलग है-अजीव अलग है इसके माध्यम से उन्होंने अपनी आत्मा का कल्याण किया। पूरे जीवन काल में उन्होंने केवल तीन खण्ड सूत्र याद किये, उन्हीं के माध्यम से प्रतिक्रमण वही सामायिक उसी से स्वाध्याय करते थे।

ऐसे ही एक श्रेष्ठी शिवभूति हुए जिन्होंने बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ मुनिमहाराज का चातुर्मास अपने नगर में कराया। जैसे ही मुनिराज का चातुर्मास पूर्ण हुआ वे विहार कर जाने लगे, तो सेठ पीछे बैठकर के आँसू बहाने लगा। लोगों ने कहा-ये तुम्हारे आँसू मगरमच्छ के आँसू हैं। सेठ बोला क्यों? बोले-मुनिराज तुम्हारे यहाँ चार माह तक रहे तुमने सारा खर्चा उठाया किन्तु तुमने एक दिन भी आहार नहीं दिया, यदि तुम्हारी श्रद्धा भक्ति होती तो तुम मुनिमहाराज को आहार देते। सेठ ने कहा-मैं त्याग से घबराता रहा यदि मुनि महाराज को आहार देता तो मुझे त्याग करना पड़ता। तो अब आँसू क्यों बहा रहे हो? मुनिराज मुझे छोड़कर जा रहे हैं तो मुझे दुःख हो रहा है। तो तुम भी साथ में चले जाओ, विचार तो मैं भी यही कर रहा हूँ, कि मैं भी चला जाऊँ सब कुछ छोड़ छाड़ के। तो मुनि बनोगे? हाँ विचार तो ऐसा ही बन रहा है। घर के, नगर के लोग बोले-बड़ा अच्छा विचार है तुम्हारा, यदि तुम जैसे व्यक्ति मुनि बन गये तब तो कहना ही क्या है जल्दी करो कहीं देर न हो जाये। लोग तो उपहास में कहने लगे।

किंतु उनका पुण्य कर्म का उदय ही था, वे निकट भव्य थे परम वैराग्य से युक्त होकर उन्होंने गुरु के पादमूल में दीक्षा ले ली और घोर तपश्चरण करने लगे। वे शास्त्र के सिर्फ **''तुषमाष भिन्नं''** इन छह अक्षरों को जानते थे, इससे अधिक कुछ भी पाण्डित्य उनमें नहीं था। उन्हें आगम का एक वाक्य भी नहीं याद था। वे मात्र गुरु द्वारा कहे इस दृष्टान्त को कि जिस प्रकार तुष से माष उड़द भिन्न है, वैसे ही शरीर से आत्मा भिन्न है। यही बार-बार उच्चारण कर पक्का करते रहते थे। उच्चारण करते रहने पर भी वे कदाचित् उसे भूल गये, अब वे अर्थ तो जानते थे परन्तु शब्द नहीं, शब्दों के भूल जाने से उनके मन में बार-बार क्लेश उठा करता था।

एक दिन उन्होंने किसी स्त्री को दाल को पानी में डुबोकर तुषों से पृथक करते देखा और पूछा आप क्या कर रही हैं? वह बोली मैं

तुषों और उड़दों को अलग-अलग कर रही हूँ। मुनि बोले मैंने पा लिया हाँ मैंने पा लिया और इतना कहकर चले गये। पुण्य कर्म का उदय वे आत्मा में इतनी तल्लीनता को प्राप्त हुये कि मात्र भावश्रुत ज्ञान के द्वारा अन्तर्मुहूर्त में केवल ज्ञान को प्राप्त कर नौ लब्धियों से युक्त हो गये तथा अनेक देशों में विहार कर भव्यों को मोक्ष मार्ग दिखलाते हुये मोक्ष गये।

महानुभाव ! हम कह रहे थे कि जिसको जिस व्यक्ति या वस्तु से क्षण भर के लिये सुखाभास हो रहा है, पता नहीं वह कब नष्ट हो जाये। व्यक्ति के पास कितनी भी सुख की सामग्री हो वह सुख की सामग्री को प्राप्त कर सुखी नहीं हो सकता। उसके जीवन में यही भय लगा रहता है कि संसार की कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है जो मैंने अपने पुरुषार्थ से अर्जित की है वह नष्ट हो जायेगी, मैं फिर ज्यों की त्यों दु:खी हो जाऊँगा।

संसार में प्रत्येक प्राणी भयभीत दिखाई दे रहा है, जिसको देखो वही डर रहा है। जो डर रहा है वह मानो जीते जी मर रहा है, निर्भीकता में ही जीवंत जीवन का आनंद लिया जा सकता है। भयभीत व्यक्ति जीवंत जीवन का आनंद नहीं ले सकता। भयभीत व्यक्ति संसार में विद्यमान भोगोपभोग पदार्थों का आस्वादन नहीं कर सकता, भयभीत व्यक्ति संसार की किसी भी चीज का सदुपयोग नहीं कर सकता इसलिये जीवन में निर्भीकता बहुत आवश्यक है। जहाँ पर निशंकपना होता है वहाँ पर निर्भीकता होती है, जहाँ पर दोनों चीजें होती हैं वहाँ पर चित्त में निर्मलता होती है, जहाँ पर चित्त निर्मल होता है वहाँ पर निर्विकारिता आती है और निर्विकार स्वभाव हमारी आत्मा का है। जो आत्मा एक बार निर्विकारी हो गयी, निष्कर्म हो गयी, निर्मल हो गयी, निश्छल हो गयी वह अविनाशी आत्मा संसार में कभी भी परिभ्रमण नहीं करेगी।

हम निर्भीक अवस्था को कैसे प्राप्त करें। हम भय से मुक्ति कैसे प्राप्त करें? कर्मों से मुक्ति तो बाद की चीज है पहले मुक्ति हमें भय से मिल जाना चाहिये। प्राय:कर के संसार में ऐसे व्यक्ति ज्यादा देखे जाते हैं जो मृत्यु आने के पहले ही मौत को प्राप्त हो जाते हैं। भय ही ऐसी चीज है जो जीते जी प्राणी को मृतक तुल्य घोषित कर देता है।

भर्तृहरि ने तीन शतक लिखे-1 नीतिशतक जब किशोर अवस्था में सद्संगति में रहे तो नीतियों की अच्छी-अच्छी बात लिखीं। यौवन का नशा जैसे ही चढ़ा उन्होंने श्रृंगार शतक लिखा और उसके उपरांत वह नशा उतर गया। फिर उन्होंने वैराग्य शतक लिखा। यद्यपि आत्मनिष्ठ व्यक्ति के लिये इनमें से कोई भी शतक घातक नहीं है। नीति शतक में संसार में रहते हुये सुखी जीवन का उपाय है, श्रृंगार शतक-श्रृंगार की यथार्थता को व्यक्त करने वाला है, रागी के लिये राग बढ़ाने वाला है किन्तु वैरागी के लिये वैराग्य का संपोषण करने वाला है और वैराग्य शतक नि:संदेह वैराग्य का बीजारोपण करने वाला है।

वैराग्य शतक में उन्होंने एक श्लोक लिखा-उन्होंने कहा संसार में कौन किस प्रकार भयभीत है किसी को पिता का, किसी को पुत्र का, किसी को मित्र का भय है, किसी को पत्नी का भय, किसी को समाज का भय, किसी को गुरु का डर है, किसी को भगवान् का डर तो किसी को मृत्यु का भय है, किसी को रोग का डर है तो किसी को शत्रु का भय है किसी को एक दूसरे से भय लग रहा है प्राय:कर संसार के व्यक्ति निर्भीक अवस्था को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। उस भय से रहित शाश्वत सुख क्या है? तो उन्होंने लिखा-

भोगे रोग भयं सुखे क्षयभयं वित्ताग्नि भूभृद्भयं,
दासेस्वामि भयं जये रिपु भयं वंशे कुयोषिद्भयं।
मानेम्लानभयं गुणेखलभयं कायेकृतान्तात्भयं,
सर्वत्रापि भयं भवेत्रभविनाम् वैराग्य-मेवाभयं।।

संसार में सर्वत्र भय ही भय है-''**भोगे रोगभयं**'' जिस व्यक्ति को प्रचुर मात्रा में भोग सामग्री प्राप्त हुयी है उसे भी डर लगता है कि अधिक भोग भोगने से मेरा शरीर रोगी न हो जाये। शरीर की शक्ति क्षीण होते ही ये शरीर रोगी हो जायेगा और वह जीव भोगों का भोग नहीं कर पायेगा। भोग ही शरीर का भोग कर लेता है इसलिये भोगते समय व्यक्ति शंकित रहता है, भयभीत रहता है और उसे डर रहता है कब कौन सा रोग शरीर में लग जाये। भय व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु है व्यक्ति स्वयं को रोग से तो एक बार को बचा सकता है किन्तु भय व्यक्ति का समूल नाश कर देता है।

एक बार किसी समय वन में एक महात्मा ध्यानस्थ थे। तभी उन्हें ऐसे लगा जैसे कोई काली सी परछाई उनके सामने से जा रही हो। महात्मा जी ने तुरंत कड़क कर आवाज लगाई, कौन? वह परछाई बोली महात्मा जी मैं यमराज। बोले क्या काम है? यमराज ने उत्तर दिया ''मुझे आज्ञा है पास वाले गाँव से 40 व्यक्तियों को साथ में ले जाना है।'' महात्मा ने कहा ठीक है, यमराज ने गाँव में पहुँचकर हैजे की बीमारी फैली दी। तीन सौ चालीस व्यक्तियों की मृत्यु उस बीमारी से हुई। वह सबको अपने साथ लेकर जाने लगा। पुनः महात्मा को परछाई दिखी? कहा कौन, यमराज है क्या? वह बोला हाँ महात्मा जी। महात्मा क्रोधित होते हुए बोले कि तू झूठ कहता है। तूने मुझसे चालीस व्यक्तियों को साथ ले जाने की बात कही थी। तूने 340 लोगों के प्राण ले लिए।'' वह बोला ''नहीं महात्मा जी, मैंने चालीस लोगों के प्राणनाश हेतु हैजा फैलाया था और सच तो यह है हैजे से तो चालीस ही लोग मरे हैं, बाकी 300 तो उसका नाम सुनकर ही मर गए।''

व्यक्ति दो क्षण पहले निरोगी है, दो क्षण बाद उसके शरीर में कितने रोग निकल आयें कुछ नहीं कहा जा सकता। पाँच करोड़

अड़सठ लाख निन्यानवे हजार पाँच सौ चौरासी रोग इस शरीर में भरे पड़े हैं। एक अंगुल में 96 रोग हैं। आश्चर्य तो ये है कि प्रभु की हमारे ऊपर कितनी कृपा है कि हमारा शरीर रोगों से बचा है यदि सभी रोग एक साथ निकल आयें तो क्या होगा, जब एक छोटा सा रोग हो जाता है, 'जुकाम-खाँसी' ही हो जाये तो कहता है हे भगवान् ! ये रोग किसी को न हो रात-दिन चैन से बैठा ही नहीं जाता है। जिसको जो भी रोग है वह उसके लिये खतरनाक है, भयंकर है, प्रत्येक रोग अपने आप में खतरनाक है जिसको जो रोग नहीं है उसे वह अपने आप में हल्का महसूस करता है। तो भोग भोगने वाला व्यक्ति सदैव भयभीत और शंकित रहता है प्रत्येक क्षण में लगता है कहीं कोई रोग न हो जाये, इस रोग के भय से व्यक्ति खान-पान भी कम करता है।

दिल्ली ग्रीनपार्क में सुबह जब हम डीयर पार्क के पास से निकले तो सैकड़ों लोग वहाँ थे, तो हमने डॉ. डी.सी. जैन से कहा-देखो यहाँ कितने लोग हैं सुबह-सुबह इतने लोग मंदिर में नहीं होते। तो वे बोले महाराज ! ये घूमने नहीं आये इनको यहाँ रोग बुलाकर लाया है नहीं तो ये भी घर पर आराम से सो रहे होते। ये तो रोग के शिकार बन चुके हैं या रोग के शिकार बन नहीं जायें इसलिये घूमने के लिये घर से प्रात:काल आ रहे हैं।

भय लगा हुआ है किसी का कोलॅस्ट्रॉल बढ़ा हुआ है तो डॉ. ने कहा है चिकनाई बंद करो, लिवर कमजोर है घी तेल दूध वगैरह सब बंद करो या अन्य कोई भी परेशानी हो जाये भी, तो वह डर-डर कर खाता है और कहीं डॉ. ने कहा है एक फुलका खाना है और दो खाकर आ गया है तो डर लगा रहेगा कि कुछ हो न जाये। डॉ. डाँटेगा क्या तुझे अपना जीवन प्यारा नहीं है। बेचारा ! उसने जीवन भर कमाया, सिर से एड़ी तक पसीना बहाया इतना सब वैभव है किन्तु भोग नहीं सकता। भूख चार रोटी की है तो डॉ. ने दो रोटी की ही परमीशन दी।

महानुभाव ! भोग भी भय से युक्त हैं, भोग रोग बढ़ाने वाले हैं, यदि आप भोगों को सुख मान रहे हैं तो वे आपको सुखी नहीं कर सकते, वे सुखाभास लगते हैं पर होते नहीं। जैसे दर्पण में मुख और संसार में सुख दिखता तो है पर होता नहीं। आगे कहा-

''सुखे क्षय भयं'' सुख में दु:ख का भय है आज पुण्य के उदय से सुख प्राप्त हो रहा है कल पुण्य क्षीण हो जायेगा, पाप का उदय आ जायेगा तो दु:ख ही दु:ख आ जायेगा। इस जीवन का सूर्य कब अस्त हो जाये कब पुण्य का सूर्य अस्त हो जाये पता नहीं है किसी को नहीं मालूम। जो व्यक्ति आज नगर में पूज्य है, असीम वैभव है, कहीं पाप के उदय से व्यापार में घाटा लग गया, फैक्ट्री में आग लग गयी या लूटपाट हो गयी या अन्य कुछ बात हो गयी तो जो व्यक्ति आज नगर का सबसे बड़ा पूंजीपति कहलाता था जो पहले करोड़पति था वह रोडपति और लाखपति-खाकपति हो जाता है। इस किस्मत का किसी को कुछ भी नहीं मालूम।

संसार में जितने भी अनुकूल सुख मिल रहे हैं वे ही दु:ख का कारण बन जाते हैं। जो शारीरिक सुख, वाचनिक सुख, मानसिक सुख हैं वे कब नष्ट हो जायेंगे कह नहीं सकते। ये सब पुण्य के आधार से हैं पुण्य नष्ट होते ही सब नष्ट हो जाता है। पुण्य का प्रकाश होता है तब तक समस्त वस्तुयें तुम्हारे पास हैं और पुण्य का प्रकाश जाते ही सब नष्ट हुये के समान हैं। वस्तु नष्ट नहीं हुयी किन्तु अंधकार में जो वस्तु सामने रखी है वह भी दिखाई नहीं दे रही। जब आँखों में ज्योति है संसार बहुत अच्छा लग रहा है और जब वह ज्योति चली गयी तुम्हारा पूरा संसार ही चला गया। ऐसे ही पुण्य चला गया तो सब चला गया।

तो सुख के साथ भी भय लगा हुआ है कि ये नष्ट न हो जाये। व्यक्ति भोग का भोग इस भय से करता है कि कहीं ये नष्ट न हो

जाये। देवों की माला मृत्यु के छः माह पहले मुरझा जाती है। जो मिथ्यादृष्टि देव हैं वे विलाप करते हैं कि इतने सागर तक तो मैं इस वैभव का भोग करता रहा किन्तु अब यहाँ से च्युत होकर न जाने मैं कहाँ जाऊँगा-एकेन्द्रिय में जाऊँगा, पंचेन्द्रिय पर्याय, पशु पर्याय किसमें जाऊँगा। महानुभाव ! वैभव जब नष्ट होता है, सुख जब नष्ट होता है तो हर व्यक्ति को दुःख होता है इसलिये ऐसे सुख को प्राप्त करो जो कभी नष्ट न हो।

मुनिमहाराज उसी सुख को प्राप्त करने का उपक्रम करते हैं जिस सुख की कभी इतिश्री न हो सके। इस संसार का जो भी सुख है जो वस्तु/व्यक्ति के माध्यम से मिल रहा है वह सभी सुख क्षणिक है, जो सुख किसी पर निर्भर है वह सुख कभी स्थायी नहीं हो सकता, किन्तु जो सुख आत्मा से उत्पन्न हुआ है उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। अगली बात कही।

''वित्ताग्नि भूभृत्भयं'' यदि तुम्हारे पास धन संपत्ति है, खूब वैभव है तो डर लगता है कहीं अग्नि से नष्ट न हो जाये, चोर-डाकू लुटेरे न लूट ले जायें या राजा कोई नया नियम न बना दे कि इससे ज्यादा सम्पत्ति हो जाये तो टैक्स में जमा करो, तो उसे भय बना रहता है कल क्या होगा। सम्पत्ति मैंने जोड़ी तो है किन्तु मैं उसका भोग नहीं कर पाऊँगा और जो पाप की कमाई है उसे भोग नहीं पाये तो बड़ा दुःख होता है। भोग ले तो कोई बात नहीं किन्तु नहीं भोग पाया तो सोचता है देखो इसके लिये मैंने कितना पाप कमाया, दिल दुखाया, झूठ बोला, चोरी की किन्तु आज सम्पत्ति भोग नहीं पा रहा, यह सब छोड़कर जाना पड़ेगा। जब कमाया तब भी पाप कमाया आज धन जा रहा है तब भी पाप कमा रहा है और रक्षा करने का भाव है तब भी पाप है यह अर्थ (धन) है ही ऐसा-

अर्थस्योपार्जने दुःखमर्जितस्यापि रक्षणे।
त्यागे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं दुःखभाजनम्॥

धन के उपार्जन करने में दु:ख है, उपार्जित धन की रक्षा करने में दु:ख है और अर्थ के भोगने में दु:ख, अर्थ के नष्ट होने में दु:ख और अर्थ को छोड़ने में दु:ख।

यह (धन) अर्थ ऐसा है कहीं भी इसके साथ लगे रहो तो दु:ख देकर जाता है। यह सुख नहीं दे पाता। यह भ्रम है कि धन से सुख है, सुख तो अर्थ के बिना परमार्थ से मिलता है जब तक परमार्थ का मार्ग प्रारंभ नहीं हुआ तब तक अर्थ किसी को सुख नहीं दे सकता। जिसके जीवन में अर्थ व्यर्थ हो जाता है उसी के जीवन में परमार्थ का मार्ग प्रारंभ होता है, उसी के जीवन में सुखशांति का रास्ता खुलता है, इसलिए समय रहते अपने अर्थ को धर्म कार्यों में लगा देना चाहिए।

नीतिकारों ने कहा है-

लक्ष्मी के सुत चार हैं, धर्म अग्नि नृप चोर।
जहाँ जेठे की कदर नहीं तीनों लेत बटोर॥

यदि धन को धर्म में नहीं लगाया तो उस धन में अग्नि का, चोर डाकू, राजा का भय है। अगली बात कही-

'दासे स्वामि भयं' यदि दासत्व किसी का स्वीकार किया तो मालिक का भय है कि मालिक कब अपने यहाँ से निकाल दे। सरकार के कर्मचारी सदैव शंकित रहते हैं कि न जाने कब सरकार का कौन सा नियम बन जाये और संघ की छटनी कर दे। मालिक के यहाँ कार्य करने वाला सदैव मालिक को खुश करने का प्रयास करता है, पता नहीं कब मालिक की निगाहें टेढ़ी हो जायें। दास का जीवन तो पराधीन जीवन है और पराधीनता में कभी सुख की कल्पना भी नहीं की जा सकती और जो मालिक है वह भी भयभीत रहता है कि कब भूख हड़ताल प्रारंभ हो जाये, हमारे सेवक पता नहीं कब हड़ताल पर बैठ जायें, इनका तो एक दिन में कुछ नहीं बिगड़ेगा किन्तु हमारा तो

एक दिन में हजारों, लाखों का नुकसान हो जायेगा। तो दास भी भयभीत है और मालिक भी भयभीत है। अगली बात-

''जये रिपु भयं'' यदि कोई व्यक्ति यह सोचे कि मैंने विजय प्राप्त कर ली या मैंने उस देश को, राज्य को जीत लिया अब मैं सुखी रह पाऊँगा, तो उसकी यह धारणा भी सही नहीं है। यदि कोई सामने वाला उसकी जीत को उसकी विजय पताका को न पचा सके तो ? उस पर पुनः शक्ति एकत्र कर आक्रमण कर दे तो? उस व्यक्ति को यही भय रहता है, वह अपनी सुरक्षा को और चौकस कर देता है, अपने गुप्तचरों को चारों ओर भेज देता है। कहीं से कोई और ज्यादा बलशाली राजा उस पर आक्रमण न कर दे और वह सुख से नहीं रह पाता। चिंताग्रस्त रहता है अपने प्रति, अपनी प्रजा के प्रति, अपने देश राज्य, अपने सिंहासन सबके प्रति उसे भय रहता है। कहीं मेरा सब नष्ट न हो जाये। अगली बात कही-

'वंशे कुयोषिद् भयं''-वंश का भय, कुल का भय-यदि किसी का बहुत बड़ा कुल है। बहुत नामी-गिरामी कुल है पीढ़ियों से उसमें कई अच्छे-अच्छे काम होते चले जा रहे हैं तब भी व्यक्ति को वह सुखी नहीं कर सकते। क्योंकि तब उसे भय लगा रहता है कि कहीं मेरा बेटा या बेटी ऐसा कोई कार्य न कर दे जिससे मेरा कुल कलंकित हो जाये। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति वह है जो धनवान् नहीं संस्कारवान् कन्या लेता है। संस्कारवान् कन्या 'उभय कुल पवित्रं' दोनों कुलों की लाज रखती है। तो जो प्रतिष्ठित परिवार हैं उन्हें भय रहता है कि वर्षों से चली आ रही परम्पराओं को यदि मेरे बच्चों ने खण्डित कर दिया तो मेरे कुल का क्या होगा।

किसी के वंश में कोई ऐसा कार्य हो जाये जो उसकी बीती पीढ़ियों में कभी न हुआ हो तो वह व्यक्ति कहता है हे भगवान् !

क्या इसी दिन के लिये मुझे जीवित रखा था, इससे पहले तो मेरी मृत्यु हो जाती तो ही ठीक था, कम-से-कम मेरे जीते जी अपने इस पवित्र/पावन कुल में कलंक का टीका लगता तो न देख पाता। बेटे से कहेगा-जा कहीं चुल्लुभर पानी में डूब मर ! तूने एक बार भी अपने घर-खानदान के बारे में नहीं सोचा, तुझे एक बार भी अपने घर की परम्पराओं व मर्यादा का ख्याल नहीं आया।

महानुभाव ! उसे इतना सुनाते हैं सिर्फ किसलिये? अपने मान, प्रतिष्ठा के लिये। जिसके कारण वे अपने को सुखी मान रहे थे। ये सोचकर कि ऐसा कुल वंश तो किसी का नहीं होगा इसमें कहीं कोई दाग न लग जाये यही सोच-सोच कर भयभीत रहते हैं। तो महानुभाव ! ऊँचा कुल भी आपको शाश्वत सुख नहीं दे पाता। अगली बात-

''मानेम्लान भयं'' मान-सम्मान का भय। धन, रूप, ज्ञान, जाति, बल आदि जिनका व्यक्ति मान करता है जिससे उसे समाज में सम्मान मिलता है कहीं वह मेरा छिन न जाये। कहीं कोई आकर भाजी न मार दे। कहीं किसी ने सबके सामने मेरा अपमान कर दिया तो। बस यही चिन्ता उसके चित्त को चिता के समान धूँ-धूँ करके दिनरात जलाती रहती है। मानी व्यक्ति की विशेषता होती है वह बस एक ही बात का भूखा रहता है खाने में एक रोटी कम दे दो चलेगा, गर्मी में गर्म, सर्दी में नर्म पानी दे दो चलेगा किन्तु यदि किसी सभा में या किन्हीं चार आदमियों के सामने लेशमात्र भी उसके सम्मान में कमी हो गयी, भूल से भी भूल हो गयी तो वह भूल से भी तुम्हारी भूल को माफ करने में असमर्थ हो जाता है। वह अपने अपमान को जिंदगी भर भूल नहीं पाता और जीवन भर उसी बात को याद कर कर के घुलता रहता है। उसने सिर पर जो मान का ताज (जिसे वह अपने द्वारा ही पहनता है, पहनाया नहीं जाता) लगा रखा है उसकी चमक में, उसकी कांती में कहीं क्लांति न आ जाये, वह फीकी न पड़ जाये

बस इसी बात से भय भीत रहता है। काहे का मान, काहे का सम्मान इस शरीर का, इस पुद्गल का। जो न रहा है न रहेगा।

''न रही है स्वर्ण लंका, न रहा है गर्वी रावण।
लंका भी हो गयी थी देखो राख जलते-जलते॥

महानुभाव ! बड़े-बड़े राजा महाराजा आये देखो वह सिंकदर जिसने खूब लूट मचाई, सब देशों को जीता क्या अपने साथ उनमें से एक पाई भी ले गया? देखो वह कंस जिसने अपनी मृत्यु के भय से श्रीकृष्ण को मरवाने के लिये क्या-क्या नहीं किया, अपने मान से वह भी मारा गया। देखो वह मानी, निर्दयी घनानंद जिसके शासन में सभी डरे-डरे रहते थे, वह मानी विषय भोगी लालसी घनानंद अपने 10 रूपों को बनाकर अपने महल में रखता था कि कहीं मुझे कोई मार न दे, किन्तु चंद्रगुप्त ने उसके मान को खण्ड-खण्ड कर दिया उसके 10 रूपों को तो नष्ट कर ही दिया उसको भी मगध देश से निकाल, मारकर स्वयं राजा बना।

''कायेकृतान्तात्भयं''-''शरीर का भय''-महानुभाव ! आज का मानव बस इस चमड़ी को चमकाने, दमकाने में ही लगा पड़ा है। इस पेट रूपी पेटी को यद्वा तद्वा खा-खाकर भरने में ही लगा पड़ा है कहीं कृश न हो जाये। अथवा मृत्यु का भय। यदि इसे कुछ हो गया तो, बस इसलिये दिन-रात इसके पोषण में लगा रहता है न दिन का विचार, न रात का विचार, न भक्ष्य का विचार, न अभक्ष्य का विचार, न विवेक, न शुद्धि, न अशुद्धि बस शरीर हृष्ट पुष्ट और बलवान् रहना चाहिये। मेरी यथार्थ उम्र सही उम्र से कम लगे।

ये मानव दिन-रात जिस शरीर की चिन्ता में चिंतित होकर अपने चित्त की एकाग्रता को वित्त को कमाने में लगाये रखता है यदि एक बार भी अपने चित्त को एकाग्र करके अपने श्वांस रूपी बटोही की चिंता कर ले कि न जाने कब ये रुक जायेगी। कब मेरा अंतिम क्षण आ जायेगा। कब ये सब स्वार्थ सिद्धि के साथी जिन्हें अपना मानकर

जीवन को वृथा गवाँ-गवाँ कर अपने जीवन के अमूल्य क्षणों को नष्ट कर रहा हूँ। नष्ट हो जाऐं जिस शरीर से तप करके कर्मों को तिलांजली दे सकता था, उसी शरीर को सजाकर, रचाकर, पचाकर गवाँ रहा हूँ, बस इतना सा चिंतन एक बार कर ले कि जीवन में सब पदार्थ भय पैदा करने वाले हैं, भयभीत करने वाला है बस एक मात्र **''वैराग्य मेवाभयं''** वैराग्य ही शाश्वत सुख देने वाला है। वही सर्वोत्कृष्ट है।

वैरागी व्यक्ति के चित्त में किसी का भय नहीं रहता वह वैरागी चित्तधारी तो संसार से निर्भीक होकर संसार के भोगों को निःसार समझ कर, उनकी यथार्थता को जानकर बुद्धिपूर्वक उनका त्याग कर, संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर स्वयं में स्वयं की आत्मा के निस्सीम वैभव को प्राप्त करने के लिये उसी में डूब जाता है। उसे बाहर के तुच्छ काँच के टुकड़े मिट्टी वत् जान पड़ते हैं। वह तो अपनी आत्मारूपी रत्न को प्राप्त करने के लिये संयम को, रत्नत्रय को, चारित्र को अंगीकार करता है और संसार के बंधनों से, भयों से मुक्त हो जाता है। आचार्यों ने लिखा है-

तीर्थेश्वरा जगज्ज्येष्ठा यद्यपि मोक्षगामिनः।
तथापि स्वीकृतं तैश्च चारित्रं मुक्ति हेतवे॥

तीर्थंकर जगत में ज्येष्ठ होते हैं, श्रेष्ठ होते हैं, जगत के नाथ होते हैं और उनका मोक्ष जाना भी नियामक होता है किन्तु फिर भी वे कर्मों का क्षय करने के लिये चारित्र को, संयम को स्वीकार करते हैं, यदि स्वीकार न करें तो मोक्ष की प्राप्ति न हो। वैराग्य के बिना चारित्र विडम्बना है, वैराग्य से युक्त चारित्र ही संसार का अंत करने वाला है।

महानुभाव ! कितना ही बड़ा तत्त्वज्ञान हो जाये किन्तु संयम की साधना यदि साथ है तब तो तत्त्वज्ञान है अन्यथा नहीं। आचार्यों ने लिखा है-

यथा सिद्धरसः पुंसि निष्फलो भाग्यहीनके।
तथा चारित्र हीनस्य तत्वज्ञानं च निष्फलं॥

यदि किसी व्यक्ति के सिद्ध रस अर्थात् ऐसा ज्ञान है जिसमें लोहे से सोना बनाने की विद्या है या और भी कोई ज्ञान है किन्तु भाग्य का हीन है, बनाने बैठा सोना बन गयी मिट्टी, तो उसकी वह सिद्धरस की विद्या निष्फल है ऐसे ही चारित्र से हीन व्यक्ति का तत्वज्ञान निष्फल होता है। कितना ही ज्ञान हो, 11 अंग 14 पूर्व का भी ज्ञान हो जाये वह भी निष्फल होता है।

आ. सकलकीर्ति महाराज ने कहा-**''वैराग्य सारं भज सर्व कालं''** वैराग्य ही तीनों काल में इस संसार में सारभूत है। अन्य सब निःसार है-हे मानव ! तू इस संसार में रहकर हंस की भाँति दूध अलग-पानी अलग की तरह रह, जल बीच कमल की तरह रह एक भजन की कुछ पंक्तियाँ जो मुझे बहुत अच्छी लगती है-

वे तो अन-धन सब के त्यागी-
भरत जीऽऽऽ घर ही में वैरागी-२

महानुभाव ! भरत जी का जीवन क्या जीवन था तुम्हारे पास तो कुछ सम्पत्ति नहीं, एक पत्नी है एक ही है न! कोई घोड़ा हाथी, पदाती नहीं फिर भी तुम चैन से सुख से नहीं रह पाते। सोचो भरत जी की क्या राज्य व्यवस्था रहती थी। वे तब भी वैरागी थे। जीवन में वैराग्य तभी घटित होता है जब व्यक्ति संसार की सही समीक्षा कर लेता है गुण-दोष देख लेता है।

लोगों को लगता है घर में कुछ नहीं था सो बन गये संन्यासी किन्तु नहीं, तीर्थंकरों के पास क्या कमी थी-आप पढ़ते हैं-

जो संसार विषैं सुख होता तीर्थंकर क्यों त्यागे।
काहे को शिव साधन करते, संयम सो अनुरागे॥

वे तीन लोक के नाथ तीर्थंकर प्रभु जो जन्म से क्या गर्भ से जिनकी व्यवस्था स्वर्ग के प्रमुख सौधर्म इन्द्र द्वारा की जाती है, जो मध्यलोक में दीक्षा से पहले वहाँ का पानी तक ग्रहण नहीं करते, उनके सुख में क्या कमी होती है। वे क्यों सब सुख साधन का त्याग कर वन में जाकर वैराग्य धारण कर संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर कठिन तपस्या करते।

महानुभाव ! तीर्थंकर जैसे महापुरुषों को, सुकुमाल जैसे महामुनियों को, सुकौशल जैसे वीर पुरुषों को, बाहुबली, भरत, राम, हनुमान जैसे वीरों को क्या घर में कोई कमी होती है जो कि वे घर-बार छोड़ कर इस मोक्ष मार्ग पर बढ़ते हैं। अपने जीवन की डोर को संयम से बांध कर सिद्धालय की यात्रा तय करते हैं। क्योंकि वे जान जाते हैं कि-

इस संसार में निश्चय से सुख का लेश मात्र भी नहीं है। आचार्य रविषेण स्वामी कहते हैं-

''संसार में सुख का, शांति का, लेशमात्र क्या उसकी गंध भी नहीं है।''

तो वह वैराग्य ही शाश्वत सुख की खान है। आप भी उस ज्ञान को, संयम को, वैराग्य को क्रमशः ग्रहण करें। क्योंकि वही सर्वभयों से मुक्त कराने वाली अचूक औषधि है। आप भी उसे प्राप्तकर सर्व भयों से मुक्त होकर उस मोक्षरूपी अंगना को प्राप्त करें ऐसी भावना भाते हुए अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

''दु:ख तो वह कहलाता है जिसका वर्तमान में अनुभव कर रहे हैं। और जिसका भविष्य में अनुभव करोगे वह पाप है। भगवान् के दर्शन से सिर्फ वर्तमान का ही दु:ख नष्ट नहीं होता अपितु पाप समूह ही नष्ट हो जाते हैं।''

जिनेन्द्र दर्शन की महिमा अचिन्त्य है उसके बारे में जितना शब्दों में कहा जाये उतना ही कम है। शब्द भी बोने पड़ जाते हैं। जैसे सुमेरु पर्वत के आगे ऊँट खड़ा होकर अपनी गर्दन ऊँची करके कहे कि मैं बहुत बड़ा हूँ किंतु वह ऐसा ही है जैसे उस सुमेरु पर्वत के सामने मानो कोई राई का दाना पड़ा हो, ऐसे ही शब्द जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति, महिमा गाने में बोने पड़ जाते हैं। जिन दर्शन की महिमा का एक श्लोक देखते हुये बात प्रारम्भ करुँ–

''दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनं
दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनं॥''

इस श्लोक में कवि महोदय ने मानो कि धर्म का पूरा मर्म ही भर दिया, दर्शन किसका करना है? वास्तव में जो दर्शनीय है। दर्शन करना अलग है और देखना अलग है संसार की वस्तुओं को देखा जाता है और पूज्य पुरुषों के दर्शन किये जाते हैं। जो वंदनीय होते हैं, पूज्यनीय

होते हैं उन्हें श्रद्धा के नेत्रों से देखना दर्शन कहलाता है और केवल जो बाह्य रूप को देखा जाता है वह देखना होता है। दर्शन स्वरूप के किये जाते हैं और देखा रूप को जाता है। व्यक्ति देखता है तन को व दर्शन किये जाते हैं चेतना के। यदि कोई व्यक्ति अस्वस्थ है, तो आप क्या कहते हैं कि फलाना व्यक्ति एडमिट है हम उसे देखने जा रहे हैं, किन्तु यह नहीं कहते कि हम उसके दर्शन करने जा रहे हैं।

कभी-कभी आप व्यवहार में शब्द प्रयोग करते हैं विवाह आदि के समय लड़के को देखने जा रहे हैं, वहाँ देखना शब्द प्रयोग करते हैं क्योंकि उस समय आप उसके बाह्य रूप को देखते हैं, अंतरंग के स्वरूप तक नहीं पहुँच पाते, किन्तु जब भी कोई मुनिमहाराज आये हों, तो आप क्या कहेंगे? हम महाराज जी के दर्शन करने जा रहे हैं, तो दर्शन शब्द का प्रयोग वहीं हो सकता है जिसके प्रति हमारे चित्त में पूज्यता का भाव हो। ''दर्शन करने के योग्य कौन हैं? ''देवाधि देव'' हमारी आत्मा भी दर्शनीय है। शरीर तो देखने और दिखाने लायक होता है चाहे वह कामदेव का शरीर हो जिसे देखने के लिये स्वर्ग से देव आये, दर्शन करने नहीं आये और कोई मुनिमहाराज हों जिनका शरीर गंदा हो जिस पर मल लगा हो, पसीना बह रहा हो उसे देखकर देव लोग भी क्या कहेंगे कि हम इनकी चरण वंदना करने आये हैं। ये नहीं कहेंगे कि देखने आये हैं।

तो महानुभाव ! संसार में दर्शन करने योग्य कोई है तो वे ''देवाधिदेव'' हैं जिनके साथ देव शब्द का प्रयोग करते हैं। देव शब्द का प्रयोग देवगति के देवों के लिये भी किया जाता है किन्तु वे दर्शनीय नहीं हैं, वे केवल देखने के योग्य हो सकते हैं। देव शब्द का प्रयोग लोक व्यवहार में कई बार किसी भी वस्तु में स्थापना करके कर दिया जाता है और उसकी लोग मूढ़ता वश पूजा करने लग जाते हैं। कभी किसी वृक्ष की पूजा, पत्थर की पूजा, कुँए की पूजा या

किसी अन्य वस्तु की पूजा किन्तु वह भी पूज्यनीय नहीं है। देवगति के देव पूज्यनीय नहीं हैं, या अन्य किसी वस्तु में देवत्व की स्थापना करना भी हास्यास्पद ही है वह भी पूज्यनीय नहीं है। जो कुदेव मिथ्यात्व से ग्रसित हैं वे भी पूज्यनीय नहीं हैं।

पूज्यनीय यदि हैं तो चार घातिया कर्मों से रहित अथवा घातिया-अघातिया कर्मों से रहित वह अरिहंत व सिद्ध देव हैं अथवा आचार्य, उपाध्याय साधु अथवा पाँचों परमेष्ठी के बिम्ब जिनमें इनके गुणों की स्थापना की गई है अथवा पाँचों परमेष्ठियों द्वारा आचरित जो धर्म है अथवा पाँचों परमेष्ठियों/अरिहंत परमेष्ठी के सर्वांग से खिरी जो जिनवाणी है दिव्यध्वनि, आगम के शब्द हैं वे भी पूज्यनीय हैं।

महानुभाव ! नवदेवता पूज्यनीय कहे जा सकते हैं। किन्तु हर एक में पूज्यता का वास नहीं आ सकता। यहाँ पर कह रहे हैं ''दर्शनं देव देवस्य'' देवाधिदेव का दर्शन करने से क्या होता है, तो महिमा आगे बता रहे हैं क्योंकि महिमा बताये बिना व्यक्ति के मन में विशुद्धि नहीं बढ़ पाती, व्यक्ति उस दशा को प्राप्त करने के लिये उतना लालायित नहीं हो पाता। जब टी.वी. पर किसी वस्तु का ऐड आता है, तो वस्तु की आवश्यकता न होते हुये भी वस्तु को देखकर के, सुनकर के मन में ये लगता है कि ये वस्तु मेरे पास भी होना चाहिए। ऐसे ही कवि महोदय कह रहे हैं ''दर्शनं पाप नाशनं'' वह दर्शन पापों का नाश करने वाला है पाप किसे कहते हैं-''चित्त में प्रादुर्भूत बुरे विचार'' चेतना की अशुभ परिणति वही पाप कहलाती है।

जब कर्म बंध जाता है और बुरा फल देता है तो उसे पाप तो दुनिया कहती है किन्तु जैन दर्शन कहता है कि चित्त में जो बुरा विचार आ गया चाहे वह कर्म बंध की अवस्था को प्राप्त हुआ हो चाहे नहीं हुआ हो वह सब पाप है। निंद्य विचार, निंद्यभाव, निंद्य परिणाम चेतना के धरातल पर या चेतना के क्षितिज पर कोई भी ऐसा

भाव है जो तुम्हें संसार में लाने में कारण है वह सब भाव पाप है। भगवान् के दर्शन करने से भवाताप कर्मों का अभिशाप और संसार में दु:ख देने वाले पाप सभी नष्ट हो जाते हैं। भगवान् का दर्शन आपके अंदर की भगवत्ता को प्रकट करने वाला है। वह ऐसा दर्शन है जो आपके जीवन में सातिशय पुण्य का तो अर्जन कराता ही है शुभ का आश्रव कराते हुये पाप को पुण्य में बदल देता है अथवा पाप को आने ही नहीं देता है। जिसके जीवन में भगवान् के दर्शन करने की भावना जाग्रत हो गयी, जब तक भगवान् के दर्शन करने की भावना है तब तक पाप का प्रवेश नहीं है, तब तक उस पाप को चेतना में प्रवेश करने की स्वीकृति नहीं है।

भगवान् का दर्शन ऐसा चौकीदार है जो बुरे विचारों को चेतना में प्रवेश नहीं होने देता है जब बुरे विचार नहीं आयेंगे तो चेतना में अच्छे विचार रह जायेंगे तो अच्छे विचारों वाली चेतना कहाँ जायेगी? अच्छे-अच्छे भावों वाली आत्मा में अभी यदि मोक्ष की पात्रता भी नहीं है तो कल्पवासी देवों में जायेगी, वहाँ से पुण्य के फल को भोगकर के पुन: उत्तम मनुष्य में उत्पन्न होकर के साधना के फलस्वरूप मोक्ष को प्राप्त करेगी। केवल दु:ख का नाश नहीं होता है दु:ख तो वह कहलाता है जिसका वर्तमान में अनुभव कर रहे हैं जिसका भविष्य में अनुभव करोगे वह पाप है।

भगवान् का दर्शन करने से सिर्फ वर्तमान का ही दु:ख नष्ट नहीं होता, भगवान् का दर्शन करने से केवल तत्काल की किसी बाधा का परिहार नहीं होता, केवल कोई एक आपत्ति-विपत्ति नहीं टलती है भगवान् का दर्शन करने से सिर्फ पाप समूह ही नष्ट नहीं होते अपितु पाप वासना ही नष्ट हो जाती है। पाप को बुलाने वाला जो भाव था वह भाव नष्ट हो जाता है। दर्शन करने का ये प्रभाव है कि चित्त में विकार नहीं आ पाता, भगवान् के सामने तुम बैठ जाओ, नहीं भी बैठ

पाओ तो केवल दर्शन करने की भावना भा लो तुम्हारे चित्त में वासना टिक नहीं पायेगी। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह कोई भी पाप टिक नहीं पायेगा। जैसे सूर्य का उदय होने पर अंधकार टिक नहीं सकता इसलिये हे भगवान्-

''जहाँ पर होते हैं आप वहाँ पर टिक नहीं पाते हैं पाप।
जहाँ पर होते हैं पाप वहाँ पहुँच नहीं पाते हैं आप॥''

दोनों में से एक ही रहेंगे, एक साथ दो नहीं रह सकते। ये संभव है कि आपके किसी योग से अशुभ आश्रव हो जाये किन्तु आपकी आत्मा उस समय पाप से रिक्त है। जिस समय तुम वास्तव में दर्शन कर रहे हो तो हो सकता है दर्शन करने को आते समय पाँव से प्रमादवश अथवा भूल से किसी चींटी की मृत्यु हो गयी, ये संभव है कि शरीर से किसी जीव का घात हो सकता है किन्तु आपका चित्त पाप का अर्जन नहीं कर सकता। बुद्धि पूर्वक कोई ऐसा वचन निकल जाये जिसका अर्थ पाप रूप भी होता है वह अलग बात है किन्तु फिर भी आपकी आत्मा पाप में संलिप्त नहीं होगी।

जिनेन्द्र प्रभु के दर्शन करने की भावना में इतनी शक्ति है कि उसकी आत्मा फिर ज्यादा समय तक भटक नहीं सकती। बिना पाप के यह जीव संसार में ज्यादा रह नहीं सकता, क्योंकि चारों घातिया कर्म पाप कर्म हैं अघातिया में भी अशुभ प्रकृतियाँ पाप कर्म हैं। यदि ये प्रकृतियाँ आत्मा में से निकल जायेंगी तो शुभ प्रकृतियाँ रह जायेंगी, वे ज्यादा समय तक ठहर नहीं सकती, अल्पकाल में विगलित हो जायेंगी और वह चेतना अपनी परम शुद्ध दशा को प्राप्त हो जायेगी।

भगवान् की यदि पूजन भी नहीं कर पाये, दर्शन करने की भावना भी भा ली है भले ही दर्शन करने भी नहीं आ पाये तो भी वहीं बैठे-बैठे भावना भाते समय भी तुम्हारे चित्त में पाप का प्रवेश

नहीं होगा। वह आपका सुरक्षा कवच है, देवदर्शन तो सुरक्षा कवच है ही किन्तु देवदर्शन की भावना भी ऐसा अभेद सुरक्षा कवच है कि कर्मरूपी बाण उसको भेदकर अंदर जा नहीं सकता ऐसा बाण तो अंदर जा ही नहीं सकता जिससे आपकी आत्मा को कष्ट हो, ऐसा कोई बाण लग जाये जो पुष्प की तरह आपको सुखद अनुभूति देने वाला हो यह अलग बात है। पुण्य के पुष्पों की वर्षा हो सकती है और जब पुण्य पुष्पों की वर्षा होगी तो आनंद की अनुभूति होगी वह शरीर में चुभेगा नहीं।

''दर्शनं स्वर्गसोपानं''-भगवान् का दर्शन स्वर्ग की सीढ़ी है। बिना सीढ़ी तो हम चढ़ नहीं सकते क्योंकि श्रावक लोग तो चलते हैं पैरों से, मुनिमहाराज हों तो उड़ जायें आकाश में श्रावक कैसे उड़े। आप कहेंगे महाराज जी विद्याधर तो आकाश में चल लेते हैं, मैं उस अपेक्षा से नहीं कह रहा। श्रावक जो है वह देशसंयमी हो सकता है संयमासंयमी है उसके अंदर उड़ने की पात्रता नहीं है वह शनैःशनैः धीमे-धीमे गमन करता है किन्तु जो सकल संयमी हो गये, शुद्धोपयोगी हो गये हैं, अपने स्वरूप में लीन हो गये हैं वे तो ऐसे उड़ते हैं जैसे कोई आकाश में वायुयान उड़ रहा हो, क्षणार्द्ध में वे ऐसी यात्रा कर लेते हैं कि अभी मनुष्य थे देखते-देखते परम मनुष्य हो गये, औदारिक शरीर से परम औदारिक शरीर को प्राप्त हो गये।

मुनिमहाराज का क्या कहना अभी तो ऐसी अवस्था सामान्य सी दिखाई दे रही थी, तभी कुछ क्षण में अन्तरात्मा की अवस्था हो गयी, अन्तर्मुहूर्त के बाद देखा कि वे तो परमात्मा बन गये, सकल परमात्मा बन गये, देखते-देखते वे तो निकल परमात्मा बन गये। तो मुनिमहाराज जिस गति से चल सकते हैं उस गति से श्रावक नहीं चल सकता और मुनिमहाराज यदि पैरों से चलें तो शायद श्रावक के बराबर ही चल पायें और कमजोर हों दुबले-पतले तो उतना भी नहीं चल पायें, किन्तु

महाराज की एक कला बहुत अच्छी है कि वे खड़े होकर तो कम चल पाते हैं किन्तु बैठकर बहुत दौड़ लगाते हैं और आँख बंद करके बैठ जायें तो दौड़ बहुत तेज हो जाती है और कान भी बंद कर लें, मुँह भी बंद तीनों गुप्तियों का गोपन करते हुये जब ये दौड़ते हैं तो अच्छे-अच्छे व्यक्ति इनसे रेस में आगे नहीं निकल पाते। एक समय में 7 राजू की दूरी ऐसे पार कर जाते हैं कि फिर उस बाउण्ड्री के बाहर पहुँचे कि कभी लौटने का चांस ही नहीं। दर्शन स्वर्ग की सीढ़ियाँ हैं किसके लिये श्रावक के लिये और साधु के लिये ''मोक्षसाधनं'' वह दर्शन मोक्ष का साधन है-क्योंकि जिन दर्शन निज दर्शन का कारण है, इसलिये जिन दर्शन मोक्ष का साधन है। यह दर्शन श्रावक के लिये मोक्ष की सीढ़ी है, यह परम्परागत सीढ़ी है।

महानुभाव ! बात उस समय की है जिस समय ललितपुर में जो उत्तर प्रदेश का दूसरा सिरा कहलाता है जो दक्षिण दिशा में शायद अंतिम जिला है। वहाँ ललितप्रभ नाम का राजा रहता था। वह अपनी प्रजा का वात्सल्य पूर्वक पालन करता था। वह ललितपुर बहुत लंबा चौड़ा नगर नहीं था वहाँ भौतिक संसाधन भी ज्यादा नहीं थे। यह पंचम काल की ही बात है चौथे काल की नहीं। भगवान् महावीर स्वामी का मोक्ष हो चुका था। श्रुत केवली अन्तःकृत केवली और उपरांत आचारांग आदि अंगों के ज्ञाता की परम्परा भी लुप्त होती चली जा रही थी। एक दिन उस राजा के मन में आया मैं शाश्वत सिद्ध क्षेत्र सम्मेद शिखर जी की वन्दना करूँ। सम्मेद शिखर का एक-एक कण पवित्र है। यदि वहाँ का एक कण भी यहाँ आकर तुम्हारे मस्तक पर लग जाये तो वह तुम्हारी विशुद्धि को बढ़ाने में समर्थ है।

जैसे नरक का एक कण भी यहाँ आ जाये तो 24 मील तक के जीवों का रहना मुश्किल हो जायेगा, इतना बदबूदार अशुद्ध कण होता है और सम्मेद शिखर जी का एक विशुद्ध कण, हो सकता है आपके

सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र और वैराग्य में हेतु बन जाये। वह शाश्वत सिद्ध क्षेत्र है कभी असिद्ध नहीं हुआ अनादि काल से लेकर अनंतानंत चौबीसी तीर्थंकर वहाँ से मोक्ष गये। सम्मेद शिखर जी से अनंतानंत मुनि मोक्ष गये। अयोध्या जी और सम्मेद शिखर दो ही ऐसे शाश्वत क्षेत्र हैं कि कभी लुप्त नहीं होते। वहाँ शाश्वत स्वस्तिक का निशान बना हुआ है प्रलय काल के उपरांत भी ज्यों की त्यों रचना हो जाती है देवों के द्वारा। इसीलिये पूर्व में राजा-महाराजा मण्डलेश्वर राजा आदि मुनियों के संघ को यात्रा कराने के लिये ले जाते थे क्योंकि मुनिमहाराज के साथ एक यात्रा करना अकेले 1000 यात्रा करना एक बराबर फल देने वाली होती हैं। अकेले पैदल 1 यात्रा और वाहन से 1000 यात्रा करना एक बराबर है! और मुनिमहाराज के साथ यात्रा करना और स्वयं मुनि बनकर यात्रा करना उसका तो कहना ही क्या।

राजा ललितप्रभ ने भी अपनी माता से अनुज्ञा प्राप्त कर कहा-माँ ! मेरी भावना सम्मेदशिखर जी की यात्रा करने की है जीवन कह नहीं सकते कब तक का है? माँ ने कहा-बेटा मैं भी यही चाहती थी जीवन में मैंने भी एक यात्रा की है तेरा जीवन भी तभी सफल होगा जब तू भी सम्मेद शिखर जी की यात्रा कर ले तू आज समर्थ है। राजा ने अपने अंगरक्षक, मंत्री, सेनापति आदि सभी को संकेत कर दिया। यात्रा करने जाना है। जब इस यात्रा की खबर नगर में पहुँची तो जो लोग यात्रा करने में समर्थ थे वे राजा के साथ चलने लगे। दो बालक और ललितपुर में रहते थे जो एक विधवा माँ के बेटे थे और दोनों की उम्र कोई ज्यादा नहीं थी। हो सकता है 7 या 8 वर्ष हो दोनों बालकों ने अपनी माँ से जैनधर्म की कहानियाँ सुनी थीं, कहानियों में उन्होंने सम्मेद शिखर की महिमा भी सुन रखी थी कि जो एक बार भी सम्मेद शिखर की वंदना कर लेता है, ऐसा जीव नरक आदि दुर्गति में नहीं जाता।

''एक बार वन्दे जो कोई, ताहि नरक-पशुगति नहिं होई।''

वह राजा यात्रा को तैयार हुआ, उन लड़कों की माँ राजा के पास आयी निवेदन किया, आपकी हम गरीब जनता पर बड़ी कृपा दृष्टि है, आपका ऋण कोई चुका नहीं सकता, राजा ही परमात्मा के समान होता है राजा दूसरा भगवान् होता है, इसलिये हम आपके चरणों में एक प्रार्थना करने आये हैं, मैं तो नहीं चल सकती किन्तु मेरे बेटों की भावना है वे आपकी सेवा करते हुये सम्मेद शिखर जी जाना चाहते हैं। सम्मेद शिखर जी की भावना जैसे ही राजा ने सुनी तो उन्होंने कहा-छोटे बालक मेरी क्या सेवा करेंगे? खैर मैं ले जाता हूँ, राजा ने कहा ठीक है माँ आप मेरे पास एक आशा लेकर आयी हो, आपके शब्दों का प्रभाव मेरे चित्त पर बाद में पड़ेगा आपके सजल नेत्र मुझे अंदर से झकझोरने के लिये मजबूर कर रहे हैं और मैं आपके पुत्रों को यात्रा के लिये लेकर जाऊँगा।

दोनों बालक बड़ी खुशी-खुशी जिनदर्शन की भावना के साथ चलने को तैयार हुए। तभी माँ ने कहा कि कभी राजा के पास, ज्योतिषी के पास और प्रभु के पास खाली हाथ नहीं जाते यदि कहीं खाली हाथ जाते हैं तो इनके पास से खाली हाथ लौटना पड़ता है, जब कोई व्यक्ति लोक व्यवहार में अपने सगे संबंधियों के पास भी जाता है तो वहाँ भी खाली हाथ नहीं जाता, फल, वस्त्र, मिठाई कुछ न कुछ अवश्य ले जाता है तो भगवान् के पास खाली हाथ क्यों जाओ? वह शाश्वत सिद्ध क्षेत्र है, सो दोनों बच्चों के लिये उनकी माँ ने एक पोटली में ज्वार के दाने बांध दिये। शनैः-शनैः वे सम्मेद शिखर जी पहुँचे।

राजा ने वंदना प्रारंभ की, 3-4 दिन वहाँ रुके सबने वंदना की। राजा ने कहा-अब चलना चाहिये, अन्य साथियों ने कहा-राजन् अभी थोड़े दिन और रुकना चाहिये। यह समाचार उन बालकों ने सुना तो

उनका मन आकुल-व्याकुल हो गया, हम सम्मेद शिखर जी तो आ गये किन्तु पहाड़ की वंदना नहीं कर सके, हमारा आना तो बेकार जायेगा, क्या करें-दिन भर तो यहाँ सेवा में रहते हैं वंदना कैसे की जाये? संध्याकाल में सब कार्यों से निवृत्त होकर लगभग साढ़े आठ-नौ बजे दोनों भाईयों ने सलाह की, कि हमारा कर्तव्य है कि रात्रि में यहाँ पहरा करना ताकि कोई चोर आदि हमारे राजा का सामान न ले जाये, किन्तु हे भगवान् अब आप ही सामान की रक्षा करना हम क्या रक्षा कर सकते हैं हम तो आपके दर्शन करने आ रहे हैं।

दोनों भाई उत्साह के साथ दौड़ते चले गये, रात्रि में न टॉर्च थी न लाठी थी, उनके पास तो श्रद्धा की आँखें थीं। उन्हें न बिच्छु ने काटा, न सर्प ने डसा, न कंकड़ चुभा दोनों भाई दौड़ते चले गये और गौतम स्वामी की टोंक पर पहुँच गये वहाँ से क्रम-क्रम से पूरी वंदना की। उनके पास जो ज्वार के दाने थे वही मुट्ठी भर चढ़ाते चले गये और दौड़कर वंदना करते हुये लगभग 4-5 बजे के आसपास नीचे लौटकर आ गये। वंदना बहुत अच्छी हो गयी, इतनी खुशी उन्हें जीवन में कभी नहीं हुयी जीवन का अकृत्रिम आनंद उन्हें प्राप्त हुआ।

वे आपस में कहने लगे कि हे भगवन् ! अब हमारी मृत्यु भी हो जाये तो हमे गम नहीं कम से कम हमने शिखर जी की वंदना तो कर ली। हमारी माँ कहती थी कि शिखर जी की वन्दना करने से जीवन सफल और सार्थक हो जाता है। दोनों बालक हर्षातिरेक के कारण अश्रु बहाते हुये एक दूसरे से लिपट गये, रोने लगे। बोले हम धन्य हो गये हमारी यात्रा हो गयी।

प्रात:काल हुआ, पुन: राजा की सेवा में लगे, राजा वंदना करने के लिये निकला और देखता है सभी मंदिरों में भगवान् के आगे हीरे मोती चढ़े हैं। राजा ने सोचा हमसे पहले कौन वंदना करने के लिये आ गया, क्या कोई देव वंदना करने आये या कोई और राजा यहाँ ठहरा

हुआ है। वह मुझे नीचा दिखाना चाहता है मुझसे कीमती हीरे मोती यहाँ चढ़ाये। राजा बिना वंदना किये लौट कर आ जाता है और घोषणा करवा देता है कि मुझसे बड़ा कौन सा ऐसा शासक है जो मुझसे पहले वंदना करने गया, गुप्तचरों ने पता लगाया किन्तु ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो राजा से अधिक सम्पन्न हो, पुनः इसका पता लगाने के लिये राजा ने प्रत्येक मंदिर पर दो-दो सैनिक खड़े कर दिये।

दिन में कोई व्यक्ति नहीं आया किन्तु यह खबर उन बालकों को मालूम नहीं थी इसीलिये रात्रि में राजा की सेवा कर आपस में इशारा किया कि चलो एक वंदना और कर लेते हैं और भगवान् की कृपा रही तो कल एक और वंदना कर लेंगे। दोनों भाइयों ने दौड़ लगाई सीधे गणधर स्वामी की टोंक पर पहुँचे। पोटली खोली और ज्वार चढ़ाते चले गये, सब सैनिकों ने देख लिया कि इनके अलावा कोई और नहीं आया। पुनः उन बालकों को पकड़कर राजा के पास लाया गया, बालकों को ज्यों ही हाजिर किया बालक रोने लगे। बेचारे क्या करें? सैनिकों से पूछा-इन्हें पकड़ कर क्यों लाये हो? महाराज! ये वे दुष्ट जीव हैं जिनके बारे में आप जानते नहीं हैं ये बड़े ही शातिर हैं आपके खजाने की चोरी करके सम्मेद शिखर की टोंक पर वे हीरे-मोती इन्होंने ही चढ़ाये हैं। राजा ने कहा-देखने में बड़े छोटे और भोले-भाले दिखाई देते हो, मुझे नहीं पता था तुम चोर हो, जिस थाली में खाते हो उसी में छेद करते हो, राजा ने बहुत डांटा-फटकारा।

वे दोनों हाथ जोड़कर रोने लगे कहने लगे-आप हमारे माता-पिता से बढ़कर हैं, अन्नदाता हैं, न्यायमूर्ति हैं, हमने यह गुनाह तो किया है कि हम आपकी आज्ञा के बिना सम्मेदशिखर जी वंदना के लिए ऊपर गये थे, किन्तु आपकी कोई वस्तु हमने बिना पूछे आज तक छूई नहीं है, आप जो दण्ड देना चाहते हो दे सकते हो। राजा ने कहा-झूठ बोलते हो और अपने सैनिकों से कह दिया तलवार से इनका गला

अलग कर दो। दोनों बालक कहने लगे-राजा साहब आप हमारा गला काट दो इस बात का हमें डर नहीं किन्तु हमें कलंकित करके मत मारो, हमने चोरी नहीं की। यदि ऐसा करोगे तो लोग गरीबों पर विश्वास नहीं करेंगे, ध्यान रखना हम गरीब जरूर हैं किन्तु बेईमान नहीं हैं चोर नहीं हैं। हमने चोरी नहीं की।

राजा ने कहा-इतनी निर्भीकता से बोल रहे हैं बात में कोई न कोई दम होगा, यदि तुम्हारी बात ऐसी ही है तो चलो, मेरे सैनिक कहते हैं कि तुमने ही हीरे मोती चढ़ाये हैं। बोले महाराज चढ़ाना तो दूर की बात हमने तो आज तक देखे भी नहीं हैं फिर ? हमने तो ज्वार के दाने चढ़ाये थे हमारी माँ ने दिये थे, चलो ज्वार के दाने लेकर के चढ़ाओ यदि वे हीरे मोती नहीं बने तो समझ लेना। वे बोले राजन् ये सब कुछ हम नहीं जानते। राजा और दोनों बालक गये और दोनों भाईयों की आँखों में आँसू भरे हुये दोनों भाई एक-एक वेदी पर मुट्ठी भर ज्वार के दाने चढ़ाते हैं। देखते ही देखते वे ज्वार के दाने जगमगाने लगते हैं, हीरे मोती बन जाते हैं। राजा यह देख नतमस्तक हो जाता है और कहता है वास्तव में सच्ची भक्ति तो तुम्हारी है, मेरी तो दिखावटी थी, मेरी भक्ति कुछ भी नहीं और अपनी तलवार फेंक देता है मुकुट उतार कर जमीन पर फेंक देता है वहीं जिन दीक्षा ले लेता है।

उस राजा के कोई पुत्र नहीं था, राजा सबके सामने घोषणा कर देता है कि ये दोनों बालक मेरी पूरी सम्पत्ति के मालिक होंगे। वे देवपत और खेवपत नाम के दोनों बालक लौटकर के आते हैं और अपनी माँ को सारी बात बताते हैं। उन्होंने भी संकल्प लिया कि राजा की सम्पत्ति में से एक पाई भी अपने लिये खर्च नहीं करेंगे पूरी सम्पत्ति धर्म में लगा देंगे।

महानुभाव ! उन दोनों बालकों ने ललितपुर में एक स्थान है ''देवगढ़'' वहाँ पर मूर्तियों का केन्द्र बनाया वहाँ सैकड़ों हजारों शिल्पकार तैयार किये मूर्तियाँ बनवाईं, प्रतिष्ठा करवाईं। एक किंवदंती है देवगढ़ के बारे में कि वहाँ इतनी दिगम्बर मूर्तियाँ बनीं कि आज भी एक मूर्ति पर एक चावल चढ़ायें तो लोग कहते हैं कि एक बोरा चावल भी कम पड़ जाये, मूर्तियाँ ही मूर्तियाँ हैं। आज भी उनके द्वारा बनवाये मंदिर विद्यमान हैं।

महानुभाव ! एक बार जब श्रद्धा से सम्मेद शिखर जी की वंदना करने से उनके ज्वार के दाने हीरे मोती हो सकते हैं तो यह कोई बड़ी बात नहीं भगवान् के दर्शन करने से तो आत्मा भी परमात्मा हो जाता है। भगवान् के दर्शन का बड़ा महात्म्य है। सम्मेद शिखर जी जो नहीं गये हों तो मैं कहना चाहूँगा कि-भोजन दो बार नहीं एक बार करना यदि जाने की सामर्थ्य न हो तो पैसा बचाकर इकट्ठा करना और सम्मेदशिखर जी की वंदना अवश्य करना। जो भव्य जीव हैं वे शिखरजी की यात्रा अवश्य करते हैं, अभव्य यात्रा नहीं कर सकता। जिसने नरक आदि आयु का बंध कर लिया है वह शिखर जी की यात्रा नहीं कर सकता। भगवान ने तुम्हें सामर्थ्य दी है तो अकेले नहीं करना अपने साथ किसी ऐसे गरीब को भी ले जाना जिसकी सामर्थ्य यात्रा करने की न हो। महानुभाव ! इसमें तुम अहंकार नहीं करना किन्तु उसका अहसान मानना जिसने तुम्हारे धन से यात्रा करना स्वीकार कर लिया तुम्हारा धन सफल और सार्थक हो गया।

सम्मेद शिखर जी का एक-एक कण अपने आप में पवित्र और पावन है। भगवान के दर्शन की महिमा अचिन्त्य है। आप सभी का मंगल हो, शुभ हो, कल्याण हो।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

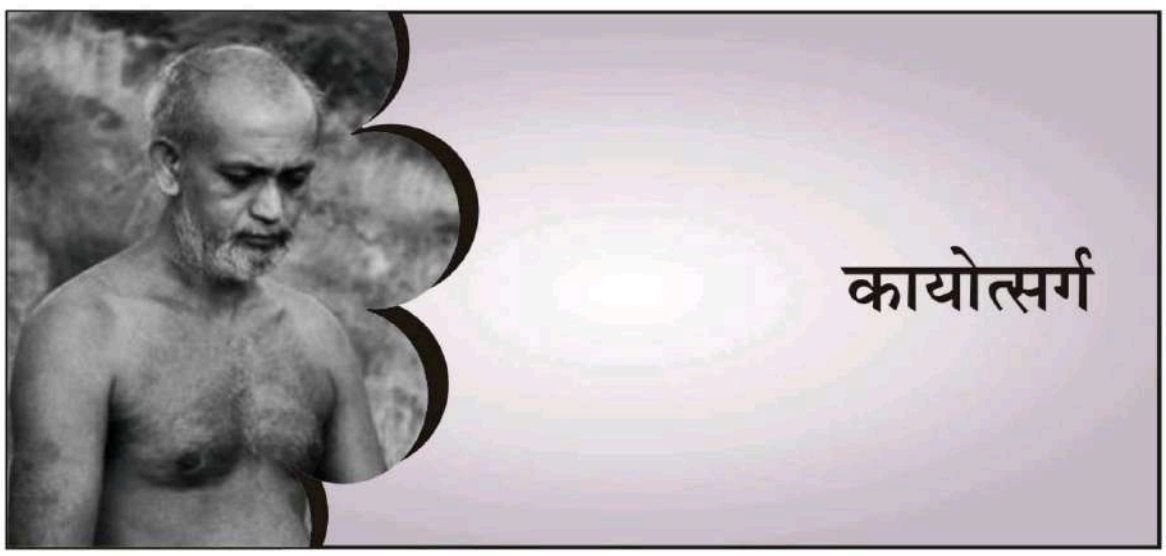

नदी की तरह बह जाओगे तो तिर जाओगे, पृथ्वी की तरह सह जाओगे तो उठ जाओगे। क्योंकि सहना, मर्यादा में बहना, अपने आप में रहना, कुछ नहीं कहना तथा कर्मों को दहना ये सभी आत्मदर्शन करने के लिए महत्वपूर्ण पहलू हैं।

आत्म दर्शन करने के लिये सबसे महत्वपूर्ण पहलू है कि हम आत्मदृष्टा से सम्पर्क करें, उससे अपना संबंध बनायें और संबंध केवल बाहर से नहीं जब अंतरंग से बने वही वास्तव में संबंध है। ये लोक की उल्टी रीति है कि अंतरंग में जो बंध होता है उसे बंध कहते हैं और बाहर में जो मिलना-जुलना होता है उसे हम संबंध कहते हैं उसे सम्यक बंध माना जाता है।

महानुभाव ! गुरु के चरण की शरण को प्राप्त करना नि:संदेह उत्तममरण का कारण है, मुक्तिवरण का कारण है, कर्महरण का कारण है इसीलिये गुरु के चरणों की शरण अत्यावश्यक है। गुरु के चरण की शरण को जो प्राप्त हो जाता है वह आज नहीं तो कल बुद्धि को छोड़कर के प्रज्ञा के धरातल पर पहुँच जाता है। जो प्रज्ञा सम्पन्न है वह व्यक्ति हर काल में, हर क्षेत्र में बुद्धि सम्पन्नों के द्वारा पूज्यता को प्राप्त हुआ है। बुद्धि सदैव अच्छे बुरे का निर्णय लेती है, बुद्धिमान

के दिमाग में सदैव यह बात रहती है कि ये अच्छा है ये बुरा है किन्तु प्रज्ञा सम्पन्न की दृष्टि में न संसार में कुछ अच्छा है न कुछ बुरा है। प्रज्ञा सम्पन्न व्यक्ति के जीवन में समता का झरना फूट पड़ता है वह समता का झरना ही नि:संदेह संसार के समस्त संतापों को, पापों को, अभिशापों को शांत करने वाला होता है, प्रक्षालित करने वाला होता है। समता के झरने से ही ममता की कीचड़ धुल जाती है और जब तक समता का झरना न फूटेगा, तब तक ममता की कीचड़ धुलेगी नहीं चाहे अनंत काल ही क्यों न बीत जाये।

प्रज्ञा के द्वार पर खड़े होकर गुरु की शरण को प्राप्त करके जीवन में आत्म दर्शन का जो पहला उपाय किया जाता है वह किया जाता है-''कायोत्सर्ग''। जो कायोत्सर्ग करना नहीं जानता है समझ लेना चाहिये वह आत्मोपसर्ग कर रहा है या तो कायोत्सर्ग करो नहीं तो आप आत्म उपसर्गी हैं, अपनी आत्मा पर उपसर्ग कर रहे हैं। जो कायोत्सर्ग कर सकता है वही वास्तव में आत्मा का उत्कर्ष कर सकता है, बिना कायोत्सर्ग के किसी की भी आत्मा का उत्कर्ष नहीं हुआ, कायोत्सर्ग जरूरी है, किन्तु कायोत्सर्ग के मायने क्या? क्या शरीर को उठाकर फेंक दें वस्त्र की तरह से, जैसे पसीने से तरबतर वस्त्र को उतार कर रख दिया जाता है। ये तो शक्य नहीं है, यदि ये शक्य होता तो संसार में क्यों जन्म-मरण करते, क्यों शरीर को ढोते रहते ये तो अशक्य है। हाँ यदि इस शरीर के कारण को नष्ट कर दिया जाये तो फिर शरीर हमारी आत्मा पर बोझ बनकर न रहेगा, इसीलिये कायोत्सर्ग करना जरूरी है।

किन्तु कायोत्सर्ग में पाँच बातें हैं, यदि ये पाँच बातें हैं तो नि:संदेह कायोत्सर्ग पूर्णता को प्राप्त हो गया और पाँच में से एक भी बात कम है तो यही समझना चाहिये कि अभी कायोत्सर्ग पूरा नहीं हुआ। जैसे कोई कुंभकार मंगल कलश बनाता है तो उसने 5 स्टेप कर

लिये, मिट्टी खदान में से खोदकर के लाना, पुनः मिट्टी को तोड़कर के उसे गलाना इतनी गोधना जिससे वह सम हो जाये न ज्यादा ढीली और न ज्यादा टाइट हो, फिर उसे चाक पर रखकर घुमाना, पुनः बर्तन बनाकर ठोक पीट कर बर्तन सुखाने रख दिया और पाँचवें स्टेप में उसे तपा लिया, तब वह मंगल कलश बन गया, यदि पाँच में से कोई एक स्टेप भी बीच में भूल जायें तो मंगल कलश न बन पायेगा। ऐसे ही कायोत्सर्ग के पाँच आयाम हैं पाँचों की पूर्णता है तब तो निःसंदेह हमारी आत्मा की भी पूर्णता हो जायेगी। यदि कहीं हमने अधूरा छोड़ दिया तो हमारा कार्य सब अधूरा रहेगा तो हमारी यात्रा भी अधूरी रहेगी। कायोत्सर्ग से ही मोक्ष का मार्ग प्रारंभ होता है और कायोत्सर्ग पर ही मोक्ष का मार्ग पूर्ण होता है। प्रारंभ भी यहीं से है, अंत भी यहीं से है। ये दो सिरे हैं, बीच में कुछ भी करते रहो ये सिरे नहीं टूटने चाहिये। कायोत्सर्ग में पहली बात है-

१. शरीर आदि के प्रति निर्ममत्व भाव—केवल शरीर नहीं, शरीर आदि पर वस्तुओं के प्रति निर्ममत्व भाव। तुम शरीर को तो पत्थर की तरह से कठोर कर बैठ गये किन्तु मन में चिंतन चल रहा है, कुछ भी हो उसको तो मजा चखा कर ही रहूँगा कि मैं भी कुछ हूँ। यदि मन में भविष्य की कुछ आकांक्षा चल रही हो कि मुझे ऐसी वस्तु प्राप्त हो जाये तो कायोत्सर्ग नहीं है। यदि मन में अतीत काल के प्रति बार-बार मन लग रहा है कि हम पहले ऐसे भोगों को भोगते थे, ऐसा करते थे, भूत को साथ लेकर चल रहे हैं, भूत की वस्तुओं को स्मृतियों में अच्छी तरह कस कर बांधकर चल रहे हैं। भविष्य में जो जन्मा ही नहीं है उसे कल्पना में पैदा करके अपनी गोदी में लेकर चल रहे हैं अथवा वर्तमान काल में जो तुम्हारे आगे-पीछे दांये-बांये कहीं भी है उसे अपने मन में बसा कर चल रहे हैं तो उसका कायोत्सर्ग प्रारंभ ही नहीं हुआ।

आचार्य भगवन् वट्टकेर स्वामी ने मूलाचार में कायोत्सर्ग के बत्तीस दोष बताये, वंदना के भी 32 दोष कहे। यदि शरीर आदि पर वस्तुओं से निर्ममत्व भाव है तो समझो तुम कायोत्सर्ग में आगे बढ़ सकते हो और यदि कहीं ममत्व परिणाम पड़ा हुआ है चाहे किसी परमाणु मात्र के प्रति भी है तो समझो कायोत्सर्ग आपका अभी सफल नहीं हो रहा क्योंकि अभी आपकी पर वस्तु में एकत्व बुद्धि है, पर वस्तु में आपका एकीभाव है, परवस्तु में आपका अद्वैत पना है, पर वस्तु के साथ आपका अभिन्नपना है, इसलिये तुम कायोत्सर्ग के क्षेत्र में प्रवेश ही नहीं कर सकते। पहला दरवाजा ही बंद है तो आगे का गेट कैसे खोलोगे? तो पहली शर्त कायोत्सर्ग की-शरीर आदि पर पदार्थों के प्रति निर्ममत्व परिणाम है और दूसरा आयाम है।

२. सहिष्णुता / सहनशीलता-कायोत्सर्ग कर रहे हैं निर्ममत्व परिणाम हैं किन्तु साथ में सहनशीलता भी हो। क्षणभर के लिये निर्ममत्व परिणाम बना बाद में मच्छर बैठ गया और तुम उचक गये। यदि कायोत्सर्ग करते-करते किसी ने कह दिया-देखो ! ढोंगी बनकर बैठ गया है, और तुम डिग गये। यदि कायोत्सर्ग करते-करते थोड़ी हवा का झोंका आया और आप को ठंडी लग गयी आप कांपने लग गये तो वह कायोत्सर्ग नहीं कहलाएगा इसलिए कायोत्सर्ग के समय निर्ममत्वता के साथ सहिष्णुता भी होना चाहिये। यदि सहनशीलता नहीं है तो भी कायोत्सर्ग में प्रवेश नहीं है, चाहे वह मौसमकृत उपसर्ग हो, चाहे वह किसी के वचनों के द्वारा किया गया उपसर्ग हो, चाहे किसी जन्तु द्वारा हो, चाहे किसी मनोविकार के द्वारा उपसर्ग हो उसे सहन करने की शक्ति होना चाहिये।

यह भी ध्यान रखना है कहीं कायोत्सर्ग करते-करते क्रोध तो नहीं आ रहा, कायोत्सर्ग करते-करते कहीं मायाचारी तो नही है कि 100 व्यक्ति देख रहे हैं तब तो ऐसे बैठ गये बिल्कुल भगवान् की

तरह से और देखा जब कोई नहीं है तो कायोत्सर्ग भी चल रहा है, खुजली भी खुजाते जा रहे हैं, यहाँ भी देख रहे हैं-वहाँ भी देख रहे हैं सब काम चलता जा रहा है, तो कायोत्सर्ग के मायने ये नहीं हैं। कायोत्सर्ग के मायने हैं सहिष्णुता, सहनशीलता और वह केवल प्रतिकूल परिस्थिति में ही नहीं अनुकूल परिस्थिति में भी। किसी के कटु शब्द सहन हो भी जायें किन्तु प्रिय शब्दों को कौन सहन करेगा। किसी ने कह दिया-वाह ! क्या कायोत्सर्ग कर रहा है भगवान् की तरह लगता है, इतना सुना कि चेहरे पर थोड़ी चमक आ जाती है, आँखों में चमक आ जाती है, शरीर में उत्साह आ जाता है, रोम-रोम पुलकित हो जाता है। विद्वेष जनक शब्दों को तो आप सहन कर सकते हो किन्तु जो शब्द प्रशंसा के होते हैं, राग की पुष्टि करने वाले होते हैं उन्हें सहन करना जरा कठिन होता है। तो कायोत्सर्ग में सहिष्णुता का आशय है कि अनुकूल वस्तु को भी सहन करना प्रतिकूल को भी सहन करना। तुमसे कोई प्यार करे और तुम्हारे हृदय में कहीं कोई प्यार का अंकुर न फूटे तो ऐसा होना कठिन है किंतु ये होना स्वाभाविक हो सकता है अभ्यास करते-करते कि कोई तुम्हें 100 गाली दे जाये और तुम्हारे मन में उसे गाली देने का भाव न उठे।

कोई तुम्हारे चरणों में 100 बार माथा रगड़े, 100 बार क्षमा याचना करे, प्रार्थना करे, विनती करे और तुम्हारा हृदय न पिघले, ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हारा हृदय मोमबत्ती की तरह से है उसकी प्रार्थना एक जलती हुयी तिल्ली की तरह से है, तिल्ली को मोमबत्ती के पास लगाओ तो वह पिघलने लगती है। तो सहिष्णुता के मायने मैं समझता हूँ कि केवल द्वेष कारक शब्दों को, प्रतिकूल, परिस्थितियों को सहन नहीं करना है अपितु रागपूर्ण परिस्थितियों को सहन करना सहिष्णुता कहलाती है और जिसके पास धैर्य होता है वह निःसंदेह वीर तो होता ही है। सभी वीर धीर नहीं होते किन्तु सभी धीर वीर होते हैं। जो धीर

होते हैं जिनके पास धैर्यशक्ति होती है वह नियम से वीर होते हैं। वही धैर्य धारण कर सकते हैं। किन्तु सभी वीर धैर्य धारण नहीं कर सकते, कुछ उतावले भी होते हैं, आकुलता-व्याकुलता का परिचय भी दे सकते हैं तो महानुभाव ! कायोत्सर्ग का दूसरा आयाम है सहिष्णुता और तीसरा आयाम है-

३. सहजता-जब चारों कषायों को शमित कर दिया, चारों कषायें उपशम भाव को प्राप्त हो गयीं तो जीवन में सरलता/सहजता आ जाती है। व्यक्ति सहज हो जाता है। विकार पर निमित्तक है, विकार पर के द्वारा पैदा होता है, किन्तु सहजता स्वोत्पन्न होती है। सहजता के लिए पर निमित्त की आवश्यकता नहीं। जैसे व्यवहारिक जीवन जीने के लिये प्राण वायु/दश प्राणों की आवश्यकता है किन्तु निश्चय जीवन जीने के लिये बाहर की किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। सहजता के मायने हैं बिल्कुल सहजता। वहाँ कुछ है ही नहीं नदी की धारा जैसे बह रही है बहने दो चाहे तेज बहे या मंद बहे। सहजता के मायने होता है-''अपने चित्त के विकारों का मात्र अवलोकन करना, जानो और देखो कुछ करो मत''।

जो विकार/भाव मन में आ रहा है आने दो, जाने दो किन्तु तुम उसके पीछे न लगो, यदि कोई चोर चोरी करने आये और तुम उससे कह दो-देख ! मैं जानता हूँ तू चोरी करने आया है तो चोर के हाथ काँप जायेंगे और तुमने कहा चिन्ता न कर मैं भी तेरे साथ हूँ तो वह एक और एक ग्यारह हो गये। चित्त में जैसे ही विकार आता है और उसे तुम ज्ञाता दृष्टा बनकर देखते हो तो विकार भाग जायेगा। मन तुम्हारा कहीं भाग करके जाता है और तुम कहो-मैं तुम्हें देखता हूँ कि तुम कहाँ-कहाँ जाते हो, कहाँ-कहाँ बात करते हो, कितनी धमाचौकड़ी करते हो देखो सावधान रहना-मैं तुम्हारी शिकायत करूँगा सजा दिलवाऊँगा तो मन कांप जायेगा भईया ऐसा न करो, यदि हमारी

आत्मा भी मन का काम कर ले तब तो मन कहेगा मैं तो चोरों का सरदार हूँ मेरे साथ मन भी है, वचन भी है, काय भी है मेरे साथ तेरी आत्मा भी लगी है। अब मुझे क्या चिन्ता? तो सहजता के मायने होता है ज्ञाता-दृष्टा बनके केवल साक्षी भाव से, समता परिणाम से देखते रहो कुछ करो मत। जानना देखना ही तो हमारा स्वभाव है करना हमारा स्वभाव नहीं है। चौथा सोपान है।

४. निर्भीकता-व्यक्ति के अंदर जब तीन बातें घटित होती हैं निर्ममत्व बुद्धि, सहिष्णुता, सहजता उसके बाद पूर्ण निर्भीकता आती है। उसे चिन्ता नहीं रहती है। मेरी आत्मा का कोई बाल-बांका नहीं कर सकता और शरीर की रक्षा संसार का कोई प्राणी कर नहीं सकता, इसको तो नष्ट होना ही होना है चाहे आज हो जाये चाहे कल हो जाये। ''लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।'' मृत्यु कभी भी आ सकती है शरीर को बचाया नहीं जा सकता शरीर को जीवंत नहीं रखा जा सकता है किन्तु आत्मा को कोई मार नहीं सकता। जब तक शंका रहती है तब तक निर्भीकता नहीं आती है। जब आत्म तत्त्व का बोध हुआ, जो सहजता में डूब गया उसे संसार की कोई भी वस्तु, कोई भी व्यक्ति भयभीत नहीं कर सकता।

तो कायोत्सर्ग में चौथी विशेषता होती है कि कायोत्सर्ग करने वाला व्यक्ति उस काल में, उस समय निर्भीक होता है उसे किसी का भय नहीं रहता है। कायोत्सर्ग के समय जैसे-वारिषेण के सामने कोई हार डाल गया और पुनः जब मालूम चला तो राजा के सैनिक दौड़ कर आये और उन्हें चोर समझकर पकड़ कर ले गये राजा ने दण्ड की घोषणा भी कर दी किन्तु वहाँ भय नहीं है, साँच को आंच नहीं। जिसने पाप नहीं किया उसे डर नहीं होता। जिसने पाप किया है वह सदैव भयभीत रहता है, चाहे घर में रहे चाहे बाहर, चाहे शत्रु के यहाँ अथवा मित्र के यहाँ रहे उसने पाप किया है तो डर नियम से लगेगा

ही लगेगा, निर्भीकता नहीं आ पाती। निर्भीकता कभी बाह्य सुरक्षा से नहीं आती निर्भीकता तो अंदर से पैदा होती है। कोई व्यक्ति बहुत अच्छी कोठी बनवा ले उसके चारों तरफ कोट बनवा ले, खाई बनवा ले और बाहर सशस्त्र चौकीदार खड़े कर दे किन्तु अंदर में जो भय का संचार हो रहा है उसे बाहर के सिपाही दूर नहीं कर सकते। आत्मा के प्रदेशों में जो कम्पन हो रहा है, भयभीतपना व्याप्त है, आत्मा डर रही है, कांप रही है, अंदर से रो रही है उसे हजार व्यक्ति भी समझायें तो भी वह भय निकल नहीं सकता।

खरगोश जब भयभीत होता है, तो अपने लम्बे कानों से अपनी आँखों को ढांक लेता है और सोचता है मैं निर्भीक हो गया, मुझे भय दिखाई नहीं दे रहा, वह खरगोश ऐसा करता है तो क्या उसका भय चला गया। भय तो खरगोश के अंदर है, उस वस्तु को देखकर छिपने से क्या भय नष्ट होता है। ऐसे ही भय जब अंदर में विद्यमान है तो बाहर में दूर करने से दूर नहीं होता है अंदर से दूर करना पड़ता है। और एक बात ध्यान रखना जो व्यक्ति जितना ज्यादा भयभीत होता है, समझ लेना उतनी ज्यादा बाहर से व्यवस्था कर लेता है, और जो बाहर से व्यवस्था नहीं करता समझ लेना अंदर से उतना ही निर्भीक है। वह सोचता है क्या करेंगे अस्त्र शस्त्र और अंग रक्षक क्या पता रक्षक भी भक्षक बन जाये, इसलिये निर्भीक व्यक्ति बाहर से सुरक्षा की कामना नहीं करता, बाहर से सुरक्षा की भावना नहीं करता, बाहर की दुनियाँ में नहीं दौड़ता, वह अंदर जाता है।

एक वयोवृद्ध अनुभवी पण्डित किसी संत महात्मा के पास चर्चा करने के लिये आये, सोचा महात्मा जी से कुछ बात की जाये, दोनों चर्चा हेतु एक हॉल में मिले चर्चा करते-करते एकाएक भूकम्प के झटके लगे पण्डित जी चर्चा छोड़कर के जल्दी बाहर आये, कहीं छत गिर न जाये नहीं तो मैं मर जाऊँगा, और संत महात्मा वहाँ से हिले

भी नहीं चुपचाप वहीं बैठे रहे। थोड़ी देर बाद जब भूकम्प का झटका रुका तो वे पण्डित काँपते हुए लौटकर के आये और संत से पूछा कि तुम बाहर क्यों नहीं गए यदि छत गिर जाती तो, संत बोले-तुमने सोचा तुम्हारी सुरक्षा बाहर है इसलिये तुम बाहर की ओर दौड़े और मुझे लगा मेरी सुरक्षा अंदर है इसलिए मैं अंदर ही रहा। भय तुम्हें लगा, मुझे भी लगा, किन्तु मैं बाहर नहीं दौड़ा-मैं अपने अंदर चला गया, तुम्हें सुरक्षा अपने बाह्य में दिखाई दे रही है मुझे अपनी सुरक्षा अंदर में दिखाई दे रही है। तुम बाहर जाकर भी कांप रहे थे, भयभीत रहे और मैं तो अपने अंदर जाकर के निर्भीक हो गया था। जब तक तुम्हारे पास बाहर बैठा था तो डर लग रहा था, जब अंदर पहुँच गया तो भय दूर हो गया निर्भीक हो गया। संसार की कौन सी शक्ति है जो मेरा बाल-बांका भी कर सके, तो महानुभाव ! कोई भी जब बाहर की ओर जाता है, बाहर की सुरक्षा करता है, वह अपनी रक्षा मांगता है कहता है रक्षा करो और जो अंदर में चला जाता है वह बाहरी सुरक्षा के लिये हाथ नहीं फैलाता। चौथा लक्षण कायोत्सर्ग का है निर्भीकता और पाँचवी बात-

५. आनंदानुभोग-कायोत्सर्ग में आनंद का अनुभव होना चाहिये। कायोत्सर्ग करते समय आँखों में नमी, चेहरे पर उदासी नहीं अपितु आनंदानुभोग। आनंद का बार-बार उपभोग किया जाता है, भोग तो एक बार होता है और उपभोग बार-बार। जो आत्मा का आनंद है उसका बार-बार सेवन बार-बार अनुभव होना। यह आनंदानुभव होता है तो समझो हमारा कायोत्सर्ग सही और सफल है। ये कायोत्सर्ग की 5 बातें याद रखें तो मुझे लगता है कि आपके कायोत्सर्ग में कुछ सुधार हो सकता है और ये कहें कि कायोत्सर्ग का फल सम्यक्त्वमय प्राप्त हो सकता है।

अब ये पाँच बातें पैदा कैसे होती हैं-इन बातों को पैदा करने के 5 उपाय हैं यदि ये पाँच बातें होंगी तो वे पाँच बातें तुम्हारे पास आ

जायेंगी। यदि ये 5 (उपाय) बातें नहीं होंगी तो वे 5 बातें तुम्हारे पास नहीं आ पायेंगी। तो उनकी चर्चा संक्षेप में कर लें-पहली बात-

तत्त्व बोध-देह आदि से निर्ममत्वता का भाव तब आता है जब जीवन में तत्त्व बोध हो, तत्वबोध के बिना निर्ममत्वता आदि का परिणाम बन ही नहीं सकता। तत्त्व का अर्थ होता है ''स्वभाव'' मेरी आत्मा का स्वभाव क्या है, पर वस्तु का स्वभाव क्या है? पर वस्तु विनाशीक है, अचेतन है वह कभी चेतन नहीं हो सकती, मेरी आत्मा चेतन है वह कभी अचेतन नहीं हो सकती। मेरी आत्मा का स्वभाव तो दर्शन, सुख, वीर्य, चैतन्यादि मय है, अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व ये सब मेरी आत्मा के सामान्य गुण हैं, जिसने आत्मा के स्वभाव को, गुणों को जान लिया है पर वस्तु को भी जान लिया है ऐसा व्यक्ति देह आदि पर वस्तुओं के प्रति निर्ममत्व परिणाम रख सकता है किन्तु जिसके पास तत्त्वबोध नहीं है ऐसा व्यक्ति कभी निर्ममत्व परिणाम नहीं रख सकता। इसलिये दूसरे शब्दों में कहें-

कायोत्सर्ग को सम्यक्दृष्टि अंतर आत्मा ही कर सकता है, बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि कभी कायोत्सर्ग नहीं कर सकता। आचार्यों ने भी कायोत्सर्ग को अंतरंग तप में रखा है अंतरंग तप वे कहलाते हैं जिन्हें अंतरात्मा ही कर सके, बहिरात्मा न कर सके और जो अंतरंग तप है उसे अंतरात्मा परमात्मा जान सकता है, बहिरात्मा को वह तप दिखाई भी नहीं देता।

तो कायोत्सर्ग का पहला लक्षण घटित होता है-तत्त्व बोध के साथ। जीवन में तत्त्वबोध जरूरी है। तत्त्वबोध शास्त्रों के रटने से नहीं होता। तत्त्वबोध होता है अपनी आत्मा के बारे में चिंतन करने से, प्रकृति के समस्त परमाणु को जानकर के, देखकर के, किसी भी निमित्त से तत्त्वबोध हो सकता है। किसी की मृत्यु को देखकर हो

सकता है, आकाश में बादलों को देखा तो तत्त्व बोध हो गया, बिजली चमकती दिखाई दे गयी तो तत्त्व बोध हो गया या वृद्ध, रोगी, वृक्ष, पतझड़ आदि कुछ भी देखा जा सकता है, तत्त्व बोध के लिये संसार में कोई भी नियामक कारण नहीं है। प्रकृति का प्रत्येक प्रदेश परमाणु किसी भी प्राणी के लिये तत्त्वबोध में निमित्त बन सकता है और तत्त्व बोध नहीं है तो देहादि पर पदार्थों से विरक्ति नहीं होती। तीर्थंकर प्रभु भी जन्म से तीन ज्ञान के धारी हैं पर जब तक तत्त्व बोध नहीं होता, तब तक आत्मज्ञान नहीं होता वैराग्य नहीं होता, तब तक दीक्षा नहीं लेते। जो संसार शरीर भोगों के प्रति विरक्त हो गया है, धर्म और धर्मी के प्रति रागान्वित हो गया है, उस व्यक्ति के जीवन में तत्त्व बोध होता है। ऐसे व्यक्ति के जीवन में ही पर पदार्थों से निर्ममत्वता होती है, ऐसे ही व्यक्ति के जीवन में कायोत्सर्ग सार्थक होता है।

दूसरी बात कही थी सहिष्णुता। क्या उपाय है कि जीवन में सहिष्णुता आये सहनशीलता कैसे बढ़े ? इसके लिए दूसरा उपाय है-

शून्य में डूब जाने से-सहनशीलता आती है शून्य में डूब जाने से। हम सभी विकार और विकल्पों से मुक्त होकर शून्य में डूब जायें। कोई योगी आत्मा में डूब गया तो उसमें सहनशीलता आ गयी, उस योगी को चाहे कोई ढोंगी कहे, पाखंडी कहे जो कहे वह कहता रहे वह तो अपने में शून्य हो गया। तो जीवन में सहनशीलता आती है अपने अंदर डूब जाने से, जहाँ कोई विकल्प खटपट नहीं मचाते, जहाँ विकल्प दरवाजे पर आकर दस्तक नहीं देते हैं। जब जीवन शून्य में पहुँच जाता है तब उसे कोई परवाह नहीं होती। मीरा से लोगों ने क्या नहीं कहा, मीरा को किसी बात का बुरा लगा क्या, दिगम्बर साधुओं से कोई क्या नहीं कहता है, क्या-क्या उपसर्ग नहीं करते, साधु सोचता है यदि मैंने इन शब्दों को सुन लिया तो मेरे अंदर ही महाभारत शुरू हो जायेगी इसलिये उन शब्दों को बाहर से ही छोड़ देता है सुनता

ही नहीं। शब्दों का पत्र स्वीकार ही नहीं किया तो वह पत्र ज्यों की त्यों वापस लौट जाता है।

जीवन में सहिष्णुता आती है डूब जाने से, शून्य तक पहुँचने से चाहे स्वाध्याय में डूब जाये, ध्यान में डूब जाये, ज्ञान में डूब जाये, सेवा वैयावृत्ति में डूब जाये किसी भी कार्य में डूब जाने से सहनशीलता आती है। एक व्यक्ति शरीर से खूब काम करता है उनकी सहनशीलता कम हो जाती है क्यों ? उन्हें गुस्सा ज्यादा आता है क्यों? क्योंकि वे कार्य में डूबते नहीं हैं कोई कार्य करने में अन्य पचास कार्यों के विकल्प रखते हैं। इसीलिये एक काम करो डूब करके करो क्रोध नहीं आयेगा, एक काम करते समय चार काम की चिंता करोगे तो क्रोध आयेगा क्योंकि शक्ति एक साथ पाँच में लग रही है, एक काम करने में और चार अन्य कार्य के चिंतन करने में। इसलिये जब किसी काम को करो उसमें डूब जाओ। काम और तुम एक हो जायें, दोनों में भेद न रहे, दोनों में द्वन्दपना न रहे, दोनों में अद्वैतपना आ जाये तब वह काम ही तुम्हारी पूजा बन जायेगा। अगली बात कही-

पूर्णता-जीवन में सहजता कैसे आये जीवन में बनावटीपना न हो, कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़ा होना अलग बात है और कायोत्सर्ग में लीन होना अलग बात है। सहज प्रवृत्ति न तनना है, न बनना है, न झुकना है, न उठना है, न हिलना है, न डुलना है, न आँख बंद करना है फिर क्या करना है? जो जैसा है वह वैसा बना रहे, कायोत्सर्ग में सहजता होनी चाहिये और जीवन में सहजता कब आती है, सहजता आती है पूर्णता के उपरांत, जब व्यक्ति पूर्ण होता है तब सहजता आती है **''अधजल गगरी छलकत जाये भरी गगरिया चुप्पी जाये''**।

जब तक कहीं भी थोड़ा खालीपन होगा तो हिलेगा, जीवन में खालीपन रहेगा तब तक इच्छायें रहेंगी, अभिलाषा रहेगी ये भी मिले,

वो भी मिले, थोड़ी भी कहीं कमी रहेगी मन नहीं मानेगा मन की माँग जारी रहेगी। सहजता तभी प्राप्त होगी जब आप पूर्णता को प्राप्त हो जाओगे। जब आप अपने को पूर्ण समझो अब मुझे कुछ न चाहिये, कोई तुम्हारे पास चाहे धन रखे, चाहे दौलत रखे, चाहे सुंदर स्त्री को लाकर रखे, चाहे आज्ञाकारी नौकर लाकर रख दे, पर तुम कहो कि मुझे कुछ न चाहिये जो मुझे चाहिये वह मेरे पास है, जो मेरे पास है वह मेरा है जो कि कोई ले नहीं सकता। मैं किसी का ले नहीं सकता मैं स्वयं में संतुष्ट हूँ इस पूर्णता का बोध होने पर, इस पूर्णता का अनुभव होने पर जीवन में सहजता आती है। शुद्ध आत्मा की अनुभूति होने पर ही कायोत्सर्ग में आनंद आता है। अगली बात है-

आस्था–निर्भीकता आती है जब अपने अस्तित्व के प्रति पूर्ण आस्था हो। यदि जीवन में अपने अस्तित्व पर आस्था है कि दुनिया की कोई भी शक्ति मेरे अस्तित्व को मिटा नहीं सकती, चाहे अग्नि की ज्वाला में झोंक दिया जाये, चाहे कोल्हू में डाल कर पेल दिया जाये, चाहे इस शरीर के तिल-तिल के बराबर टुकड़े भी कर दिये जायें तब भी इस आत्मा के अस्तित्व को टालने वाली इस संसार में कोई शक्ति नहीं है। मैं कभी मिट नहीं सकता मर नहीं सकता जिसे अपने व्यक्तित्व के प्रति पूर्ण आस्था है, ऐसा व्यक्ति जीवन में कभी भयभीत नहीं होता। जब तक अपने अस्तित्व के प्रति आस्था में कोई कमी होती है, शंका होती है, कोई संदेह होता है तब तक मनुष्य का चित्त दोलायमान होता है झूले की तरह से डोलता रहता है यह भी ठीक है-यह भी ठीक है तब तक निर्भीकपना नहीं आता। इसीलिये वह व्यक्ति बाहर से कुछ अस्त्र-शस्त्र रखता है, शरीर ढकने के लिये वस्त्र रखता है किन्तु जिसे अंदर से-बाहर से कहीं से भय नहीं होता है वही वास्तव में दिगम्बर होता है। दिगम्बर अपनी सुरक्षा के लिये न वस्त्र रखते हैं न अस्त्र-शस्त्र रखते हैं।

जो पूर्ण निर्भीक है उसके अंदर नि:शंकपना है सहजता आ गयी है। जिसके अंदर निर्भीकपना आ जायेगा वह वस्त्रों में लिपटकर नहीं रहेगा। जिसने देख लिया अपनी आत्मा में शक्ति है तो मैं लंगोटी में बंधकर क्यों रहूँ, कटोरा लेकर क्यों रहूँ, मेरी आत्मा में शक्ति है मैं तो यथाजात दिगम्बर रहूँगा। आत्मा का वास्तव में सही अनुभव वही कर सकता है जो एक बार अंदर से निर्ग्रन्थ हो जाये, निर्ग्रंथ का आशय ही यही होता है, न अंदर से कोई गांठ हो और न बाहर से। जो दोनों गांठों से रहित हो जिसे अपने अस्तित्व के ऊपर पूर्ण आस्था हो। आज व्यक्ति को वस्तु के प्रति बड़ी आस्था है मेरी दुकान, मेरा मकान, मेरे परिवारीजन, बाहरी वस्तुओं के प्रति आस्था रख लेते हो किन्तु अपने अस्तित्व के प्रति आस्था को कम कर देते हो। अस्तित्व के प्रति आस्था ही निर्भीकता की जननी है। कायोत्सर्ग का अगला अंतिम लक्षण है-

स्वाभाविक प्रवृत्ति-आनंदानुभोग का कारण क्या है, उसका साधन क्या है, हम भी तो अपने स्वभाविक आनंद को प्राप्त करें तो उसका उपाय यही है स्वाभाविक प्रवृत्ति। अपने स्वभाव में डूबते जाओ प्रकृति के साथ मिलते जाओ तो तुम्हें आनंद का अनुभव होगा। जितना प्रकृति से दूर जाओगे उतने ही तुम आनंद से दूर होते चले जाओगे। जितने स्वभाव की ओर जाओगे उतना ही आनंद आता जायेगा। ये पाँच बातें कायोत्सर्ग की अच्छी तरह से जानना हैं। जैसे पाँच प्रकार का स्वाध्याय किये बिना पूर्णता प्राप्त नहीं होती उसी प्रकार इन पाँच लक्षणों को जाने बिना कायोत्सर्ग की पूर्णता नहीं हो सकती। उन पाँच बातों को उत्पन्न करने के लिये ये 5 साधन समझना भी बहुत आवश्यक है। ये पाँच बातें किनके जीवन में घटित हुयीं देखते हैं-

पहली बात है 'तत्त्व बोध' और इससे आती है निर्ममता। जिसे शब्द का ज्ञान नहीं वह शिवभूति मुनि महाराज उन्हें तत्त्व बोध था देह आदि के प्रति निर्ममत्व बने रहे और अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान की प्राप्ति हो गयी।

दूसरी बात 'सहिष्णुता'-वह आती है शून्यता में डूबने से-पाँच पाण्डव, गज कुमार मुनि, सुकौशल, सुकुमाल, किसी के सिर पर जलती सिगड़ी रखी गयी, किसी को लोहे के आभूषण गर्म करके पहनाये, किसी को मारा जा रहा, काटा जा रहा है किन्तु वे इतने सहनशील रहे, इतनी सहिष्णुता कैसे ? अंदर में डूबने से बाहर का एहसास ही नहीं रहा यदि अहसास हो जाये तो कर्मों से मुक्ति नहीं।

तीसरी बात 'सहजता'-जब पूर्णता का बोध हो जाये-चक्रवर्ती भरत जिन्होंने संसार के भोगों को, वैभव को भोग कर देख लिया कुछ नहीं है सब नष्ट होने वाला है। सहजता में बैठकर बस दीक्षा ले ली और अन्तर्मुहूर्त में केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गयी। महानुभाव ! सहजता से असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा होती है चाहे निर्ममत्व परिणाम, चाहे सहजता ये सब असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा करने वाले हैं, हम कहते हैं कुछ भी न कर सको, व्रत, उपवास, रसत्याग न कर सको तो कोई बात नहीं किन्तु मैं समझता हूँ जो व्यक्ति सहजता में बैठ जाता है वह सबसे बड़ी तपस्या कर लेता है।

चौथी बात 'निर्भीकता'-अपने अस्तित्व पर पूर्ण आस्था से प्राप्त होती है-वे श्रुत सागर मुनिमहाराज जिनका वाद विवाद बलि प्रहलाद नमुचि व बृहस्पति से हुआ था, जिनके गुरु महाराज ने कहा था जाओ 24 घंटे का कायोत्सर्ग करो वे गये कायोत्सर्ग में लीन हो गये वे चारों मंत्री वहाँ पुनः आये किन्तु मुनि महाराज तो निर्भीक थे, उन्होंने उन पर उपसर्ग किया किन्तु वहाँ के यक्ष देव ने उनकी रक्षा की उन चारों मंत्रियों को वहीं कीलित कर दिया। वे उपसर्ग आने पर भी निर्भीक

खड़े रहे क्योंकि उन्हें अपने अस्तित्व पर पूर्ण आस्था थी। अगली बात-

आनंदानुभोग-प्रकृतित्व में लीनता, कोई भी केवली जो सतत आनंद का अनुभव करते हैं, उसकी प्राप्ति अपने स्वभाव में डूबने से होती है। चाहे कोई भी सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनि महाराज चौदहवे गुणस्थान तक पहुँचते हैं वे अपने स्वभाव की ओर जितना-जितना बढ़ते जाते हैं उतने ही ऊँचे-ऊँचे बढ़ते जाते हैं।

महानुभाव ! ये कायोत्सर्ग की पूर्णता के 5 आयाम हैं जिनको अपने अंदर धारण कर ही अपनी आत्मा का उत्कर्ष हो सकता है। आत्मा का आत्मा से संबंध बनाये रखने के लिये किया जाने वाला यह कायोत्सर्ग आपके द्वारा ग्रहण किया जाये जिससे आपका कल्याण हो शुभ हो मंगल हो। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

''प्रेय भाव संसार का मूल है अप्रेय भाव तो उपजीवी है, प्रेयभाव का वृक्ष जैसे ही कट जाता है तो अप्रेयभाव की वह अमर बेल अपने आप सूख जाती है। जिससे नि:संदेह श्रेय भाव अपनी आत्मा में पैदा हो जाता है।''

संसारी प्राणियों का एक स्वभाव बन गया है उसे जो चीज अच्छी लगती है उसके प्रति प्रेय भाव होता है, जो चीज अच्छी नहीं लगती उसके प्रति अप्रेय भाव होता है। प्रेय भाव कल्याण का जनक नहीं है। संसारी प्राणियों ने प्रेय को ही अपना हितकारी समझ लिया है किन्तु प्रेय शब्द अलग है और श्रेय शब्द अलग है। प्रेय का अर्थ होता है मुझे अच्छी लग रही है, मुझे प्रिय लग रही है, प्यार करने के योग्य किन्तु श्रेय का अर्थ होता है कल्याण करने के योग्य। श्रेय वस्तु से प्रेम करना तो अच्छा है किन्तु प्रेय वस्तु से प्रेम करना अच्छा नहीं है। ये जरूरी नहीं है जो तुम्हें प्रेय लग रहा है वह कल्याण कारक हो।

संसार के सब प्राणियों को कुछ न कुछ प्रेय अवश्य लगता है बालक को खिलौना प्रेय लगता है, बड़े बालक को मिठाई, किसी को आभूषण, किसी को अच्छे सुंदर वस्त्र, किसी को कोठी और बंगला, किसी को बैंक बैलेंस सब को कुछ न कुछ प्रेय अवश्य लगता है और

उस प्रेय में कोई अंतर नहीं है। बालक की इच्छा यदि लड्डू खाने की है और तुम्हारी इच्छा नोटों की गड्डी लेने की है तो दोनों इच्छाओं में कोई अंतर नहीं है इच्छा दोनों की बलवती है, बालक लड्डू लेकर संतुष्ट हो गया और तुम्हारी माँग थोड़ी और ज्यादा हो गयी। केवल क्वांटिटी में अंतर आया है क्वालिटी में नहीं और क्वांटिटी में अंतर आने से कोई फर्क नहीं पड़ता है।

कोई व्यक्ति 1 तोला नमक खाये और कोई 1 कुण्टल नमक खाये स्वाद तो खारा ही आयेगा, क्वांटिटी में अंतर आ जाने से उसके गुण धर्म में अंतर नहीं आ जाता। क्वालिटी में अंतर आने से उसके स्वाद में, स्वरूप में, लक्षण में उनके नाम में अंतर आ सकता है किन्तु क्वांटिटी में अंतर उसके लक्षण नाम आदि में भेद नहीं कर सकता। हम प्राय:कर के क्वांटिटी बढ़ाते चले जाते हैं क्वालिटी को चेंज करने का पुरुषार्थ नहीं करते। हम प्रेय वस्तु को छोड़ नहीं सकते। ध्यान रखना कि अप्रेय को छोड़ना सरल है किन्तु प्रेय को छोड़ना उतना ही ज्यादा कठिन है। जो वस्तु स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है उसे छोड़ा जा सकता है, विरक्ति का भाव हो सकता है, समता का भाव भी हो सकता है किन्तु जो वस्तु तुम्हारे स्वास्थ्य के लिये अनुकूल है, तुम्हारे माफिक है उसके प्रति प्रेय भाव न हो यह कठिन ही नहीं असंभव है।

प्रेय भाव के साथ ही प्रेम जगता है अप्रेय के साथ नहीं। सच पूछा जाये तो अप्रेय कुछ चीज है ही नहीं। अप्रेय तो उपजीवी गुण है उसका स्वयं का कोई वजूद ही नहीं है। एक के साथ आपने प्रेम का भाव कर लिया दूसरे का साथ अप्रेय मान लेते हो। अप्रेय है क्या ? तुम तो प्रेम में लीन हो जाते हो अप्रेय का नाम भी तुम्हारी जुबान पर नहीं आता है। राग ही व्यक्ति को अंधा करने वाला है द्वेष ने कभी किसी को अंधा नहीं किया। आप कह सकते हो कि द्वेष अंधा नहीं

करता तो इतने बड़े-बड़े द्वन्द युद्ध कैसे हुये, हीरोशिमा नागासाकी पर बम पटका गया। महाभारत जैसे युद्ध हुए, राम-रावण जैसे युद्ध या और भी कोई भारत-पाकिस्तान में युद्ध क्यों हुये यदि द्वेष वहाँ नहीं तो युद्ध क्यों ? क्यों व्यक्ति एक दूसरे के खून का प्यासा रहता है ? क्यों एक दूसरे के प्राण लेना चाहता है यदि द्वेष भाव नहीं है तो ? वह इसलिये कि उसका किसी के प्रति राग हो गया है जो इसको द्वेष दिखाई दे रहा है, राग ही द्वेष का जनक है।

रागं यत्र पदं दत्ते द्वेषं तत्र निश्चया

जहाँ-जहाँ पर राग अपना स्थान जमाता है वहाँ पर परछाई की तरह से द्वेष आ जाता है, जहाँ पर राग नष्ट हो जाता है वहाँ पर द्वेष टिक ही नहीं पाता है। महानुभाव ! प्रेय से बचना बड़ा कठिन है-देखो संसार में तीन प्रकार के रोग हैं-

1. साध्य 2. कष्ट साध्य 3. असाध्य

साध्य-साध्य रोग के बारे में चिंता करने की कोई बात नहीं छोटे-छोटे रोग चलते रहते हैं उनकी कोई चिंता नहीं करना है वह तो सामान्यत: हैं ये तो मामूली सी चीज है। दूसरा होता है-

कष्टसाध्य-जैसे टी.वी, कैंसर, हार्ट अटेक या कोई भी बीमारी तो डॉक्टर कहता है लापरवाही नहीं करना है ये रोग बड़ा-भयंकर रूप ले सकता है इसे ठीक करना असंभव तो नहीं किन्तु कष्ट साध्य अवश्य है। और एक रोग ऐसा होता है डॉक्टर हाथ खड़े कर देता है-भाई ! अब मेरी दवा काम नहीं करती यदि कहीं से दुआ मिल जाये तो किसी प्रभु परमात्मा महात्मा से दुआ लेकर के आ जाओ तो भले ही चमत्कार हो जाये किन्तु अब मेरी दवा तो फेल है उसे कहते हैं **'असाध्य'** रोग।

तो प्रेय नाम का रोग जो आत्मा में लगा है वह साध्य नहीं है सबके लिये सरल और सहज नहीं है कि बायें हाथ का खेल हो मैं

छोड़ दूँगा सब कुछ सिद्ध हो जायेगा, रोग से मुक्त हो जाऊँगा और ध्यान रखना असाध्य भी नहीं है क्योंकि ये रोग संसार के सभी प्राणियों को होता है जो आज सिद्धालय में विराजमान हैं उनको भी तो ये रोग था। उनको रोग था और वे मुक्त हो गये तो इसे असाध्य भी नहीं कह सकते, फिर, कष्ट साध्य है। जितने हल्के रूप में ले रहे हो उतने हल्के रूप में लेना उचित नहीं है, इसे थोड़ा गंभीरता से लो। रोगी हँसता जा रहा है डॉक्टर कह रहा है ज्यादा हँसो मत वरना कल रोना पड़ेगा, इस रोग का उपचार करो। डायबिटीज बढ़ती जा रही है और मीठा खाये जा रहे हैं डॉक्टर कहेगा कंट्रोल करो। वह कहता है अरे ! जो कुछ होगा सो देखेंगे क्या देखेंगे जब देखने के लिये बचोगे तब ना !

तो कहने का आशय ये है जो रोग कष्ट साध्य होते हैं उन्हें असाध्य मानकर छोड़ा भी नहीं जाता। ये प्रेय नाम का रोग ऐसा है जो न तो सहज साध्य है, न असाध्य है ये तो कष्ट साध्य है। जो इस रोग को ठीक करना चाहे, इस रोग से बचना चाहे तो बच सकता है। ये प्रेय भाव घातक है, अप्रेय भाव कभी घातक नहीं होता। अप्रेय के प्रति कभी भी मन में इतना विकार नहीं आता, विकार प्रेय से आता है। जब यह प्रेय में लीन होता है तब अप्रेय की तो मन में बात ही नहीं आती है। आप कहेंगे शत्रु की बात कई बार मन में आती है, तो शत्रु को तुमने अपना मान लिया है, मेरा शत्रु उसमें भी मेरापन लगाया, उसमें भी ममत्व भाव लगा। मेरा शत्रु-मेरा मित्र जहाँ मेरापन आ गया वहाँ प्रेय भाव आ गया, ऐसा नहीं है कि जिसके प्रति द्वेष है तो वहाँ पर अप्रेयभाव हो जायेगा। नहीं, मैं, मेरा ममत्वबुद्धि जहाँ पर हो वही तो खतरनाक है मेरा-''ममेदं अहमेदं इति लक्षणं संकल्पविकल्प। अहं इदं -मैं हूँ यह संकल्प कहलाता है और ममेदं-यह मेरा है विकल्प कहलाता है।

यदि मेरा और मैं कहीं छूट जायें तो निःसंदेह प्रेय भाव कहीं टिक न पायेगा। इन दोनों पैरों 'अहमेदं-ममेदं'' पर ही प्रेय भाव टिका है। यह बुद्धि ही प्रेय भाव को सहारा देने वाली है, दोनों पैरों से प्रेय भाव चलता है जहाँ एक पैर टूट गया तो लंगड़ाता हुआ थोड़ी दूर तक ममेदं भाव चलेगा और जब वह भी टूट गया तो अब आगे चल नहीं पायेगा। आगे खिसक-खिसक कर कहाँ तक जायेगा, उसका प्राण ही निकल जायेगा। कोई पक्षी दोनों पंखों के टूटने पर कैसे चलेगा, एक पंख भी टूट जाये तो उड़ नहीं सकेगा, उछलने का प्रयास करेगा, ऐसे ही जब तक अहमेदं, ममेदं बुद्धि है तब तक उस प्रेय भाव को जीतना कठिन है।

कुछ लोग कहते हैं श्रेय को प्रेय बनाओ किन्तु हमारे दिगम्बर जैनाचार्य कहते हैं कि उसको भी प्रेय बनाने की आवश्यकता नहीं है श्रेय को श्रेय रहने दो, जो कल्याण का मार्ग है उसे कल्याण का मार्ग ही रहने दो। किन्तु व्यवहार की भाषा में, व्यवहार में उसे प्रेय बनाना पड़ेगा, अभी तुमने संसार के कारणों को प्रेय माना था मिथ्यात्व, अविरति, असंयम, कषाय, प्रमाद, योग इत्यादि को प्रेय माना था अब उसके विपरीत चीजों को प्रेय बनाओ सम्यक् व्रत, संयम, सुबोध, ध्यान, समाधि इत्यादि को प्रेय बनाओ, ये प्रेय भाव व्यवहार मोक्षमार्ग है और निश्चय में पहुँच जाओगे तो पुनः किसी को प्रेय बनाने की आवश्यकता नहीं है। प्रेय और श्रेय का भेद रहता ही नहीं जब आत्मा, आत्मा में लीन हो जाती है।

महानुभाव ! प्रेय भाव का वृक्ष जैसे ही कट जाता है तो अप्रेय भाव की वह अमर बेल अपने आप सूख जाती है। अप्रेय भाव तो उपजीवी है, उसकी बेल को अलग से काटने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए सबसे बड़ा खतरनाक प्रेय भाव है यही संसार का मूल है। क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे प्रेय भाव से मुक्ति मिले। आज थोड़ी चर्चा कर लें प्रेय भाव से बचने की।

आचार्य गुणधर स्वामी जी ने-''कषाय पाहुड़'' में लिखा-''पेज्जदोस''

पेज्जदोष अर्थात् रागद्वेष और पेज्ज को पहले रखा क्योंकि पेज्ज ही मूल है। पेज्जभाव को नष्ट कर दिया तो पुनः सब भाव नष्ट हो गये। पेज्ज भाव का अंतिम रूप होता है-''सूक्ष्म लोभ'' और दशवें गुणस्थान में वह दब गया या मिट गया तो संसार में वह आत्मा भटक नहीं सकती उसे उसी भव से नियम से मोक्ष जाना ही पड़ेगा केवल पेज्ज भाव के चले जाने से। पेज्जभाव मतलब मोहनीय कर्म और वह जैसे ही दशवें गुणस्थान से बढ़ता है क्षीणमोह हो जाता है और मोह के क्षीण होते ही नियम से उसी भव से मोक्ष जायेगा, अन्तर्मुहूर्त में केवली बनेगा, सयोग केवली से अयोग केवली और सिद्ध परमात्मा बन जायेगा।

तो सबसे बड़ा है ''पेज्जभाव''। उस पेज्जभाव को हम अपना शत्रु नहीं समझ पाते, ये सबसे कठिन समस्या है। कई बार हम सोचते हैं चिंतन करते हैं कि अनादिकाल से हम जन्म-मरण कर रहे हैं, क्या हमें कभी देव शास्त्र गुरु का सानिध्य नहीं मिला होगा, क्या हमने कभी धर्म के शब्द नहीं सुने होंगे, हम अपनी आत्मा का कल्याण क्यों नहीं कर सके? ऐसा क्या कारण रहा। समझ में यही आ रहा है जो हमारे अहित का कारण था, उसे हमने प्रेय मानकर अपना लिया, उसे छोड़ना नहीं चाहा। लगा तो ये था कि उससे मेरा कल्याण हो जायेगा किन्तु बाद में पता चला ये तो बहुत खतरनाक है, घातक है। महानुभाव ! इसीलिये सबसे ज्यादा जीवन में घातक यदि है तो आचार्यों ने लिखा ''मोहनीयकर्म'' मोहनीय कर्म अपने आप में कह रहा है-जो मोहित करे, रागान्वित करे, अपने रंग में रंग दे, इसलिये उस रंग को छुटाने का एक ही उपाय है-

अमूर्त से प्रीति-अभी तक आप का प्रेय भाव जो भी है केवल मूर्त के प्रति है अमूर्त के प्रति प्रेयभाव तुम कभी बना ही नहीं सके और जो मूर्तमान है वह तुम हो नहीं और तुम कभी हो नहीं सकते वह मूर्त तुम्हारा कभी हो नहीं सकता। बिना मूर्तमान के तुम्हारा जीवन ही नहीं चलता। इसीलिये आचार्य महाराज कह रहे हैं तुम्हें प्रेम भी करना है तो अमूर्त से करो। अमूर्त की ओर बढ़ोगे तो जो प्रेम मूर्तिमान की ओर है वह कम हो जायेगा। क्या विचित्र बात कह रहे थे अभी तो कह रहे थे प्रेम करना ही नहीं प्रेम खतरनाक है अब कहे रहें हैं अमूर्त से करो। हाँ इसीलिये कह रहे हैं क्योंकि पैर में जो काँटा लगा है उस काँटे को निकालने के लिये सबल काँटा चाहिये, काँटा-काँटे से निकलता है तलवार से नहीं निकलता, सुई से काँटा निकालोगे तो निकल जायेगा, फावड़े से निकालोगे तो तुम्हीं निकल जाओगे, काँटा न निकलेगा। यदि किसी बालक ने विष पी लिया हो तो विष, विष से ही मारा जाता है ऐसी औषधि देनी पड़ेगी जो खतरनाक है सामान्य व्यक्ति ऐसी औषधि को पी ले तो मर जाये।

गर्मी को गर्मी से मारा जाता है, आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं दुष्ट के साथ दुष्ट व्यवहार करो, दुष्ट की भाषा बोलो, नीतिकार भी कहते हैं-''शठं शाठ्यं समाचरेत्'' शठ के साथ प्रेम का नहीं शठता का व्यवहार करो तभी ठीक है। तो कहने का आशय यह है यदि मूर्तिमान् से राग हटाना चाहते हो तो अमूर्त के प्रति समर्पित हो जाओ। जो अमूर्त के प्रति समर्पित हो जाता है, उससे प्रीति कर लेता है तो मूर्त के प्रति जो आकर्षण है वह टूट जाता है।

यह बात सत्य है बड़े का आकर्षण छोटे के प्रति विकर्षण पैदा करने वाला होता है। यदि लोहे की ऑलपिन यहाँ रखी है छोटी चुम्बक ने उसे अपनी ओर खींचा, यदि उससे भी बड़ी चुम्बक आ जाये तो वह बड़ी चुम्बक उस छोटी चुम्बक को और लोहे दोनों को

अपनी ओर खींच लेती है। तो बड़े में ऐसा आकर्षण होता है जो छोटे को स्वयं ही खींच ले अपनी ओर। यदि तुम्हारे सामने दो डिब्बी रखी हैं, एक चाँदी की एक स्टील की, कोई तुमसे कहे इनमें से जो चाहिये सो ले लो तो तुम्हारा मन क्या चाहेगा? चाँदी की। यदि कोई व्यक्ति सामने सोने की डिब्बी लाकर के रख दे तो चांदी-सोने में से क्या लोगे? सोचोगे एक सोने की डिब्बी में ऐसी चांदी की तो कई डिब्बी बन जायेंगी, तो तुम सोने की डिब्बी ले लोगे। यदि कहीं एक गंदी सी थैली में हीरे रखे हों और दूसरी ओर सोने की डिब्बी हो तो आप क्या लोगे? तो कहोगे हीरे की पोटली ले लो उससे ऐसी सोने की डिब्बी तो हजारों बन जायेगी।

तो उस चाँदी की डिब्बी ने स्टील की डिब्बी के प्रति विकर्षण पैदा किया और जब सोने की डिब्बी आ गयी तो उसकी इतनी सामर्थ्य कि उसने चाँदी की डिब्बी आपके हाथ से गिरा दी और जब रत्नों की पोटली सामने आयी तो उसमें इतना आकर्षण, इतनी सामर्थ्य कि सोने के प्रति भी आपका विकर्षण पैदा हो गया। तो जब मूल्यवान् वस्तु सामने आ जाती है तो अल्प मूल्य की वस्तु स्वतः ही छूट जाती है। यदि प्रेय के प्रति आपको अपना आकर्षण कम करना है, विकर्षण पैदा करना है तो उसका सबसे अच्छा सदुपाय यही है कि उससे ज्यादा मूल्यवान् वस्तु देख लो।

तुम्हें नगर का 'दादा' कोई परेशान कर रहा है तुमने उसके खूब हाथ जोड़े, पाँव पड़े सब कुछ किया किन्तु वह फिर भी तुमसे खफा है और परेशान करता है। तुमने लोगों को कहा भईया ! यह मुझे बहुत परेशान करता है, पूरे नगर के भले आदमियों ने उसे समझाया, किन्तु वह नहीं माना। वह व्यक्ति गया महानगर के दादा के पास जिसकी जेब में ऐसे पचासों दादा खेलते रहते हैं और कहा-मैं तो आत्महत्या करना चाहता हूँ, तुम्हारी शरण में आया हूँ। पहली बात-शरण में जाना

बहुत कठिन है हर एक व्यक्ति शरण में जा नहीं सकता। शरण में वही जाता है जिसका कोई सहारा नहीं होता, सब तरफ से बेसहारा हो जाता है तब कहता है शरण चाहिये।

तो वह कहता है मैं तेरी शरण में आ गया, उसका फोटो उसके साथ अखबार में आ गया, जब फोटो उस दादा ने देखा तो सोचा इसकी पहुँच अब उस तक हो गयी है, उससे पूछा क्या बात है? वह बोला कुछ नहीं उसने मुझे बुलाया था तो मैं गया। अरे ! तेरी इतनी पहुँच कि उसने तुझे बुलाया। हाँ हमारे कुछ ऐसे ही आपसी संबंध हैं। तुमने पहले क्यों नहीं कहा ? मौका ही नहीं पड़ा कुछ कहने का। अरे वह तो मेरा मित्र है। तो कहने का आशय यह है कि बड़े के प्रति आकर्षण हुआ तो छोटे की हवा तो पहले ही खिसक गयी। यदि छोटे को जीतना है तो बड़े से संबंध स्थापित कर लो। कामदेव ने रति से कहा संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है कि जिस पर मेरा राज्य न हो। रति ने कहा अच्छा ! ऐसी बात है चलो घूमने चलते हैं और वे रति कामदेव घूमते हुये किसी मुनि महाराज के पास पहुँचे, वे महाराज ध्यान में बैठे थे। रति ने पूछा-

कोऽयं नाथ ! जिनो भवेत् तव वशी उँ हूँ प्रतापी प्रिये,
उँ हूँ तर्हि विमुंच कातरमते शौर्यं विलेपं क्रियां।
मोहोऽनेन विनिर्जिता प्रभुरसौ तत्किंकराः केवयं,
इत्थं यो रतिकामजल्पविषयः पार्श्व प्रभु पातु नः॥

ये कौन हैं ? क्या ये आपके वश में हैं ?

वह रति कहती है हे नाथ यह कौन हैं-'जिनो' जिनेन्द्र भगवान्, भवेत् तव वसि-क्या ये आपके वश में हैं, उँ-हूँ ये मेरे वश में नहीं हैं। बोली क्यों? कामदेव बोला ये तो जिनेन्द्र देव हैं इन्होंने तो मेरे मालिक मोह को पछाड़ दिया चूर-चूर कर दिया, मैं तो मोह का एक अधीनस्थ नौकर हूँ मेरी सत्ता क्या हो सकती है, मेरे बाप को पछाड़ दिया अब मैं कहाँ लड़ूँगा? तो कहने का आशय यह है कि जिन

जिनेन्द्र भगवान् ने मोह को नष्ट कर दिया तो कामदेव कहाँ रहेंगे, ऐसे ही जब बड़े से सम्पर्क हो जाता है तो छोटा अपने आप चूहा बन जाता है।

मूर्तमान पदार्थों के प्रति तुम्हारे मन में जो प्रेम का भाव है उसे निकालने का यदि कोई साधन है तो वह है अमूर्त के प्रति प्रेम, अमूर्त के प्रति लगाव। क्योंकि मूर्तमान कई बार, बार-बार अपने रूप बदलकर आयेगा और तुम भ्रमित हो जाओगे, मूर्तमान ऐसा संसार में कोई पदार्थ नहीं है जिसे पाकर के तुम तृप्त हो जाओ और दूसरे मूर्तमान पदार्थ को न देखो, ऐसा नहीं हो सकता। मूर्तमान पदार्थों में व्यक्ति कितना भी संतुष्ट हो जाये किन्तु उसके मन में भाव आ ही जायेगा देख तो लूँ और अमूर्तमान के प्रति जिसकी लगन लग गयी उसके आगे समस्त मूर्तमान पदार्थ निस्सार हैं।

एक छोटा सा दृष्टांत है उसका भाव सही पकड़ना अन्यथा नहीं लेना-एक युवा बालक कॉलेज जाते समय किसी लड़की को बार-बार देखता था। एक दिन उस लड़के ने लड़की को रास्ते में रोक लिया-और कहता है मैं तेरे रूप पर अपने प्राण न्यौछावर करता हूँ यदि तू मुझे जिंदा देखना चाहती है तो मुझे स्वीकार कर ले मैं तुझे दिल से, मन से, आत्मा से प्यार करता हूँ तेरे बिना मैं जी नहीं सकता। लड़की ने कहा-तुम मुझसे प्यार क्यों करते हो? वह बोला-मेरी दृष्टि में इस संसार में तुमसे सुंदर स्त्री कोई नहीं है। लड़की थोड़ी समझदार रही होगी वह बोली यदि तुमने मेरी सुंदरता को देखकर प्यार किया है तो तुमने थोड़ी गलती की। बोला नहीं मैंने हजारों लड़कियाँ देखीं किन्तु मेरा मन और कहीं नहीं रीझा मैं तेरे लिये पागल हो गया तू कह दे मर जा तो मैं मर जाऊँगा किन्तु मैंने तो अपना सब कुछ तेरे लिये समर्पण कर दिया।

लड़की ने कहा ठीक कह रहे हो किन्तु क्या तुम समर्पण की परिभाषा जानते हो ? बोला-क्यों नहीं, तेरे प्रति मेरा अंधा समर्पण है तेरे लिये मैं सब कुछ समर्पित कर सकता हूँ नहीं तो परीक्षा लेकर देख ले तेरे लिये अपना घात भी कर सकता हूँ। वह बोली ठीक है-किसी और के प्रति राग, प्यार लगाव तो नहीं है। बोला नहीं। लड़की बोली मैं तुमसे फिर कहती हूँ कि तुमने गलती की। एक बार काश तुमने मेरी छोटी बहिन को देख लिया होता तो तुम ऐसी गलती कभी न करते। देखो वह पीछे से आ रही है जैसे ही वह लड़का पीछे मुड़ा लड़की ने उसके गाल पर एक तमाचा मारा बदतमीज इसे कहते हैं समर्पण? यदि तेरा समर्पण मेरे प्रति था तो तेरी निगाह पीछे क्यों गयी?

कहने का आशय ये है यदि तुम्हारा समर्पण एक बार अमूर्त के प्रति हो जायेगा तो तुम्हारा मन मूर्तमान में नहीं जायेगा, किन्तु मूर्तमान के प्रति समर्पण होता है तो ये निगाह मानती नहीं एक को देखकर के चार को देखती है, चार को देखकर के हजार को देखती है। कोई व्यक्ति आज तक मूर्तमान को देखकर संतुष्ट नहीं हो सका।

मीरा जब श्री कृष्ण के प्रति समर्पित हुयी तो संसार के समस्त प्राणी उसके लिये मुर्दे के समान, कचरे के सामान हो गये। मूर्तमान कचरा तभी हो सकता है जब अमूर्त के प्रति गहन समर्पण हो। अमूर्त के प्रति गहन समर्पण हो सकता है किन्तु मूर्तमान के प्रति गहन समर्पण नहीं हो सकता, क्योंकि मूर्तमान वस्तु/व्यक्ति की पर्याय बदलती रहती है। अमूर्तमान हमेशा एक रूप में दिखायी देता है। सिद्ध परमेष्ठी आज भी वैसे ही हैं, कल भी वैसे ही थे, आगे भी वैसे ही रहेंगे। यदि अमूर्त के प्रति समर्पण कर दिया तो तुम्हारे समर्पण में कभी विकार और विकल्प आने वाला नहीं है।

यदुवंशी राजकुमार अरिष्ट नेमि किसी कारण वश अपनी शादी की स्वीकृति दे देते हैं और शादी की तैयारी हुयी। नारायण श्री कृष्ण भी बड़े उत्साह के साथ बारात में आये, ''छप्पन कोड़ि जुडे यदुवंशी राजे और महाराजे''बारात धूमधाम से जा रही है नेमिनाथ दूल्हा बनकर जा रहे हैं और राजमति का नाम सुनते ही उसका चित्रपट देखते ही उनके प्रति आकर्षण पैदा हुआ। आकर्षण पैदा क्यों न हो, जब तुम किसी व्यक्ति से दो मिनट चर्चा कर लेते हो, वह तुम्हें देखकर मुस्कुरा जाये, एक बार प्यार भरी निगाह से देख ले तो तुम उसके हो जाते हो और नेमिनाथ भगवान् जिनकी नौभव से प्रीत चली आ रही थी उनका राजुल के प्रति आकर्षण हो गया।

बारात पहुँची जूनागढ़ में बन्दनवार बंधे हैं तोरण द्वार सजे हैं बारात के स्वागत की सब तैयारी है और जैसे ही वहाँ देखा बाड़े में पशु बंधे हैं उनकी करुण पुकार देखी, करुण क्रन्दन, आर्त स्वर जब अरिष्ट नेमि के कानों में पड़ा उन्होंने सारथी से कहा-रथ रोको ! सारथी बोला-स्वामिन् ! क्या सेवा है ? यही संकेत है कि जाइये और बताईये ये पशु आर्त्त नाद क्यों कर रहे हैं, ये करुण स्वर में विलाप क्यों कर रहे हैं, ये पशु क्यों बंदी बनाये गये हैं ? सारथी जाता है पूछता है ये पशु बंदी क्यों बनाये गये हैं ? वहाँ एक व्यक्ति पूर्व में सीखे गये उत्तर के रूप में कहता है जो राजा अरिष्ट नेमि की बारात में आये हैं उनके भोजन में माँस की व्यवस्था की गयी है, यह शब्द सुनते ही नेमिनाथ हतप्रभ से रह गये मेरी बारात में आये हुये राजाओं के लिये इन पशुओं का भोजन बनाया जायेगा, मेरे सुख के लिये इन सब के प्राण लिये जायेंगे, नहीं ! मुझे ऐसी शादी नहीं रचाना है।

बस एक मन में झटका लगा और पुनः डूब गये चिंतन में अरे ! इतने समय से भोग भोगता रहा इतने भवों में भोग भोगे, तृप्ति नहीं हुयी इससे क्या तृप्ति होगी सब निस्सार है, बेकार है और सीधा ध्यान

किया मुक्ति सुंदरी के लिये। मेरा स्वभाव तो सिद्धत्व जैसा है अरे मैं इस संसार में क्यों रंजायमान हो रहा हूँ और तोरण से रथ को क्या मोड़ा, जीवन का पथ ही मोड़ लिया। राजुल से नाता क्या तोड़ा शिव रमणी से नाता जोड़ लिया।

महानुभाव ! उन्होंने संसार से मुख मोड़ लिया किन्तु कब ? जब शिव सुंदरी की याद आ गयी तब। अन्यथा राजुल की नौ भव की प्रीति ऐसे थोड़े ही छूटती। राजुल से भी बड़ी महान कन्या उन्हें दिखायी दे गयी मुक्ति कन्या। इसलिये राजुल के प्रति उनका विकर्षण पैदा हो गया, बड़ी चीज को दिखाये बिना छोटी चीज के प्रति विकर्षण पैदा किया ही नहीं जा सकता। बंदर कोई चीज ले गया उससे लेने के लिये कोई दूसरी चीज दिखानी पड़ती है।

तो आप सुन रहे थे कि प्रेय भाव ही हमारे जीवन में सबसे ज्यादा खतरनाक है और ये सहज साध्य नहीं है, कष्ट साध्य अवश्य है किन्तु असाध्य नहीं है। उस प्रेय भाव पर विजय प्राप्त करनी है, उस प्रेय भाव को जीतने का प्रयास करना है। जिस व्यक्ति ने प्रेय भाव को जीत लिया वही व्यक्ति नि:संदेह श्रेय भाव को अपनी आत्मा में पैदा कर सकता है अन्यथा असंभव है। किन्तु पहले ये समझें कि जो तुमने उपलब्ध किया है जिसके प्रति प्रेय भाव है तुम्हारी दृष्टि में उसका मूल्य न्यूनतम हो जाये, जो तुमने प्राप्त नहीं किया है उसका मूल्य बहुमूल्य हो जाये तब तुम इसे छोड़कर उसे पाने का पुरुषार्थ करोगे और बहुत मूल्यवान् वस्तु जिसको आँका नहीं जा सकता वह है अमूर्त पदार्थ हमारी आत्मा की शुद्ध दशा, आत्मा की सहज दशा, हमारी आत्मा का वैभव उसको ही प्राप्त करने का सम्यक् पुरुषार्थ करना है, यही मेरा आप सभी को मंगल आशीर्वाद है।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

''हम अधूरे नहीं, हम अभागे नहीं बात बस इतनी है कि हम अब तक जागे नहीं। क्योंकि जागरण ही दुःख को मिटाने का उपाय व खुद को पाने का साधन है।''

जीवन में सबसे बड़ा सवाल यही है कि हमारे जीवन में दुःख है। भजन की कुछ पंक्तियाँ सुनते हैं आप-

संसार में सुख सर्वदा नहीं काहू को दीखे।
कोई तन दुःखी कोई मन दुःखी, कोई धन दुःखी दीखे॥

संसार में सुख खोजना बड़ा कठिन है। संसार का और दुःख का ऐसा साथ है जैसे चोली-दामन का हो। संसार और दुःख ऐसा समझें जैसे सिक्के के दो पहलू, संसार और दुःख ऐसा समझें जैसे नदी का पानी जो दो किनारों के बीच बहता है। यदि संसार है तो दुःख रहेगा ही रहेगा और जिस दिन संसार न रहेगा उस दिन दुःख भी न रहेगा और दुःख न रहेगा तो संसार भी नहीं रहेगा, एक के बिना दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया जा सकता, इन दोनों का नियामक संबंध है। जैसे चन्द्रमा और चाँदनी का संबंध है जब-जब चन्द्रमा आकाश में उगेगा तब-तब उसकी चाँदनी होगी, ऐसा कभी नहीं होगा

की कभी-कभी चन्द्रमा अकेला आ जाये और अपनी चाँदनी को घर छोड़ आये, ऐसा नहीं हो सकता कि सूर्य कभी-कभी जल्दी-जल्दी में प्रकाश को घर छोड़ आये। तुम्हारे साथ तो ऐसा हो सकता है कि तुम अपनी पत्नी को छोड़ जाओ तू श्रृंगार करती रह मैं चलता हूँ किन्तु ऐसा यहाँ नहीं। दु:ख मिटा तो संसार मिटा, संसार मिटा तो दु:ख मिटा दोनों का साथ अभिन्न है।

महानुभाव ! दु:ख है क्या चीज? क्या कोई जानता है दु:ख किसे कहते हैं? कोई कहेगा दु:ख-दु:ख है उसे क्या जानना, उसे अनादिकाल से भोगते आ रहे हैं। देखो ! कोई रो रहा है कोई बिलख रहा है तो क्या रोने-धोने बिलखने का नाम दु:ख है और जो नहीं रो रहा है वह दु:खी नहीं है क्या? वृक्षों के पास आँखें नहीं हैं आँसू बहाने के लिये तो क्या वे दु:खी नहीं होते होंगे ? फिर दु:ख क्या चीज है ? आँसू बहाने का नाम दु:ख है क्या ? यदि कोई व्यक्ति भगवान् के सामने पूजा कर रहा है, भक्ति कर रहा है, स्तुति पढ़ रहा है उसके यदि आँसू आ गये तो क्या वह दु:खी है यदि आँसू बहाने का नाम दु:ख है तो कई बार व्यक्ति की आँखों से आँसू झरते हैं फिर भी वह हँसता है। तो दु:ख क्या है? ऐसी कोई दु:ख की परिभाषा कि जिसे कोई सिद्धान्तवादी, तर्कवादी काट न सके। तो पहले हम दु:ख का व्युत्पत्ति अर्थ देखें-

दु:ख शब्द में दो अक्षर हैं दु: + ख - दु:-एक प्रत्यय है। प्रत्यय वे कहलाते हैं जो अलग से जोड़े जाते हैं और मूल शब्द वे कहलाते हैं जो प्राकृतिक होते हैं जिसमें कुछ जोड़ा-तोड़ा नहीं जाता, मूल रहते हैं उन्हें धातु शब्द कहते हैं। दु: प्रत्यय की तरह से है जैसे-जन में 'दु' लगा दिया तो दुर्जन, दुर्जन का अर्थ क्या हुआ-दुष्ट व्यक्ति। भाव में 'दु' लगा दिया तो हुआ दुर्भाव खोटा भाव, मार्ग में 'दु' लगा दिया तो दुर्मार्ग। तो दु: शब्द खोटा बुरा, मिथ्या, इत्यादि अर्थों में प्रयोग होता है

और 'ख' शब्द का अर्थ क्या है-साहित्यकार लोग जानते होंगे 'ख' अक्षर का अर्थ है 'आकाश'। खग -ख-आकाश ग-गमन करना=आकाश में गमन करने वाले खग (पक्षी) कहलाते हैं या विद्याधर।

ख पुष्प मथवा संगम-'ख पुष्प' मतलब आकाश के फूल तो 'ख' अर्थात् आकाश-दु:ख किसे कहते हैं-

''अपने चित्त के आकाश पर 'ख'-अर्थात् रिक्त स्थान अपने चित्त के रिक्त स्थान में दु:-अर्थात् बुराई, खोटापन आ जाना यही दु:ख है।''

जिस-जिस के चित्त पर बुराई लगी है, तीनों योगों में बुराई आ गयी चाहे तन में बुराई हो, चाहे वचन में बुराई हो, चाहे मन में बुराई हो जहाँ-जहाँ बुराई है, वहाँ-वहाँ दु:ख है। जहाँ-जहाँ बुराई नष्ट हो जायेगी वहाँ दु:ख नहीं रहेगा। महानुभाव ! दु:ख और बुराई एक ही चीज है। पूज्य आ. श्री उमास्वामी जी महाराज के शब्दों में कहें तो उन्होंने कहा-ये जो पाँच पाप हैं हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ये पाँच पाप ही **'दु:ख मेव वा'**-ये पाँच पाप ही दु:ख हैं। ये पाप जब बंधते हैं तो कर्म कहलाते हैं और जब उदय में आते हैं तो दु:ख कहलाते हैं।

जो हमारे चित्त के आकाश पर स्वच्छंद विचरण कर रहे हैं ऐसी बुराई, ऐसा खोटा कार्य, ऐसा खोटा विचार, ऐसे खोटे वचन दु:ख कहलाते हैं। तुम दु:ख तब कहते हो जब उदय में आते हैं और आचार्य महोदय कह रहे हैं दु:ख आपके द्वारा आमंत्रित किये जाते हैं, सम्मान के साथ घर में बिठाये जाते हैं चाहे वचनों के द्वारा बुलाओ, चाहे मन के द्वारा बुलाओ, चाहे शरीर की क्रिया द्वारा बुलाओ, चाहे चेतना की परिणति द्वारा बुलाओ, चाहे धन के द्वारा ऐसा कोई कृत्य करो जिससे दु:ख होता है, वे सब बुराईयाँ दु:ख कहलाती हैं, वे सभी खोटे कार्य और विचार दु:ख कहलाते हैं। जो हमारे स्वभाव से प्रतिकूल हैं वह

सभी दु:ख हैं। चाहे आत्मा शरीर का एक मान लेना वह भी दु:ख है, चाहे भ्रम है वह भी दु:ख है, शंका भी दु:ख है, संसार में जो भी बुराई है वह सब दु:ख ही दु:ख है और अच्छाईयाँ सुख ही सुख हैं।

महानुभाव ! दु:ख वास्तव में है क्या? इस संसार में किसी को दु:ख महसूस होता है किसी को महसूस नहीं होता। कोई व्यक्ति धूप में बैठकर के आनंद का अनुभव कर रहा है कोई कष्ट का अनुभव कर रहा है, किसी को छाया में अच्छा लग रहा है। किसी को पानी बरसना बुरा लग रहा है, किसी को पानी बरसना अच्छा लग रहा है किसी को उसी से दु:ख हो रहा है, किसी को ठंडी हवा अच्छी लग रही है किसी को बुरी-जो वस्तु किसी को आनंद उत्साह और प्रिय लग रही है वही वस्तु दूसरे के लिये कष्ट, वेदना, पीड़ा व दु:ख को देने वाली होती है, तो दु:ख आखिर में है क्या? तो आचार्यों ने कहा-''कल्पना'' दु:ख है, कामना दु:ख है, विपरीत धारणा दु:ख है, अज्ञानता दु:ख है, भ्रम आदि ये दु:ख के पर्यायवाची नाम हैं दु:ख के मूल कारण हैं। ये चीज जहाँ पर रहेंगी वहाँ पर दु:ख रहेगा।

तुम्हारी मिथ्या धारणा तुम्हारा दु:ख है, तुम्हारा अज्ञान तुम्हारा दु:ख है, तुम्हारी भ्रम बुद्धि तुम्हारा दु:ख है, तुम्हारे अंदर का अंधकार तुम्हारा दु:ख है, और तुम उसे दूर करने के लिये बाहर के दीये जलाते हो। बाहर के दीये कभी अंदर में प्रकाश नहीं फैलाते हैं इसीलिये आज आवश्यकता है बाहर के 'दीये' जिसने भी दिये उसी को दे दो, जब तक अंदर के दीये नहीं जले, जब तक अंदर के दीये आपने कहीं से नहीं लिये तब तक अंदर में अंधेरा ही अंधेरा होगा और दरअसल में बात ये है कि मानव के जीवन में दु:ख होता बहुत कम है किन्तु मान बहुत ज्यादा लेता है। यदि वर्तमान में दु:ख कम होता है तो वह व्यक्ति अतीत के दु:खों को याद करता रहेगा, हमने जीवन में कैसे-कैसे दु:ख भोगे हैं, वे भोगे थे दस साल पहले आँसू आज बहा

रहा है, वर्तमान के दु:ख कम पड़ जायें तो अतीत के दु:खों को पीठ पर बांधकर चलेगा।

और अतीत के दु:ख से भी पूर्ति नहीं होती है तो भविष्य के दु:ख को पैदा कर लेता है उस सेठ की तरह से कि मेरे पास तो सम्पत्ति पर्याप्त है दस पीढ़ी तक काम चल जायेगा किन्तु ग्यारहवीं पीढ़ी क्या खायेगी और सिर पकड़ करके खड़ा है। ये दु:ख काल्पनिक दु:ख है। दूसरा दुख होता है ओढ़ा हुआ दु:ख। जो दु:ख तुमने ओढ़ा है तो तुम्हें ही छोड़ना पड़ेगा। ओढ़े हुये दु:ख को कोई और कैसे दूर करे ? हाँ वह तरकीब बता सकता है तुमने जिस कम्बल को ओढ़ा था वह इसलिये ताकि सर्दी न लगे किन्तु कम्बल ओढ़कर थर-थर काँपने लगा। डॉक्टर ने कहा इसे दूर कर वरना निमोनिया हो जायेगा, तुम सोच रहे हो सर्दी में कम्बल ओढ़कर निमोनिया कैसे होगा? हाँ यदि कम्बल गीला है तो निमोनिया हो जायेगा। हमारे साथ भी ऐसा होता है हम दु:ख से दु:खी होते हैं और जिसे ओढ़ लेते हैं उससे दु:ख और बढ़ जाता है वर्तमान के दु:ख प्राय:कर के कम होते हैं भूतकाल के दु:खों को खींच लेते हैं भविष्य की कल्पनाओं के दु:खों को खींच लेते हैं। वर्तमान के दु:खों की मिथ्याधारणा से और दु:खों को बटोरते जाते हैं और दु:खों का संग्रह करने में बड़ा सुकून सा मिलता है।

एक रोग पाल ले नादान जिंदगी के वास्ते।
सिर्फ सेहत के सहारे जिंदगी कटती नहीं॥

व्यक्ति यदि सुखी है, आनंदित है अब क्या करे कुछ कहने के लिये मकसद चाहिये। कोई पूछता है तुम्हारा सब अच्छा चल रहा है उससे क्या कहें हाँ अच्छा चल रहा है? नहीं ऐसे तो टोक लग जायेगी, तो कहेगा क्या खाक अच्छा चल रहा है चार दिन से दुकान नहीं चल रही कोई ग्राहक नहीं आया है, सिर दर्द हो रहा है, पेट दर्द हो रहा है भले ही कुछ नहीं हो रहा है पर दो-चार बात तो कहनी पड़ेंगी-क्योंकि

सामने वाला दु:खी है। उससे कह दिया कि मैं तो बहुत सुखी हूँ तो उसका दु:ख और बढ़ जायेगा, इसीलिये वह ध्यान रखता है कि सामने वाले का दु:ख बढ़ न जाये।

संसार में प्राय:कर व्यक्ति पाँच प्रकार के दु:खी मिलते हैं मेरी दृष्टि में से आप कौन से प्रकार के दु:खी हो तो बता देना आपको उसी प्रकार का इंजेक्शन लगाया जायेगा, वैसी ही दवाई दी जायेगी, दवाई भले ही एक है पर उसकी मात्रा कम ज्यादा करनी पड़ती है। यदि बालक बीमार है तो मात्रा कम है, वृद्ध बीमार है तो मात्रा थोड़ी बढ़ जायेगी और यदि किशोर बीमार है तो मात्रा थोड़ी और बढ़ जायेगी और युवा बीमार है तो फिर पूरी डोज दी जायेगी। बीमारी की कौन सी स्टेज है उसी प्रकार से औषधि दी जाती है। तो महानुभाव ! उन पाँच प्रकार के दु:खों में पहला है-

१. अपने पाप कर्म के उदय से दु:खी-पहले प्रकार के व्यक्ति वो हैं जिनके जीवन में पाप कर्म का उदय चल रहा है। पाप कर्म के उदय से निर्धन हुये, पाप कर्म के उदय से विकलांग हुये, पाप कर्म के उदय से रोगी हुये, पाप कर्म के उदय से तिरस्कार को प्राप्त हुये हैं, खुद के ही पाप कर्म का उदय चल रहा है ऐसा व्यक्ति पहले प्रकार का दु:खी है। ऐसे व्यक्ति संसार में बहुत हैं जिन्हें संसार में किसी और के बारे में जानने की फुरसत नहीं है, दूसरे के लिये कुछ करने की फुरसत नहीं है। दूसरे से साता लेने की फुरसत नहीं है। बस जैसा भी है अपने में रहता है, जो हमारे भाग्य में बंधा है हम वही भोगेंगे। दूसरी प्रकार के दु:खी व्यक्ति वे हैं-

२. जो सामने वाले के सुख से दु:खी हैं-दूसरे व्यक्ति दो कदम और आगे बढ़कर होते हैं उनके पास थोड़ा सा समय और निकल आया वे कहते हैं अपना दु:ख तो बाद में देखेंगे मैं मकान बना

नहीं पाया 30 साल मुझे रहते-रहते हो गये। ये कल आया और दो मंजिल का मकान खड़ा कर दिया, दो गाड़ियाँ लाकर खड़ी कर दीं ये मुझे दु:खी करना चाहता है, इसने तो मुझे दु:खी कर रखा है। सामने वाले की खुशी, सामने वाले का चैन इसके दु:ख का कारण बन जाता है। सामने वाले का लड़का पास हो गया अपना फेल हो गया तो दु:खी हो गये। सामने वाले के घर में और कोई अनुकूलता हो गयी तो दु:खी हो गये। उसे अपने घर के अंधेरे से दु:ख नहीं है, सामने वाले के घर की रोशनी से ज्यादा दु:ख है।

यदि इसके घर में गुप्प अंधेरा हो जाये तो मुझे अपने घर का अंधेरा अखरेगा नहीं। अपने घर के अंधेरे को सुप्त नहीं करना चाहता सामने वाले का उजाला नष्ट करना चाहता है। इस प्रकार के व्यक्तियों के सुखी होने के चाँस न के बराबर हैं पहले प्रकार के दु:खी, जीवन में सुखी हो सकते हैं उनके दु:खों को मिटाने की दवाई है औषधि है किन्तु जो व्यक्ति जिससे रोग बढ़े उसही वस्तु का सेवन करे तो वैद्य जी कहेंगे इस रोग का कोई निदान नहीं है। तो दूसरे प्रकार के दु:खी सुखी नहीं हो सकते। अब अगले प्रकार के व्यक्ति जो अपने दु:ख से दु:खी नहीं हैं, दूसरों के सुख से दु:खी नहीं हैं ये तो-

३. दूसरों के दुख से दु:खी हैं-जो अपनी पीड़ा को पी जायें, सामने वाले की आँख में आँसू भले ही न आयें, किन्तु सामने वाले का दु:खी चेहरा देखकर उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। वे तीसरे प्रकार के दु:खी होते हैं जो सामने वाले के दु:ख को देखकर दु:खी हो जाते हैं विह्वल जाते हैं। जैसे अग्नि मोम को पिघला देती है, ऐसे ही वे पानी-पानी हो जाते हैं। कोई व्यक्ति दु:खी होने का नाटक करके इन्हें सहजता में ठग भी सकता है इतने भावुक होते हैं इतने सरल होते हैं, इतने सहज होते हैं स्वयं के पैर में भले ही काँटा नहीं कील चुभ गयी हो तब तो सहन कर लेंगे किन्तु सामने वाले के पैर

में छोटा सा काँटा भी चुभ जायेगा तो उसके आँखों से आँसू निकल आयेंगे। तो तीसरी प्रकार के व्यक्ति जो दूसरों के दु:ख से दु:खी हैं भगवान् उन्हें जल्दी सुखी कर देता है। क्योंकि ये दूसरों के दु:खों को भी अपना मानते हैं दूसरों के दु:ख में पिघल जाते हैं इसलिये भगवान् सोचता है कि इनको जीवन में दु:ख न मिले तो ही ठीक रहे। चौथे प्रकार के दु:खी-

४. जो अपने सुख से दु:खी हैं-अपने सुख से दु:खी होना बहुत कठिन हो जाता है। हे भगवान् मुझे ऐसा पुण्य का उदय भी न चाहिये जिस पुण्य के उदय में मैं भगवान् के दर्शन ही न कर सकूँ, गुरु की पूजा न कर सकूँ, स्वाध्याय न सुन सकूँ। ऐसा पुण्य का उदय इतनी दुकान चल रही है कि फुरसत ही नहीं है फैक्ट्री में इतना काम चल रहा है, दिन-रात इतनी वृद्धि हो रही है कि न खाने का समय मिल रहा है न सोने का, क्या करूँगा इतनी सम्पत्ति का, क्या छाती से बाँधकर ले जाऊँगा वह रोता है भरत चक्रवर्ती की तरह से। वे कहते थे-कि पाप के उदय में तो दुनियाँ आँसू बहाती है पुण्य के उदय में आँसू बहाते कोई मुझे देखे। महानुभाव ! चौथे प्रकार के दु:खी वे हैं जो अपने पुण्य के उदय से अपने सुख में दु:खी हैं, सबकी सब अनुकूलता हैं किन्तु सब उसे घेरे रहते हैं चारों तरफ उसके चाहने वालों की भीड़ लगी रहती है। दुनिया उसे चाह रही है किन्तु वह जिसे (अपने गुरु प्रभु परमात्मा को) चाह रहा है वहाँ नहीं जा पा रहा है।

इन चार प्रकारों में से आपका नंबर कौन सा है ये आप देख लेना। अब अगली प्रकार के दुखी व्यक्ति हैं-

५. दूसरे के दु:ख को मिटाने के लिये दु:खी हो जाना-आचार्य अकलंक स्वामी जी ने तत्वार्थ वार्तिक में लिखा है कि जब सोलह कारण भावनायें भायी जाती हैं तब तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है

और आ. उमा स्वामी महाराज, आ. विद्यानन्द मुनिराज, आ. अमृतचन्द्र स्वामी, आ. जिनसेन, आ. महासेन स्वामी आदि सभी आचार्यों ने भी प्राय:कर लिखा कि सोलह कारण भावना भाने से ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है किन्तु आचार्य अकलंक स्वामी जी ने नयी बात लिखी है जब तक दूसरे के कल्याण की भावना अपने चित्त में पैदा नहीं होती है तब तक कोई तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं कर सकता। जिसे कहा है 'संक्लेशतम दया'। दूसरों का कल्याण करने के लिये, दूसरों के दु:खों को दूर करने के लिये अपने चित्त में भी संक्लेश पैदा हो जाये अर्थात् संक्लेशतम दया का भाव उत्पन्न हो जाये। वह भाव ही तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण होता है। वह भी एक दु:ख है। दु:खी हो रहे हैं भगवान् ! कैसे मैं इनके दु:खों को दूर करूँ। एक व्यक्ति वह जो दूसरों के दु:ख को देखकर दु:खी हो जाता है किन्तु वह जो दूसरों के दु:ख को देखकर दु:खी नहीं हो रहा दूसरों के दु:खों को मिटाने के लिये दु:खी हो रहा है इसे दु:खों से मुक्ति कैसे मिले और जब दूसरों को दु:खों से मुक्त करने की भावना है तो अपने दु:खों से मुक्ति तो मिलेगी ही मिलेगी। शायद मैं समझता हूँ संसार में पाँच प्रकार के ही दु:ख हैं। अन्य प्रकार का दु:ख खोजना मुश्किल है।

किसी कवि ने लिखा है-

पर सुख निज दु:ख दु:ख पर, ये सब दु:ख के मूल।
निज पर दु:ख कैसे मिटे, यही धर्म अनुकूल॥

पर सुख-दूसरों के सुख से दु:खी, निज दु:ख-अपने दु:ख में दु:खी, दु:ख पर-दूसरों के दु:खों से दु:खी ये सब दु:खों के कारण हैं निज पर दु:ख कैसे मिटे-मेरे दु:ख और सामने वाला का दु:ख कैसे मिटे 'यही धर्म अनुकूल'-संसार में यदि सबसे बड़ा धर्म है तो यही है कि जिसके माध्यम से अपने दु:ख और दूसरों के दु:ख को मिटाया जा सकता है। महानुभाव ! दु:खों की चर्चा तो की अब थोड़ा सा

संक्षेप में वह बात भी कर लें जो मुख्य बात है-दु:खों के बारे में तो हम जानते ही हैं ज्यादा बताने की आवश्यकता नहीं है, दु:ख चिरपरिचित हैं हमारे, दु:ख अनुभूत है। दु:ख के बारे में बहुत सुनाया है और सुना है 'सुद परिचिदाणभूदा'-इस दु:ख के बारे में बहुत सुन रखा है इसलिये इसके बारे में ज्यादा नहीं कहेंगे वरना आप कहेंगे महाराज जी ! हम दु:ख के बारे में सुनते-सुनते दु:खी हो गये। तो इन दु:खों से बचने का उपाय तो बताओ। दु:खों को मिटाने के इस सृष्टि में, दुनिया में, संसार में केवल दो ही उपाय हैं, थे और दो ही उपाय रहेंगे, तीसरा कोई उपाय है ही नहीं।

दु:ख का नाश कैसे हो?

१. दु:ख को भूल जाना-२. दु:ख का मिटा देना।

व्यक्ति पहले उपाय को सरल समझता है इसीलिये दूसरे उपाय तक नहीं पहुँचना चाहता। पहला उपाय-दु:ख को भूल जाना है किन्तु भूलने से दु:ख नहीं मिटता, जो दु:खी है वह मिट जाता है। यदि तुम अंधकार को भूल जाओ कल्पना कर लो अंधकार नहीं है तो प्रकाश की कल्पना करने से क्या अंधकार मिट जायेगा, जब आँख खोलोगे तो पुन: अंधकार दिखाई देगा। व्यक्ति दु:खों को भुलाने के लिये बहुत मिथ्या प्रयास करता है और दु:ख थोड़ी देर के लिये विस्मृत हो जाते हैं। दु:ख को भूलने के मिथ्या क्या उपाय हैं-

''सुरा सुंदरी संतति संपत्ति शब्द समूल।
स्वप्न स्नेह संगीत सब साधन ये दु:ख भूल॥

सुरा-सुर (देव) उनके पास सुरा नहीं सुंदरी है और तुम्हारे पास सुरा सुंदरी दोनों हैं तुम उनसे भी महान हो।

जब व्यक्ति के जीवन में दु:ख होता है, पीड़ा होती है, जब वह उसे सहन नहीं कर पाता है, तो पीकर के बेहोश हो जाता है, मूर्च्छित

हो जाता है, दु:ख को भूल जाता है। किन्तु इससे दु:ख मिटता नहीं चेतना मिटती है, दु:ख का नाश नहीं होता है, आत्मा का नाश हो जाता है। जब तक धुत पड़ा है तब तक के लिये शहनशाह बन गया भले ही चलाता हो रिक्शा। दो पऊआ चढ़ाकर नाली में पड़ा है फिर भी गद्दे का अनुभव हो रहा है। तो व्यक्ति दु:ख को भूलने के लिए शराब का सेवन करता है परंतु उससे दु:ख कम नहीं होता अपितु पाप कर्म का बंध होकर दु:ख और बढ़ जाता है। कोई दु:ख को भूलने के लिये किसी अंगना के प्यार में पड़ जाता है। मैं और मेरी और कुछ नहीं मैं खुश वह खुश, वह खुश तो मैं खुश और इसके लिये न जाने क्या-क्या नहीं करता। किन्तु इससे भी दु:ख का समाधान नहीं होता, न सुरा दु:खों का समाधान करती है, न सुंदरी दु:खों का समाधान करती है। ये सब घुमावे में डालने वाली चीजें हैं। सुरा सुंदरी के अलावा तीसरा उपाय खोजा है-

संगीत-व्यक्ति संगीत में इतना मस्त हो जाता है कि क्षणभर के लिये भूल जाता है कि मेरे जीवन में क्या दु:ख है, विरागी का चित्त भी संगीत को सुनकर के रागी हो सकता है। संगीत में वह शक्ति है जब मल्हार गीत तानसेन द्वारा बजाकर गाया जाता था तो आकाश में बादल छा जाते थे, तानसेन जब दीप मल्हार गाता तो पुन: बिना माचिस के दीपक जल जाते, बहुत शक्ति है शब्दों में, पुद्गल की शक्ति अचिंत्य है। इस वैज्ञानिक युग में ऐसे-ऐसे अनंत काल भी निकल जायें तब भी शब्दों की शक्ति कोई छद्मस्थ गा नहीं सकता जो शक्ति पुद्गल की है उसे छद्मस्थ कभी पा नहीं सकता। संगीत में भी बहुत बड़ी शक्ति है किन्तु इससे भी दु:ख को कुछ समय के लिए भुला तो सकता है पर मिटा नहीं सकता।

साहित्य-पुन: अपने दु:ख को भुलाने के लिये साहित्य का सहारा लेगा, उपन्यास ले लिया, अखबार पढ़ेगा, उसके माध्यम से

अपने दु:ख को दूर करने का प्रयास करेगा। एकांत में उस व्यक्ति का मन नहीं लगता जिसके अंदर में पाप भरे हों, दु:ख भरा हो, दु:ख कहो पाप कहो एक ही बात है। जब कर्म बंध अवस्था को प्राप्त है तो पाप है उदय अवस्था को प्राप्त है तो दु:ख है। जिसके मन में बहुत गहरा दु:ख भरा पड़ा है, बहुत पाप भरा पड़ा है ऐसा व्यक्ति एकान्त में बैठ नहीं सकता, छटपटाता रहता है दूसरों से मिलने के लिये, कहीं से सान्त्वना मिले सम्बोधन मिले तो कम से कम शांति मिल जाये।

'सम्पत्ति'-संपत्ति जब पर्याप्त मात्रा में हो तो व्यक्ति भूल जाता है कि मुझे अपना कल्याण भी करना है, मन चाही सम्पत्ति है। जो मनचाहे सो प्राप्त हो जाता है। किसी राजा से पूछो क्या उसे दीक्षा लेनी है तो वह कहेगा तुम्हारा दिमाग तो ठीक है, किसी सांसद से जाकर कहना क्या तुम णमोकार मंत्र का जाप करोगे तो कहेगा नेता बनने से पहले मैंने खूब की, खूब भक्ति पूजा-पाठ किये अब अर्चना करने का नहीं कराने का समय आ गया। तो एक नशा सम्पत्ति का भी होता है जिसे प्राप्त करके भी व्यक्ति भूल जाता है आपे के बाहर हो जाता है। जिस-जिस को प्राप्त करके व्यक्ति अपने आप को भूल जाये, अपने दु:खों को भूल जाए, अपनी करनी को भूल जाये, अपने कर्मों को भूल जाये समझो आपे के बाहर हो गया। तो सम्पत्ति भी दु:खों को भुलाने की एक कला है। अगली कला है-

संतति-जब व्यक्ति दु:खी होता है तब घर में चार बच्चों को लेकर बैठ जाता है उन्हें घेर कर बैठ गया बच्चो तुम्हीं मेरी सम्पत्ति हो, तुम्हीं मेरे प्राण हो, तुम्हीं मेरे सब कुछ हो बस मन बहला लिया। चाचा नेहरू की तरह बस हो गये टेंशन फ्री। अगला है-

स्वप्न-स्वप्न भी दु:ख को भुलाने की एक कला है आप कहेंगे स्वप्न कौन अपने हाथ की बात है। रात के स्वप्न तो अपने हाथ की बात नहीं हैं दिन के स्वप्न तो अपने हाथ की बात हैं। आँख बंद

करके कैसी भी कल्पना करते चले जाओ, आँख खोलकर बहुत सारे स्वप्न देखे जा सकते हैं। सपना जो आँख खोलकर देखा जाता है वह ज्यादा खतरनाक है, आँख बंद कर देखने की अपेक्षा से। तो यह स्वप्न भी दु:ख को भूलने का एक साधन बन जाता है।

सिनेमा-इसके साथ-साथ दु:खों को और नहीं भूल पा रहा है मन नहीं लग रहा है तो बस पिक्चर हॉल में पहुँच गये सिनेमा देखने। वह भी दु:खों को भूलने का एक पार्ट है, उपाय है और दु:खों को भूलने से दु:ख कभी मिटते नहीं हैं वे सभी दु:ख तभी मिटेंगे जब दु:ख नष्ट हों, यदि तुम किसी के कर्जदार हो तुम्हें टेंशन हो रहा है, वह व्यक्ति तुम्हें बार-बार परेशान कर रहा है तुमने दु:खी होकर के इन साधनों में से किसी का सहारा ले लिया और कुछ क्षण के लिये दु:ख भूल गये तो क्या तुम वास्तव में कर्ज से मुक्त हो गये? नहीं। जब नशा उतर जायेगा तब वह व्यक्ति सामने खड़ा मिलेगा और कहेगा ला बेटा अब दे। यदि तुम्हें कोई कष्ट हो गया फोड़ा हो गया, वह सहन नहीं हो रहा है और डॉक्टर ने बेहोशी का इन्जेक्शन लगा दिया तुम सो गये, सोने में तुम उस दु:ख को भूल तो गये किन्तु वह दु:ख नष्ट नहीं हुआ।

प्राय:कर के संसारी प्राणी दु:खों को भूलने का प्रयास करता है दु:खों को मिटाने का प्रयास नहीं करता। दु:खों को कब तक भूलोगे, जब-जब याद आयेंगे तब तब रोओगे, चिल्लाओगे, इसीलिये दु:खों को नष्ट करना पड़ेगा। चाहे आज नष्ट कर लो चाहे कल करो, नष्ट तो करना ही पड़ेगा। तुम्हारी जब अनुकूलता हो चाहे आज हो तो आज अथवा फिर कभी यदि आज तुमने उस फोड़े की उपेक्षा कर दी और इंजेक्शन ले लिये, पेन किलर ले ली और मूर्छा खाकर सोते पड़े रहे, फोड़ा और पक गया अंदर और गहरा घाव हो गया तो कष्ट कम नहीं हुआ, वह तो बढ़ गया इसीलिये आज अनुकूलता है तो कष्टों से मुक्त

होने का उपाय किया जा सकता है, दु:खों से मुक्ति का उपाय किया जा सकता है किन्तु कल प्रतिकूलता और बढ़ेगी तुम अपने दु:खों से मुक्ति का उपाय न कर सकोगे।

महानुभाव ! अब दु:खों को मिटाने का उपाय क्या है उन्हें कैसे मिटायें। दु:खों को मिटाने का उपाय केवल एक है वह है 'जागरण'।

जब तक स्वप्न देख रहे हो स्वप्न में कोई शेर तुम्हारे पीछे दौड़ रहा है पंजा मार दिया तुम कितना ही रोओ चिल्लाओ, तुम्हें कोई बचा नहीं सकता जब तक कि तुम्हारी आँख न खुल जाये। स्वप्न में तुम्हें किसी ने कुऐं में लटका दिया तुम चिल्लाओ बचाओ-बचाओ वहाँ कोई बचाने नहीं आयेगा जब तक कि तुम्हारी आँख न खुल जाये। जब तुम्हारी नींद खुल जाती है तो किसी को बुलाने की आवश्यकता नहीं है स्वप्न का दु:ख भाग जाता है। ऋषि मुनि संत भी यही कहते हैं कि संसार का दु:ख भी तुम्हारे स्वप्न का दु:ख है एक बार जाग जाओ तुम्हारी आत्मा का स्वभाव तो दु:ख है ही नहीं।

''संयोगो दु:ख-मूलं''

इस दु:ख का मूल तो संयोग भाव है आत्मा अनात्मा को एक मान लिया यही दु:ख है। जो देह को आत्मा मानता है उसका यही दु:ख है। एक बार जाग जाये देह को देह, आत्मा को आत्मा मान ले तो दु:ख नष्ट हो जाए। दूसरे के यदि तीर लगता है तो तुम्हें कष्ट नहीं होता और तुम्हारे शरीर में यदि तीर लगे और जब तुम्हें कष्ट नहीं हो, तब तुम जान लेना कि तुमने अपनी आत्मा को जान लिया है, पहचान लिया है तुमने पर को पर मान लिया है।

महानुभाव ! जागरण से दु:ख दूर होते हैं। जाग जाओ और जागने का उपाय है-भक्ति, ज्ञान, ध्यान, तपस्या, संयम, साधना। जो व्यक्ति अपने प्रभु परमात्मा इष्ट की भक्ति में संलग्न हो जाता है ऐसे व्यक्ति को फिर संसार के दु:ख सताते नहीं हैं संसार के दु:ख अनुभव में नहीं

आते, वह संसार के दु:खों को जान नहीं पाता, दु:खों को दु:ख मान नहीं पाता वह अपने आप में मस्त रहता है तो जागरण दु:ख मिटाने का उपाय है। भूल जाना दु:ख से बचने का वैसे ही उपाय था जैसे शुतुरमुर्ग वह जैसे ही अपने शत्रु को देखता, आँखे बंद कर लेता है ऐसे में क्या वह शत्रु नष्ट हो जायेगा आँखें बंद कर लेने से वह आपत्ति, विपत्ति, समस्या टलती नहीं है अपितु बलिष्ठ होकर के सामने आ जाती है, तो जागरण दु:ख को मिटाने का उपाय है अन्य उपाय तो खुद मिटने के उपाय थे दु:ख मिटाने के नहीं। जागरण दु:ख को मिटाने का उपाय व खुद को पाने का साधन है। यह जागरण, भक्ति के माध्यम से हो सकता है।

भगवान् की भक्ति में ऐसे लग जाओ कि भक्ति भगवान् और तुम तीनों एक हो जाओ कहीं भेद न रह जाये। भक्त भक्ति व भगवान्, पूज्य पूजारी व पूजा एक हो जायें, ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय तीनों एक हो जायें, ध्यान ध्याता ध्येय तीनों एक हो जायें, साधक साधना साध्य तीनों एकमेक हो जायेंगे तब नि:संदेह तुम जागरण को प्राप्त हो जाओगे। दु:ख उस समय तुम्हारे पास तक आ नहीं पायेगा। दु:ख की काली छाया अपने आप भाग जायेगी। तुम अपने कमरे के अंधकार को दूर करने के लिये लाठियाँ तलवार छुरियाँ चलाते हो, कमरे का अधंकार लाठियाँ चलाने से दूर नहीं होगा, तलवार चक्कू छुरियाँ गोलियाँ चलाने से दूर नहीं होगा उसका तो केवल एक ही उपाय है न उसे धक्का दो न प्यार करो केवल अपने अंधेरे कमरे में एक दीया जला लो अंधकार भाग जायेगा, ऐसे ही चित्त की भूमि पर तत्त्वज्ञान का दीया जल जाता है तब नि:संदेह अंतरात्मा में विद्यमान अंध काररूपी दु:ख स्वत: ही भाग जाता है ठहर नहीं पाता है।

महानुभाव ! आवश्यकता सिर्फ जागरण की है, कैसे भी कर लो, ज्ञानी पुरुष स्वाध्याय करते-करते मस्त हो गया, एक कवि

कविता करते-करते मस्त हो गया उसे नहीं मालूम बाहर की दुनियाँ में क्या हो रहा है एक ध्यानी ध्यान में, मंत्रवादी मंत्र में अपने कार्य में लीन हो गया उसे अंदर से आनंद आ रहा है। बाहर का उसे कुछ भी ख्याल नहीं क्या हो रहा है क्या नहीं। जो अंदर में डूबना जानता है, अंदर में लीन होना जानता है, ऐसा व्यक्ति दु:ख से बच सकता है अन्यथा बाह्य में डूबने वाला व्यक्ति तो उससे बच नहीं सकता। हम सब लोग आदी हो गये हैं मीठा जहर पीने के, हमें मीठा चाहिये चाहे जहर ही क्यों न हो। कड़वी औषधि खाने वाला कोई विरला व्यक्ति होता है। भूल जाना मीठा जहर है, जागरण करना तो कड़वी औषधि है।

महानुभाव ! अंधेरे महल में रहने की अपेक्षा मैं समझता हूँ प्रकाश युक्त झोंपड़ी में जाकर के रह लो तो अच्छा है। व्यक्ति सोचता है खाऊँगा तो अंगूर अरे ! खट्टे अंगूर खाने की अपेक्षा अच्छा है मीठे बेर खा लो न। किन्तु मीठे बेर मुश्किल हैं, ये जागरण मीठे बेर की तरह से है जागरण में मेहनत तो पड़ती है एक बार मेहनत कर ली जैसे विद्यार्थी स्कूल टाईम में मेहनत करके अच्छे से पढ़ लेता है, जॉब लग गयी तो उसका जीवन बड़े अच्छे से पार हो जाता है और जिसने पहले मौजमस्ती की वह जिंदगी भर रोयेगा और जिसने पहले रो-रो करके पढ़ाई कर ली वह जिंदगी भर हँसेगा, मौजमस्ती करेगा। तो दु:खों को भूल जाना मौजमस्ती करने के समान है जिंदगी भर रोने के समान है और पहले रो-रोकर पढ़ाई कर लेना यह जागरण की तरह से है। साधना में कष्ट होता है व्यवहार की भाषा में किन्तु जब साधना में आनंद आता है फिर कष्ट नहीं होता फिर तो आनंद ही आनंद, उसका कोई ओर छोर नहीं है।

तो दु:खों से बचने का उपाय यही है ज्ञान-ध्यान-योग, समाधि , संयम साधना। निष्कांक्ष साधना, निष्काम भक्ति, निरावरण ध्यान

और आत्मा का ज्ञान तत्त्वज्ञान, ब्रह्मज्ञान वही केवल दु:खों को दूर कर सकता है अंदर के अंधकार को दूर कर सकता है। चेतना में विद्यमान भ्रम को दूर कर सकता है।

महानुभाव ! मेरा बस आपसे इतना ही कहना है आवरण में नहीं जागरण में आओ। आवरण में, छिपकर कब तक रहोगे न तुम स्थायी हो और न आवरण। जो कोई भी आवरण ओढ़ते जाओगे वह आवरण कल तुम्हारे दु:ख का कारण बन जायेगा। इसलिये आवरण को छोड़ो जो आवरण को छोड़कर जागरण को ग्रहण कर लेता है उसके जीवन में फिर कभी मरण नहीं होता उसका चरण ही शरण बन जाता है, वह अपने में स्वयं ही तारण-तरण बन जाता है इसलिये आवरण को छोड़कर के जागरण को स्वीकारो जिससे तुम्हारे भी चरण संसार के लिये शरण बनें और भव्य जीवों के लिये तारण तरण बनें, मैं आप सभी के लिये बस यही चाहता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

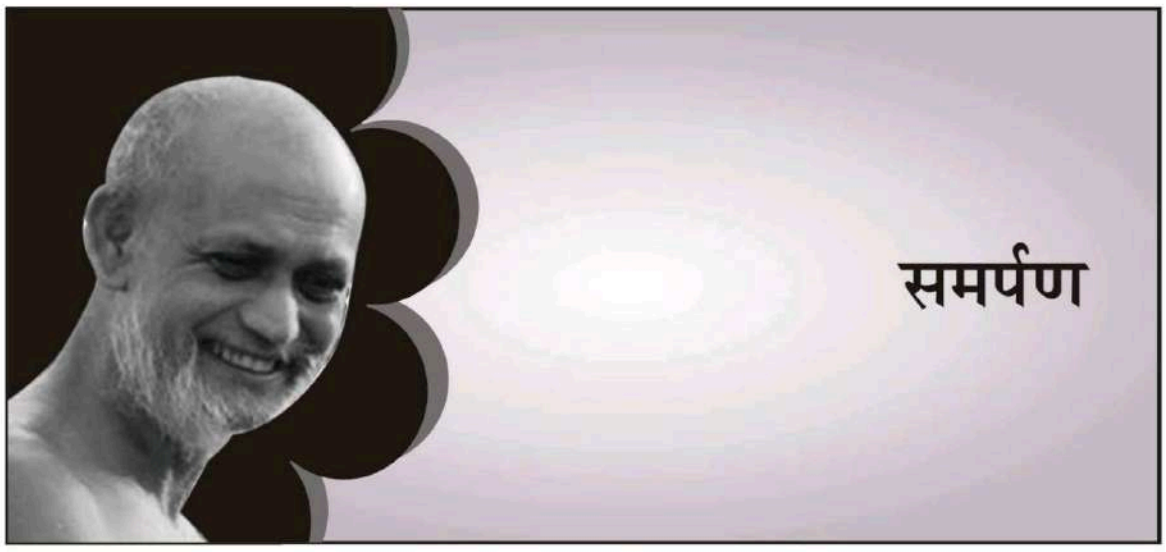

''तर्कों की परिधि से बाहर आये बिना समर्पण असंभव है। क्योंकि समर्पण में कोई आशा नहीं होती, समर्पण में कभी निराशा नहीं होती। निःस्वार्थ रूप से सर्वस्व सौंपने का नाम है समर्पण अतः समर्पण की कोई निश्चित परिभाषा नहीं होती।''

ज्यों ही जीव किसी भी कार्य को करने का संकल्प लेता है, तभी से उसके जीवन में पुण्य और पाप का आश्रव शुरू हो जाता है, कार्य को तो जब साकार रूप देगा तब देगा किन्तु पुण्य और पाप का आश्रव पहले से प्रारंभ हो जाता है, तो क्यों न हम अपने जीवन में अच्छे कार्यों का संकल्प लें। संकल्प लेने में कुछ जाता भी नहीं जब संकल्प लेने मात्र से ही पुण्य मिल जाता है तो बुरे कार्यों का संकल्प क्यों लिया जाये, अच्छे-अच्छे कार्यों का संकल्प लें। संकल्प ऐसा भी लिया जा सकता है कि मैं जीवन में मुनि, महाव्रती बनकर ही रहूँगा, मैं उत्तम समाधि प्राप्त करके ही रहूँगा। मैं शाश्वत सिद्ध क्षेत्रों की शताधिक वंदना करूँगा, मैं प्रतिदिन अरिहंतों की, सिद्धों की, पंचपरमेष्ठी की वंदना, उपासना करूँगा इत्यादि बहुत से ऐसे नियम संकल्प लिये जा सकते हैं अथवा ऐसा भी संकल्प लिया जा सकता है कि मेरी अनुकूलता हुयी तो मैं ऐसी-ऐसी पुण्य क्रिया करूँगा।

मन का संकल्प कार्य को सम्पन्न करने के लिये शक्ति प्रदान करता है। जिसका संकल्प जितना सुदृढ़ होता है उसे उतनी ही ज्यादा शक्ति प्राप्त हो जाती है और संकल्प जितना शिथिल होता है उसकी शक्ति उतनी ही नष्ट हो जाती है। जीवन में अपनी आत्मा से साक्षात्कार करना जरूरी है क्योंकि बिना आत्मा को जाने आत्मा का विकास नहीं हो सकता, बिना आत्मा को पहचाने आत्मा की उन्नति असंभव है, इसलिये ये हमारा संकल्प है कि हम आत्मा को जानेंगे, आत्मा को पहचानेंगे और आत्मा को आत्मा में लीन कर लेंगे।

इसके लिये एक सहारे की आवश्यकता है, जो सहारा हमें बाद में इशारा भी करे, यदि हमें सहारा और इशारा दोनों ही मिलें फिर हमें किसी भी बात का भय नहीं कि हम अपनी आत्मा को न जान सके। सहारा बहुत महत्वपूर्ण होता है, इशारा उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण होता है किन्तु प्रारंभ में इशारा हमारी समझ में नहीं आता, प्रारंभ में सहारा ही आवश्यक होता है इसीलिये हमें गुरु का सहारा चाहिये। गुरु का सहारा लिये बिना प्रज्ञा के द्वार खुलते नहीं हैं और बुद्धि कुछ काम करती नहीं है। आत्मा के दर्शन में बुद्धि बौनी हो जाती है प्रज्ञा के द्वार खुले बिना, प्रज्ञा के पटल उठे बिना हम आत्मा का दर्शन नहीं कर सकते। बाहर के चक्षुओं के उन्मीलित होते ही बाहर के पदार्थ दिखाई देते हैं ऐसे ही जब प्रज्ञा उन्मीलित होती है, प्रज्ञा के प्रस्फुटित होते ही हम आत्मा को साक्षात् देख सकते हैं।

वह प्रज्ञा मिलती है गुरु के द्वारा और वह भी तब संभव है जब गुरु के चरणों में नि:स्वार्थ समर्पण कर दिया जाये। बिना समर्पण के प्रज्ञा के द्वार खुलना असंभव है यदि बिना समर्पण के प्रज्ञा के द्वार खुल जाते तो संसार में सभी प्राणी प्रज्ञा सम्पन्न हो जाते। प्रज्ञा के दरवाजे ऐसे नहीं हैं कि अपने आप खुल जायें, उसे पहले गुरु सहारा लगाते हैं और गुरु कहते हैं कि चल धक्का लगा मैं पीछे खड़ा हूँ और

हो सकता है गुरु ने थोड़ा सा हाथ छूआ वह द्वार खुल गया। खोला तो उस व्यक्ति ने स्वयं ही था किन्तु वह कहता है कि गुरु के माध्यम से खुल गया मैं तो अनादि काल से खोल ही नहीं पाया। पलक खोलनी तो अपने आप को ही पड़ती है, किन्तु वैद्य ने इतनी सलाह दी कि कीचड़ दूर होते ही तेरी पलक खुल जायेगी। तेरी आँखों में रोशनी तो है, तू अंधा नहीं है, तू अंधा प्रकृति से नहीं है तू अज्ञानता से अपने को अंधा मान बैठा है तेरी आँख खुल सकती हैं। तेरी आँखों में ज्योति है।

यूँ तो संसार का प्रत्येक व्यक्ति कहीं न कहीं समर्पित होता है किन्तु हर जगह का समर्पण सम्यक् फल की उपलब्धि कराने में असमर्थ है। यदि समीचीन स्थान पर समर्पण किया है तो समीचीन फल की प्राप्ति होगी, यदि समीचीन स्थान पर समर्पण नहीं किया तो समीचीन फल की प्राप्ति असंभव है। समर्पण व्यक्ति के प्रति नहीं किया जाता, विवेकी व्यक्ति समर्पण किसी वस्तु या व्यक्ति के लिये नहीं करता। समर्पण जब भी करना चाहिये महान सत्ता के लिये करना चाहिये। समर्पण जब भी होता है वह सत्य के लिये होता है, समर्पण जब भी होता है चेतना के लिये होता है, समर्पण दिव्यता के लिये होता है, समर्पण जब भी होता है प्रकाश पाने के लिये होता है, समर्पण जब भी होता है ऋजुता को पाने के लिये होता है। समर्पण जीवन में वही व्यक्ति कर सकता है जो गुणार्थी हो, आत्महितार्थी हो, कल्याणार्थी हो वही वास्तव में समर्पण कर सकता है अन्यथा समर्पण का नाटक तो संसार का कोई भी व्यक्ति कर सकता है।

एक कन्या जिस लड़के को चाहती है कहती है मेरा तेरे प्रति समर्पण है, कब तक? जब तक वह लड़का उस कन्या के अनुकूल चल रहा है, एक बात भी प्रतिकूल हो गयी तो समर्पण दिखाई नहीं देता। समर्पण के कबूतर पिंजड़ा खोल कर बाहर चले जाते हैं। एक

लड़का कहता है मैं तेरे प्रति प्राणपन से समर्पित हूँ किन्तु जैसे ही वह लड़की उस लड़के की बात नहीं मानती तो पुनः वही उसके प्राण लेने को तैयार हो जाता है। जिसके लिये व्यक्ति प्राण देने को तैयार रहता है, यदि वह प्रतिकूल हो गया तो वही उसके प्राण लेने को भी तैयार हो सकता है, इसलिये समर्पण किसी व्यक्ति के प्रति नहीं किया जाता। ये समर्पण इतना नाजुक है, कि एक छोटा सा झटका लगा और काँच के ग्लास की तरह टूट जायेगा। यह सहन नहीं कर सकता। इसलिये जब भी समर्पण किया जाता है वह महान सत्ता के लिये, प्रभु सत्ता के लिये, भगवत्ता के लिये, गुरुता के लिये, दिव्यता के लिये, सत्यता के लिये, समता के लिये ही किया जा सकता है, वही समर्पण शाश्वत रहता है वही नियम से सम्यक् फल को देने वाला होता है।

कई बार लोग कहते हैं मैं तो उनके प्रति समर्पित हो गया, अपने मन को टटोल कर देखना कितना समर्पण है। जब तक तुम्हारे अनुकूल वह व्यक्ति है तब तक समर्पण है एक बार भी वह तुम्हें कुछ कह दे बस ! समर्पण ऐसे घुल जाता है जैसे रंग से कहीं रंगोली बनायी हो और सामने से पानी की बौछार आ जाये। ऐसे धुल-पुछ जाता है जैसे कि यहाँ रंगोली बनाई ही न हो। वह समर्पण ऐसे ही होता है जैसे बच्चों ने मिट्टी के घरोंदे बनाये हों और एक हवा का तूफान चला तो वह वहीं धराशाही होकर उसी मिट्टी में मिल जायें। वह समर्पण ऐसे ही होता है जैसे हमने सपने में कल्पना बनायी हो और नींद खुलते ही टूट जाती है।

व्यक्ति के प्रति किया गया समर्पण शाश्वत रह ही नहीं सकता वह व्यक्ति ही शाश्वत नहीं है। व्यक्ति की किसी दशा के प्रति समर्पण किया जाता है वह दशा भी शाश्वत नहीं है इसलिये व्यक्ति के प्रति समर्पण नहीं किया जा सकता। जो समर्पण व्यक्तित्व के प्रति किया जाता है वह समर्पण स्थायी रूप ले सकता है। व्यक्ति रहे या

न रहे, उसका चारित्र हमारे सामने रहेगा, चाहे वह धर्मात्मा व्यक्ति रहे या न रहे उसका धर्म आज भी हमारे सामने है हम उसके लिये समर्पण कर सकते हैं। कहते भी हैं-''एक जीवन क्या सौ-सौ जीवन गुरुवर तुम्हें समर्पित हैं।'' गुरु के लिये, गुरु की गुरुता के लिये।

समर्पण बिना द्वार खुलता नहीं है। समर्पण करना बहुत जरूरी है धर्म के क्षेत्र में प्रवेश पाने के लिये पहले प्रभु के द्वार में आकर के गिर-जा पहले गिर फिर जा घर ''गिरजाघर''। जो गिरता नहीं है वह अपने घर नहीं जा सकता, जो गिर जाता है वह तर जाता है। गिरने का अर्थ-पूर्ण रूप से चरणों में समर्पित हो जाना। भगवान् ! तुम जानो, तुम्हारा काम जाने, मैं तो यहाँ आपके चरणों में बैठा हूँ। और जो समर्पित हो प्रभु चरणों में बैठा है उसे कई उपलब्धियाँ हुईं। चाहे वह सुदर्शन, धनंजय आदि श्रावक हों या जिनदत्ता, सीता, सोमा आदि श्राविकाएँ हों या अन्य कोई आचार्य, साधु भी हों।

महानुभाव ! शरीर को गिराना जरूरी नहीं अपने अंदर के अहंकार को गिराना जरूरी है, जब तक यदि हमें किसी की अच्छी बात भी चुभती है तो समझ लेना चाहिये कि अभी हमारे अंदर कहीं अहंकार फन फैलाकर बैठा हुआ है। जब बुरी बात भी अच्छी लगे तो समझ लेना चाहिये कि हमारा अंधविश्वास है उसके प्रति अंध समर्पण है, और अच्छी बात भी बुरी लगे तो हमारे अंदर अभी अहंकार बैठा हुआ है। तो अंधा समर्पण भी कार्यकारी नहीं है और अच्छी बात बुरी लगना भी अच्छी बात नहीं है। बिना समर्पण के तो कभी किसी की उन्नति होती नहीं जब भी उन्नति होती है समर्पण के साथ होती है झुकने से होती है उठने से नहीं।

''जो झुकता है सो उठता है, जो उठता है वह टूट जाता है''

कई बार लोग कहते हैं-एक पिता ने अपने परिवार का भरण-पालन पोषण किया, एक पिता 10-12 बच्चों का भी पालन पोषण कर

सकता है किन्तु 10-12 बच्चे एक पिता का पालन पोषण नहीं कर पाते, क्यों? इसका अर्थ मैं ऐसे लगाता हूँ-वे 10-12 बच्चे अपने पिता के सामने झुककर के रहते हैं दिल के सच्चे बनकर के रहते हैं, बेटा बनकर के झुका जाता है बाप बनकर नहीं खा सकते। बाप यदि बेटे का बेटा बनकर रहने को तैयार हो जाये तो मुझे लगता है वह बेटा बाप को सौ पीढ़ी तक खिलाता रहेगा। बेटा बनकर ही झुका जा सकता है बाप बनकर के नहीं। कहने का आशय यह है कि जब लेने के लिये जाता है तो झुककर के जाया जाता है और देने वाला सदैव ऊँचा रहता है। बादल पानी बरसाते हैं तो ऊँचे रहते हैं चाहे थोड़ा सा ही पानी क्यों न हो और समुद्र के पास तो बहुत सारा पानी है किन्तु वह लेने वाला है इसलिये नीचे रहना पड़ेगा। लेने वाला हमेशा नीचा होता है और देने वाला सदा ऊँचा होता है। देने वाले के पास चाहे ज्यादा है या कम इसकी समीक्षा नहीं करता किन्तु वह देता है। इसलिए यदि कुछ पाना चाहते हो तो समर्पण करना बड़ा जरूरी है।

बीज नि:स्वार्थ भाव से अपना जीवन भूमि को समर्पित करता है वह पुष्पित होता है, फलित होता है और संसारी प्राणियों को तृप्त कर देता है। मिट्टी ने नि:स्वार्थ भाव से अपना समर्पण कुंभकार के हाथों में किया है इस मिट्टी को कूटा गया, खोदा गया, पैरों से दबोचा गया बाद में पीट-पीट कर अग्नि में तपा करके मंगल कलश बना दिया गया फिर वह सबके सिर पर पहुँच जाता है। पाषाण के खण्ड ने बिना स्वार्थ के समर्पण एक कुशल शिल्पकार के हाथों में किया है उस शिल्पकार ने पाषाण को काँटा, छाँटा सब कुछ किया और बाद में ऐसी मूर्ति का रूप दे दिया कि परमात्मा के रूप में सारी दुनिया उसके चरणों में सिर झुकाने लगी, समर्पण की महिमा अगम्य है।

समर्पण यदि एक रोगी वैद्य को करता है तो वह उसको निरोगी कर देता है, एक क्लाइंट अपना समर्पण करता है वकील के पास,

वकील कहता है चिंता न कर तेरा केस मैं सुलझा दूँगा और यदि वह क्लाइंट अपनी बुद्धि चलाये तो, यदि रोगी अपनी बुद्धि चला दे तो वह वैद्य, डॉक्टर, वकील कहेगा मेरे पास क्यों आये अपने घर बैठकर खुद ही उपचार कर लो। तो समर्पण का आशय होता है कहीं कोई शर्त न रहे जैसे शिशु अपना समर्पण माँ के लिये करता है उसे कुछ नहीं मालूम क्या अच्छा है क्या बुरा है जैसा माँ ने कहा वैसा ही करना प्रारंभ कर देता है तो शिशु संस्कारवान् हो जाता है, तीनों लोकों में लोकप्रिय, सम्मानीय अर्चनीय हो जाता है। यदि लकड़ी एक बढ़ई के हाथों में अपना समर्पण कर देती है तो लकड़ी का बहुत अच्छा सामान बन सकता है और यदि न करे अकड़ दिखाये तो वह लकड़ी कुछ बन नहीं पायेगी।

समर्पण किया एक बांस ने जिसकी बांसुरी बना लोगों ने होठों पर रखा, समर्पण किया स्वर्ण ने उसने अग्नि परीक्षा दी उसे तपाया और पुनः उसके आभूषण बन गये जब वह सोना खदान में पड़ा था तब उसे हम ठोकर मार रहे थे, समर्पण तो किसी ने भी किया पानी की बूंद ने समर्पण किया सीप के मुख में जा मोती बन जाती है, समर्पण यदि शिष्य ने किया है शिक्षक के प्रति तो वह शिक्षक शिष्य को योग्य बना देता है, यदि शिष्य ने समर्पण किया है गुरु के प्रति तो वह गुरु उस शिष्य को शिष्टाचारी, संयमी और एक सच्चा संत महात्मा पुरुष बना देता है, यदि सच्चा समर्पण किया है भक्त ने भगवान् के प्रति तो भक्त आज नहीं तो कल नियम से भगवान् बन जाता है।

''समर्पण की कोई परिभाषा नहीं है,
समर्पण में कोई आशा नहीं है।
समर्पण तो निःस्वार्थ भाव से अपने को देना है,
क्योंकि इसमें कभी भी निराशा नहीं है॥''

निराशा वहाँ होती है जहाँ किसी की किसी से कोई आशा हो, उसकी पूर्ति न होगी तो निराशा हो जायेगी। जो व्यक्ति आशान्वित नहीं होता है वह जीवन में कभी भी निराश नहीं होता। समर्पण के पास जैसे ही हम पहुँचते हैं तो नि:संदेह व्यक्ति एक चरण और आगे बढ़ जाता है।

समर्पण का आशय है-शरण, समर्पण का आशय है मैं उसके पास पहुँच गया, समर्पण का आशय है-मेरे पास जो कुछ भी है वह मैंने सब उसे दे दिया। समर्पण का आशय है मेरा अस्तित्व नहीं है, वजूद नहीं है मैं जिसके प्रति अपने आप को दे चुका वही मैं हो गया, जब तक अपना कुछ अवशेष रहेगा तब तक अपनी सीमा रहेगी।

एक राजा ने घोषणा करवायी कि जो व्यक्ति जितनी जगह दौड़कर के नाप सकता है उतनी नाप ले उसे उतनी जगह दे दी जायेगी। किसी ने ईटें उठायीं, किसी ने लाइन खींच दी, एक व्यक्ति से पूछा तुमने जगह नहीं ली, वह बोला गर मैं सीमा बनाता तो जगह थोड़ी मिलती मेरी जगह तो सीमा से रहित है जितनी बची है वह सब मेरी है। महानुभाव ! जब भी भक्त प्रभु के सामने अपना समर्पण करता है यदि समर्पण करने में कुछ बचा लेता है तो उसे उतना ही मिल पाता है और नहीं बचाता है, पूरा समर्पण कर देता है तो फिर बिन्दु भी सिन्धु बन जाती है। यदि पानी की बूंद अपना थोड़ा सा हिस्सा समर्पण करे समुद्र के लिये, थोड़ी सी बच जाये तो कहेंगे इतनी बूंद है पानी की और यदि पूरी समुद्र में मिल जाये, मिट जाये तो वह बिंदु ही सिन्धु कहलाती है ऐसे ही भक्त भी जब भगवान् के लिये अपना सम्पूर्ण समर्पण कर दे तो भक्त भी भगवान् बन जाता है, भगवान् का राज्य भक्त का राज्य हो जाता है।

जब बेटा बाप के प्रति अपना सम्पूर्ण समर्पण कर देता है तो बाप कहता है बेटा ! मेरी सम्पत्ति सब तेरी सम्पत्ति है और यदि समर्पण

नहीं है तो पिता कहता है बेटा मैं किसी के भी नाम कुछ भी लिख सकता हूँ, तेरा कोई अधिकार नहीं है, मैं जीते जी किसी को भी दे सकता हूँ यह मेरा अधिकार है। कहने का आशय यह है कि जब व्यक्ति हृदय से जीता है तो सब कुछ पा लेता है बीच में बुद्धि आ जाती है तो उसका सब कुछ निकल जाता है अकृतपुण्य की तरह से, प्राप्त तो बहुत कुछ किया किन्तु छेद में से सब कुछ निकल गया। समर्पण का आशय है ''शरणीभूत होना''।

''सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे चरणों में।
है जीत तुम्हारे चरणों में और हार तुम्हारे चरणों में॥''

जो अपने जीवन का सारा भार अपने इष्ट के चरणों में सौंप देता है उसे जीवन में कभी स्वप्न में भी हार नहीं देखनी पड़ती उसे तो उपहार ही उपहार मिलते हैं जीत ही जीत मिलती है वह कभी पराजित नहीं होता। शरण का आशय ही होता है तन्मय हो जाना उस रूप हो जाना, अद्वैत हो जाना, चिन्मय हो जाना, अभिन्न हो जाना, एकीकृत हो जाना, एकीभाव हो जाना अथवा एकत्व हो जाना आचार्यों ने कई शब्दों का प्रयोग किया है इन सबके अर्थ एक ही हैं।

''जैसी शरण वैसा वरण'' जिसने जिसकी भी शरण ली है वह व्यक्ति वैसा ही हो जाता है, यदि पूर्णत: शरण ले ले तो। एक लकड़ी अग्नि के गोले में डाल दी उस लकड़ी ने अपना समर्पण अग्नि के लिये किया तो क्षण भर बाद देखा तो वह लकड़ी क्या हो गयी-वह लकड़ी भी अग्नि हो गयी लकड़ी ने समर्पण अग्नि में किया तो उस रूप हो गयी, जो जिसके लिये समर्पण कर देता है वह वैसा ही हो जाता है। अच्छे के लिये करोगे तो तुम भी नियम से अच्छे बन जाओगे, महात्मा के लिये समर्पण करोगे तो तुम भी नियम से महात्मा बन जाओगे, परमात्मा के लिये समर्पण करोगे तो तुम भी नियम से परमात्मा बन जाओगे। यदि चंद धूल के कण गुड़ में मिल

जायें तो वे भी मीठे हो जाते हैं, यदि पानी शक्कर की शरण लेता है तो वह भी मीठा हो जाता है।

महानुभाव ! किन्तु शरण पूरी तरह से लें, हमारे जीवन की एक कमी है, हम समर्पित भी होना चाहते हैं पर थोड़ी सी अपनी बुद्धि लगा लेते हैं, उस चींटी की तरह से एक चींटी ने दूसरी चींटी से पूछा बहिन तुम इतनी दु:खी सी क्यों दिखाई देती हो, तुम्हारा शरीर कुछ दुबला सा हो गया वह चींटी रोती हुयी कहती है क्या बताऊँ मेरा तो भाग्य ही फूट गया, क्या पाप कर्म का उदय आया है-नमक के ढेर पर मेरा जन्म हुआ है, नमक खाते-खाते मेरी तो हड्डियाँ ही गल गयीं। अरे ! बहिन तूने मुझसे क्यों नहीं कहा जहाँ मैं रहती हूँ वहाँ शक्कर ही शक्कर है गुड़ है, गन्ने हैं वहाँ चल वहाँ अपन मस्ती से रहेंगे।

वह चींटी उस चींटी की बात मानकर के पहुँच गयी और वहाँ पहुँच कर पहली चींटी ने दूसरी से कहा-अब तू भी शक्कर खा, वह खाने लगी किन्तु उसे अभी भी नमक का स्वाद आ रहा है, उसने पूछा-अब तो तुझे शक्कर का स्वाद आ गया होगा ? बोली-बहिन तूने तो मुझे धोखा दे दिया कहाँ है यहाँ शक्कर यहाँ भी तो नमक है। अरे ! यहाँ नमक कहाँ से आया ? यहाँ तो शक्कर है, लगता है नमक खाते-खाते तेरी जीभ में नमक का ही स्वाद चढ़ गया है इसलिये तुझे शक्कर का स्वाद नहीं आ रहा है। तू नमक के ढेर को तो छोड़ आयी कहीं ऐसा तो नहीं है कि तू थोड़ा सा नमक मुँह में रखकर ले आयी हो ?

वह रोती हुई कहती है हाँ थोड़ा सा लायी थी कलेवा के लिये कहीं शक्कर न मिली तो तू मुझे भूखा ही मार देती इसलिए थोड़ी डली मुँह में रखी है। बहिन ! मेरा विश्वास कर थोड़ी देर के लिये मुख से नमक की डली बाहर निकाल दे, फिर इसे चख यदि शक्कर

का स्वाद नहीं लगे तो फिर इसे खा लेना। उसने ऐसा ही किया, नमक की डली बाहर निकाल कर रख दी उसे शक्कर का स्वाद आ गया, किन्तु मुझे लगता है बहुत सारी चींटियाँ ऐसी भी होती हैं जो बात नहीं मान पाती, उसे छोड़ना नहीं चाहती। विषयों को पकड़ कर बैठ गये तो बैठे ही रह गये चाहे गुरु महाराज कितना ही समझायें कि थोड़ी देर के लिये तो छोड़कर देखो !

दरअसल में उस चींटी ने जैसी अपनी बुद्धि लगाई थी कि यदि कुछ न मिले तो थोड़ा सा नमक अपने मुँह में रख लिया था, ऐसे ही थोड़ी सी बुद्धि आप भी अपनी लगाते हैं कि शायद भगवान् के द्वार पर जाने से वहाँ कुछ नहीं मिला तो कुछ तो अपने पास रख लो, गुरु के द्वार पर गये कहीं खाली हाथ लौट कर आना पड़ा तो कुछ तो अपने पास रखो इसलिए कुछ रख लेते हैं, जिसके पास कुछ होता है वे सब कुछ से हाथ धो बैठते हैं जो कुछ छोड़ने को तैयार होते हैं उन्हें सब कुछ मिल जाता है। सब कुछ छोड़ोगे तो सब कुछ मिलेगा। कुछ-कुछ छोड़ोगे तो कुछ-कुछ मिलेगा इसीलिये जीवन में सब कुछ छोड़ने के लिये तैयार रहो।

भगवान् के सामने जब धोक लगाते हो दोनों हाथ आगे बढ़ाते हो कहते हो भगवान् मैंने हाथों का कर्म आपको दिया जो कुछ भी करेंगे आप करेंगे, मैंने दोनों घुटने झुका दिये, ये पैर आपको दिये जहाँ आप कहोगे वहीं चलेंगे, मैंने अपना मस्तक आपको दिया जो आप कहेंगे वही मेरा मस्तक सोचे, दोनों आँखें, दोनों कान, मुख सब कुछ मैंने आपको दे दिया, मैं, मेरा कुछ भी नहीं है, सब कुछ आपको सौंप दिया, आप कहोगे इसे देखो मेरी आँख वही देखेगी, आप कहें ये सुनो मेरे कान वही सुनेंगे, आपके अतिरिक्त मैं 1 प्रतिशत भी अपनी बुद्धि नहीं लगाऊँगा यदि अपनी बुद्धि लगाई तो मैं डूब जाऊँगा।

एक इंजीनियर थे वह यात्रा के लिये पूरे परिवार के साथ जा रहे थे। इंजीनियर पढ़े-लिखे समझदार थे। जिस क्षेत्र की यात्रा करने जा रहे थे वहाँ कोई वाहन नहीं चलता था, पैदल ही चलना पड़ता था और संयोग की बात ये थी कि मार्ग में नदी भी पड़ती थी वह नदी भी पार करनी पड़ती थी। चातुर्मास के समय नदी में नाव होती थी तो नाव से पार हो जाते थे किन्तु ग्रीष्म काल में और शीतकाल में नाव नहीं होती थी क्योंकि नदी में पानी कम होता था तो लोग प्राय:करके पैदल ही निकल जाया करते थे।

किन्तु एक बार हुआ ये कि ग्रीष्म काल में अच्छी बारिश पड़ गयी तो नदी में पानी ज्यादा आ गया। अब इंजीनियर साहब नदी किनारे खड़े थे, सोचने लगे कि नदी पार कैसे करूँ उन्होंने सोचा कोई बात नहीं चार फीट गहरा पानी है और अपनी लम्बाई नापी, उनकी लम्बाई 7.5 फीट, पत्नी की लम्बाई 7 फीट, बेटे की 5 फीट, दूसरे बेटे की 3 फीट और अगले की 3.5 फीट पूरे कुटुम्ब परिवार की लम्बाई नापकर के उन्होंने औसत निकाला कि औसत सबका मिलकर के लगभग 5.5 फीट है। 5 से कम तो है ही नहीं और नदी की गहराई 4 फीट उन्होंने हिसाब लगाकर पत्नी से कहा-चिन्ता न कर अपन आराम से पार हो जायेंगे। दो बच्चों के हाथ खुद ने पकड़े एक का पत्नी को पकड़ाया और चलने लगे, जैसे ही नदी के बीच में पहुँचे नदी की बहुत तेज धार से वह बच्चे बह गये, पत्नी को बड़ी मुश्किल से संभाल पाये, जैसे-तैसे किनारे तक पहुँच गये, अब रोने लगे, पुन: अपनी वो डायरी निकाली, पत्नी कहती है तुम्हारा हिसाब कैसा रहा ? वह कहता है वही तो मैं सोच रहा हूँ, कि ''हिसाब हमारा ज्यों का त्यों फिर भी कुनबा डूबा क्यों? हिसाब में तो कोई गड़बड़ नहीं है। नदी की गहराई और हमारी लम्बाई भी ठीक थी फिर क्यों डूब गये।

महानुभाव !

लगता है हम लोग भी इसी तरह से हिसाब लगाते हैं और हमारा हिसाब भी ऐसे ही फेल हो जाता है जैसे उस इंजीनियर का फेल हो गया था शायद अनपढ़ होता, देहाती व्यक्ति होता तो नदी में पैर न बढ़ाता वह सोचता चाहे कुछ भी हो यात्रा बाद में कर लूँगा नहीं तो यहाँ पर आकर के पूरी अंतिम यात्रा ही हो जायेगी। किन्तु जो पढ़ा-लिखा होता है वह अपनी बुद्धि के सामने, सहजता को स्थान नहीं दे पाता।

तो महानुभाव समर्पण से पहले बुद्धि का प्रयोग किया जाता है कि समर्पण कहाँ और किसको किया जाए परंतु समर्पण के बाद बुद्धि का प्रयोग नहीं किया जाता न करना चाहिए तब तो अपने आराध्य के चरणों में नतमस्तक होकर अपना सर्वस्व अर्पण कर देना चाहिए। हे प्रभुवर ! अब इस जीवन की दशा व दिशा आपके ही हाथों में है। सच्चे देव व गुरु के चरणों में किया गया समीचीन समर्पण उत्कृष्ट सिद्धत्व की दशा को देने में समर्थ होता है। जिस प्रकार कुंभकार को मिट्टी द्वारा किया गया समर्पण उसे कुंभ का आकार देकर सम्मानीय बनाता है उसी प्रकार भव्य जीव द्वारा सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को किया गया समर्पण परमात्मा के साँचे में ढालकर पूजनीय बनाता है। इस समीचीन समर्पण के द्वारा आप भी सिद्धालय में सिद्धों के बीच, सिद्ध होकर स्थान प्राप्त करें। इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ मैं अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

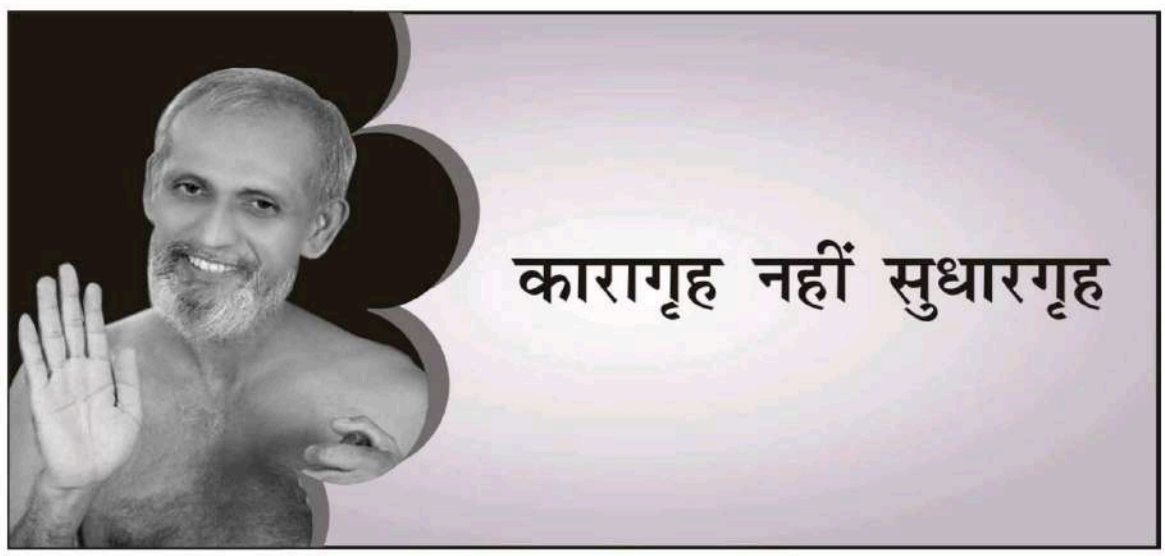

''पशुओं के सामने न कोई उद्देश्य रहता है और न कोई लक्ष्य किन्तु मनुष्य की हर योजना सुविकसित और सार्थक होती है, इसलिये उनकी पूर्ति के लिये कभी अनैतिक, अवैध व अपवाद मार्ग का सहारा न लें, सदैव नैतिक साधनों का व राजमार्ग का प्रयोग करें।''

संसार का प्रत्येक प्राणी बंधन बद्ध है, बंधन दो प्रकार के होते हैं-एक बाह्य बंधन दूसरा अंतरंग बंधन। जो बाह्य बंधन है वह संसारी प्राणियों को दिखाई देता है, एक अंदर का बंधन होता है उस अंदर के बंधन को वही व्यक्ति जान सकता है जिसके पास आध्यात्मिक दृष्टि हो। बाह्य बंधन से मुक्ति प्राप्त करना फिर भी सरल है किन्तु अंतरंग के जो बंधन हैं कर्मों के बंधन, राग और द्वेष के बंधन, मोह-माया के बंधन इन्हें समझना हर किसी के लिए संभव बात नहीं। उस बंधन को काटना सबके वश की बात नहीं है। पशु के गले में रस्सी बंधी हुयी दिखाई देती है किन्तु इंसान के अंदर जो रस्सी है वह दिखाई नहीं देती, पशु को रस्सी के सहारे जहाँ तक ले जाओ वहाँ तक चला जाता है किन्तु इंसान बिना रस्सी के सहारे जिसके प्रति राग है, मोह है, द्वेष है वहाँ तक पहुँच जाता है। व्यक्ति अपने घर से सुबह से निकलता

है शाम को लौटकर अपने घर क्यों आ जाता है ? उसके गले में क्या कोई रस्सी पड़ी है ? नहीं, उसकी आत्मा में रस्सी पड़ी है, उसके अंदर मोह का बंधन पड़ा हुआ है इसलिये अपने घर लौटकर आ जाता है।

महानुभाव ! जो कोई व्यक्ति बंधन में है वह अपनी शक्ति का पूर्ण सदुपयोग नहीं कर सकता। यदि एक शेर पिंजरे में बंद है और एक पिंजरे के बाहर है दोनों शेर हैं किन्तु फिर भी पिंजरे में बंद शेर आज गीदड़ से भी ज्यादा डरपोक हो सकता है और पिंजरे के बाहर का शेर अपनी पूरी शक्ति के साथ विचरण करता है, पिंजरे में बंद पक्षी और मुक्त आकाश में उड़ान भरने वाला पक्षी दोनों में अंतर है। पिंजरे में बंद पक्षी की शक्ति अवकुण्ठित हो गयी है वह पंख फैलाना भी चाहे तो भी उसके पंख फैल नहीं सकते, उड़ान भरना भी चाहे भर नहीं सकता, मजबूर है पिंजरे में रहने के लिये। इसी तरह यह इंसान भी बंधन में पड़ा हुआ है। वह नहीं समझ पाता कि इन बंधनों को कैसे तोड़ा जाये।

कई बार तो जीवन में ऐसा होता है इंसान जिसे अच्छा समझता है, मानता है कि इससे सुख-शांति मिलेगी किन्तु होता ये है उसी के माध्यम से दु:ख और अशांति मिलती है। संसारी प्राणी को संसार की क्रियायें और संसार के कार्य अच्छे लगते हैं और संसार से पार जाने वाली क्रियायें उसे अच्छी नहीं लगती। महानुभाव ! बंधन कोई अभिशाप नहीं है। बंधन में जन्म लेना, बंधन में रहना यहाँ तक कोई बुरी बात नहीं है किन्तु बंधन को नहीं समझना, मुक्ति के लिये प्रयास नहीं करना यह अभिशाप हो सकता है। आप लोग अपने मन में ये हीन भावना न लायें कि हम यहाँ जेल में रहकर क्या कर सकते हैं। यहाँ पर रहकर के भी आप बंधन को काट सकते हैं। यहाँ पर रहकर के भी अपने कर्मों के बंध को निर्जीर्ण कर सकते हैं।

आचार्य परम्परा में एक आचार्य हुए आचार्य मानतुंग स्वामी-जिन्हें राजा भोज ने 48 तालों में बंद कर दिया। भक्ति का चमत्कार यह हुआ कि 48 ताले टूट गये राजा भोज उनके चरणों में आया, क्षमा माँगी और कहा मैं नहीं जानता था आप तपस्वी हैं आपकी इतनी शक्ति है एक निर्दोष को मैंने बंधन में डाल दिया। एक सती चंदन बाला थी, कहा जाता है-महावीर स्वामी की वह मौसी कहलाती थी, एक सेठ ने उसे बंधन में डाल दिया था किन्तु कहा जाता है भक्ति की पुकार से महावीर स्वामी उसके द्वार तक आये और भगवान् महावीर स्वामी के पहुँचते ही उसके बंधन टूट गये ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण हैं। सेठ सुदर्शन या वज्रकर्ण कितने ही ऐसे उदाहरण हैं जिन्हें बंधन में डाल दिया था किन्तु आत्मा की शक्ति प्रगट हुयी तो वे बाहर के बंधन को ही नहीं कर्मों के बंधन को भी खोलने में समर्थ हुए।

गुलामी तब तक गुलामी दिखाई देती है जब तक हम उसे गुलामी समझते हैं। हमारी आत्मा आज भी सुख और शांति का अनुभव कर सकती है किन्तु अपने ही अशुभ कर्म के कारण, अपने ही दुष्कृत्यों के कारण, अपने ही पाप कर्म के कारण, अपनी ही गलतियों के कारण आत्मा में दु:ख का अनुभव करते हैं। जब कभी भी व्यक्ति एकांत में आँख बंद करके बैठता है उसे अंदर में पश्चाताप भी होता है। मैं नहीं मानता यहाँ पर बैठे सभी भाईयों में सभी दोषी हों, ठीक है शासन की जैसी प्रक्रिया रही हो कई बार ऐसा भी होता है व्यक्ति निर्दोष होते हुये भी यहाँ पर आ सकता है। क्षणभर का अपराध, क्षणभर की भूल, दीर्घ काल तक के लिये दु:खी करने के लिये मजबूर करती है।

महानुभाव ! मैं समझता हूँ आपकी पीड़ा को जब घर में त्यौहार होता है तब आपकी माँ-बहिन की आँखों में आँसू होते हैं। आपके वृद्ध पिता, बेटा, भाई परिवारीजन किस प्रकार से आपके वियोग में

दु:खी होते होंगे। आपको भी लगता होगा आज दिवाली का दिन है और हम यहाँ हैं। एक क्षण का अपराध, एक छोटी सी भूल यहाँ तक खींच कर ले आयी। सुबह का भूला व्यक्ति शाम को यदि ठिकाने पर पहुँच जाये तो वह भूला हुआ नहीं कहलाता। मैं समझता हूँ शासन ने आपको यहाँ दण्ड देने के लिये नहीं रखा है। शासन की यह व्यवस्था है गलती किसी की भी हो यह सुधरने की अवस्था/व्यवस्था है। यहाँ पर भी व्यक्ति सादगी से प्रभु परमात्मा का स्मरण करके, भक्ति पूजा करके अपनी आत्मा से नाता जोड़ सकता है। जब अपना हृदय पवित्र होता है तो हर एक चेहरे पर अपना चित्र होता है, जब हर एक चेहरे पर अपना चित्र होता है तब दुनियाँ में कहीं भी जाने पर हर कोई अपना मित्र होता है।

इन कुसंस्कारों की काली छाया को मिटाना है और सुसंस्कारों को प्राप्त करना है ये आपका हमारा जीवन अमूल्य है।

''यूँ तो ये जीवन बहुत खूबसूरत है,
फिर भी इसे सम्भालने की बहुत जरूरत है।
यदि इसे नहीं संभाला तो शैतान का घर,
और संभाल लिया इसे तो ये भगवान् की मूरत है।''

महानुभाव ! अपने प्रभु परमात्मा जिसे आप अपना इष्ट देव मानते हैं उनकी साक्षी में संकल्प लिया जा सकता है कि मैं कभी हिंसा नहीं करूँगा। यदि क्रोध के आवेश में कोई गुनाह कर दिया या मुझ पर आक्षेप लगा है कि बहू को जलाया, लूटपाट की तो हो सकता है आज मैंने यह कृत्य न किया हो किन्तु पूर्वभव में मैंने किया था इसीलिये मुझे आज यहाँ आना पड़ा, आप यहाँ आकर के पश्चाताप करते हुये आगे के लिये संकल्प ले सकते हैं। भगवान् महावीर स्वामी ने अपनी दिव्य ध्वनि में कहा-संसार का प्रत्येक प्राणी परमात्मा बन सकता है। जब एक कंकर शंकर बन सकता है तो प्रत्येक कंकर शंकर

बन सकता है प्रत्येक आत्मा परमात्मा बन सकता है किन्तु पुरुषार्थ हमें स्वयं करना पड़ेगा। कोई भी भगवान आकर हमें भगवान् नहीं बना देगा, कोई भी व्यक्ति आकर हमें नरक में नहीं धकेल देगा और कोई भी भगवान् या व्यक्ति मिलकर हमें स्वर्ग में नहीं बैठा देगा। यदि हम स्वर्ग जायेंगे तो अपनी ही अच्छाई से, भलाई से, तपस्या से या पूजा भक्ति से जायेंगे। यदि कोई नरक जाता है तो बुरे कार्य करने से जाता है कोई भी किसी को धक्का देकर नरक नहीं पहुँचा सकता। कोई यदि मोक्ष प्राप्त करता है तो पहले अपने कर्मों के बंधनों को तोड़ता है, वह तपस्या करता है जिसने भी तपस्या की उसने आत्मा के वैभव को प्राप्त किया।

मनीषी विद्वान कहते हैं-**''जब जागो तभी सवेरा''**

प्रत्येक व्यक्ति भूल करता है अज्ञानता में करता है, उसे होश नहीं होता मैं क्या कर रहा हूँ। किसी पर लाठी का वार कर दिया था उस समय तुम्हें होश नहीं था किन्तु जब वार हो गया तब तुम्हें अहसास हुआ। उसने रिपोर्ट लिखाई और तुम्हें बंधन में डलवा दिया। कहीं न कहीं चूक तो तुमसे अवश्य हो गयी है किन्तु यह जरूरी नहीं है कि चूक बार-बार जिंदगी भर होती रहे। कई सारे भाई यहाँ मुझे 20-25 साल के दिख रहें हैं इनका जीवन संभालने के योग्य जीवन है। मैं सोचता हूँ हर कारागार में अच्छी-अच्छी पुस्तकें भी रखनी चाहिये न जाने कब कौन सा व्यक्ति अच्छी पुस्तक को पढ़कर बदल जाये, कब किसका जीवन ही बदल जाये। यहाँ समय-समय पर संत महात्माओं का उपदेश होना चाहिये, सत्संग होना चाहिये, किसी की आत्मा पर नहीं लिखा कि यह हमेशा पापी रहेगा। घृणा पाप से करो पापी से नहीं क्योंकि कोई भी पापी सुधर सकता है, अधर्मी भी धर्मात्मा हो सकता है।

व्यक्ति की नियति, प्रकृति भाग्य को हम जान नहीं सकते। ये कर्मों के खेल व्यक्ति को कहाँ से कहाँ ले जाते हैं। अभी भी बहुत

समय है, कल्याण करने के लिये एक मिनट का समय पर्याप्त होता है। 1 मिनट में हमारी जिंदगी बदले या न बदले किन्तु 1 मिनट में हम जितना अच्छा सोच सकते हैं उससे हमारी पूरी जिंदगी बदल सकती है।

कई चोर डाकुओं के बारे में पढ़ा सुना कि ज्यों ही उन्हें आत्म ग्लानि हुई त्यों ही वे साधुसंत बन गये, ऐसा नहीं कि जिंदगी बदलने के लिये वर्षों का समय चाहिये या महीनों का समय चाहिये ऐसा कोई जरूरी नहीं है। यहाँ पर अनेक मजहबों को मानने वाले बैठे हैं, कोई हिन्दु, कोई वैष्णव, कोई मुस्लिम, कोई ईसाई धर्म को मानने वाला है। किंतु मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर करना। ''हिन्दु, सिक्ख, बुद्ध, मुस्लिम, ईसाई, जैन ये तो बाद की चीज हैं हम पहले अच्छे इंसान बनें'' अब कोई ऐसा मजहब आये जिसमें आदमी को आदमी बनाया जाये।

हम चले देवता कहलाने पर मानव भी कहला न सके।
हम चले विश्व विजयी बनने पर विजय स्वयं पर पा न सके॥
हम चाहते हैं बस कैसे भी जल्दी से भगवान् बनें।
किन्तु नहीं चाहते उससे पहले हम अच्छे इंसान बनें।

हम तो ये चाहते हैं कि आप सच्चे जैन, सच्चे मुस्लिम, सच्चे ईसाई आदि धर्म मानने वाले बाद में बनना सबसे पहले एक अच्छे आदमी बनना। जिस आदमी ने आदमी की कीमत समझी वही इन नजरों में खुदा के समान है। तुमने अपनी आदमीयत की कीमत नहीं समझ पायी इसलिये भूल कर बैठे। भूल सुधारने का अवसर अभी भी है, तुम्हारी एक भूल के कारण पचासों व्यक्तियों की आँखों में आँसू आज भी हैं, तुम्हारी एक भूल के कारण तुम्हारी निगाह कितनी बार नीची होती है, तुम्हारी एक भूल के कारण तुम्हें स्वयं लगता है मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये और कई बार भूल नहीं हुयी किन्तु ऐसे कर्म का उदय आ गया, गलती हुयी एक से, सामने वाले ने चार के नाम

लिखाये तो चारों को पकड़ के अंदर कर दिया। चाहे बाद में बरी कर दिया जाये किन्तु उस समय तो आना ही पड़ा। महानुभाव ! इस बात को आबाल वृद्ध सभी जानते हैं कि व्यक्ति का कल्याण, व्यक्ति के जीवन में सुख शांति की प्राप्ति धर्म के माध्यम से होती है।

वह धर्म क्या है? कोई कहता है अहिंसा धर्म है, कोई कहता है दया धर्म है, कोई सत्य को धर्म कहता है, कोई कहता है परोपकार सेवा करना धर्म है। धर्म की बहुत सारी परिभाषायें हो गयीं किन्तु वास्तव में धर्म है क्या? नारायण श्री कृष्ण लिखते हैं-

कर्त्तव्य मेव धर्मः व्यक्ति का जो स्वयं का कर्त्तव्य है उसका पालन करना ही धर्म है। आप आज यहाँ (जेल में) हैं तो यहाँ रहकर भी यदि ईमानदारी से उस कर्त्तव्य का पालन किया जाये तब निःसंदेह आप धर्मात्मा की श्रेणी में आ जायेंगे। जो घर में रहकर भी अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता तो वह धर्मात्मा नहीं हो सकता है।

एक बार पूज्य गुरुदेव राष्ट्रसंत आचार्य विद्यानंद जी महाराज के पास कुछ विदेश के लोग आये। वे आचार्य श्री से बड़े प्रभावित हुये और प्रणाम करके जब जाने लगे तब आचार्य श्री ने उन्हें कुछ धर्म की पुस्तकें दी। पुस्तकें प्राप्त करते ही वे आपस में एक दूसरे को देखने लगे और मुस्कुराने लगे।

महाराज श्री ने पूछा-क्या बात है आप मुस्कुरा रहे हो, कुछ कहना चाहते हो क्या? वे बोले-महाराज ये धर्म की पुस्तकें हैं, हम न धर्म को जानते हैं और न मानते हैं। महाराज ने कहा-ऐसा हो ही नहीं सकता, संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो धर्म को नहीं मानता, ये हो सकता है आप धर्म की परिभाषा नहीं जानते हों। वे बोले महाराज श्री हम कह रहे हैं ना कि हम न ही धर्म को जानते हैं और न ही मानते हैं। महाराज श्री ने कहा अच्छा ! एक बात बताओ।

एक व्यक्ति बाजार से लौट रहा था बड़ा ईमानदार सरल सहज था, रोड पर चलते हुये अचानक किसी व्यक्ति ने पीछे से उस पर प्रहार कर दिया। वह बेचारा बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। अच्छा अब ये बताओ जिस व्यक्ति ने प्रहार किया था उसने अच्छा किया या बुरा ? विदेशी बोले-महाराज श्री इसमें बताने की क्या बात है जिसने लाठी से प्रहार किया है उसे हम ही क्या पूरी दुनिया बुरा कहेगी। महाराज जी ने कहा-मैं पूरी दुनिया से नहीं तुमसे पूछता हूँ वह व्यक्ति अच्छा है या बुरा, उन्होंने कहा बुरा।

वह व्यक्ति जब रोड पर बेहोश पड़ा था तभी चार लड़के वहाँ से आ रहे थे कॉलेज से लौटते वक्त उन चारों ने देखा कि यह तो जीवित है उठाकर अस्पताल ले गये, उसके घर तक समाचार भेजा, महाराज श्री ने पूछ लिया ये बताओ उन चारों लड़कों ने उस व्यक्ति के साथ अच्छा किया या बुरा किया। महाराज ! उन चारों ने तो बहुत अच्छा किया जो रोड पर मूर्च्छित पड़ा था उसे अस्पताल में भर्ती किया इसे तो दुनिया भी कहेगी कि अच्छा किया। उसने बहुत अच्छा किया। पूज्य गुरुदेव बोले-तो बस! यही धर्म है संसार में जितनी भी बुराईयाँ हैं, जितने भी बुरे काम हैं वे सभी पाप कहलाते हैं और संसार में जितनी भी अच्छाईयाँ हैं वे सब धर्म कहलाती हैं। धर्म की यही परिभाषा है।

महानुभाव! भगवान् महावीर स्वामी ने धर्म के लक्षण कहे धर्मात्मा व्यक्ति कौन है? पहला लक्षण दिया जो क्रोध नहीं करता है। अपने आपे से बाहर नहीं होता है। यदि कोई सामने वाला गलती भी कर जाये तो उसे क्षमा कर दे, क्योंकि क्रोध एक ऐसी अग्नि है जहाँ भी जलती है सब स्वाहा कर देती है। क्रोध की अग्नि से कुछ भी नहीं बचा, आग का गोला आप हाथ से उठाकर के फेंकोगे तो सामने वाला जले या न जले किन्तु हाथ में उठाने वाला पहले जलेगा, ऐसे ही क्रोध

करने से जो व्यक्ति क्रोध कर रहा है उसका खून जलता है, परिणाम खराब होते हैं, मन में क्रूरता आ जाती है। इसलिये भगवान् महावीर स्वामी कहते हैं कभी भी किसी भी व्यक्ति पर क्रोध मत करो, किसी से बैर मत बांधो, बदले की भावना न रखो, अपने आपको बदलो। ये बदले की भावना दु:ख देने वाली है। दूसरी बात भगवान् महावीर स्वामी ने कही जीवन में कभी अहंकार नहीं करना अहंकार किसी का टिका नहीं है। चाहे कोई कितना भी बड़ा क्यों न हुआ हो अहंकार रावण का भी नहीं रहा।

अहंकार करता है सूर्य आकाश पर चढते हुये।
शाम को देखा उसे सिर झुका ढलते हुये॥

यह अहंकार किसी का नहीं टिका, आप से भी या तो क्रोध के कारण गलतियाँ हुयीं होंगी, आवेश में आकर के आप क्रोध को पी न सके होंगे या अहंकार के कारण मैं देख लूँगा उसे, बस! देखने के चक्कर में कोई गलती कर बैठे उसका परिणाम यह हुआ कि यहाँ तक आना पड़ा। विनय पूर्वक जियो, विनयपूर्वक जीने वाला ही सच्चा इंसान माना जाता है। अरे ! झुकने में अपना क्या जाता है।

तुम दो हाथ जोड़ोगे दुनिया तुम्हारे आगे हाथ जोड़कर सम्मान करेगी। तुम किसी को थप्पड़ दिखाओगे तो दुनिया से तुम्हें भी घूँसे और लाठियाँ मिलेंगी। किसी को प्यार करने से प्यार मिलता है दुतकारने से दुतकार मिलती है। दूसरी बात कही-विनय से रहो, झुक कर रहो। कई एक व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो अपने माँ-बाप के आगे भी नहीं झुकते, जिन्होंने जन्म दिया, पाला पोसा। जो अपने माँ-बाप के आगे नहीं झुका वह गुरु और प्रभु के आगे क्या झुकेगा। अपने माता-पिता जीवंत देवता हैं। जिन्होंने अपने घर के देवता को प्रसन्न नहीं किया उनसे कभी बाहर के देवता प्रसन्न नहीं होते। अगली बात

भगवान् महावीर स्वामी कहते हैं जीवन में कभी छल-कपट मत करो ये छल कपट कभी किसी का चला नहीं है।

दगा किसी का सगा नहीं है, नहीं मानो तो कर देखो।
जिस-जिसने भी दगा किया है, उसके जाकर घर देखो।

जो दूसरों के लिये कुँआ खोदता है उसके लिये स्वयं खाई तैयार हो जाती है। इसलिये भगवन् कहते हैं-जीवन में सरलता हो सहजता हो जीवन में कोई छल कपट न हो।

अगली बात कहते हैं-जीवन में लोभ की प्रवृत्ति मत रखो लोभ सभी पापों का बाप है जो कोई भी लोभ करता है वह व्यक्ति कोई भी पाप कर सकता है। जिसके जीवन में संतोष है वह सोचता है प्रभु परमात्मा ने हमें जो कुछ भी दिया हम उसमें संतुष्ट हैं यदि हमें चाहिये तो प्रभु परमात्मा से माँगेंगे अन्य किसी की छीना-झपटी नहीं करेंगे। जीवन में कभी लोभ नहीं करेंगे न्याय पूर्वक चलेंगे। भगवन् ! मेरे कदम भूल कर भी अन्याय की तरफ न जायें, जीवन में कभी ऐसा कृत्य नहीं करूँ जो मेरे पद के प्रतिकूल हो।

अगली बात कही-जीवन में सत्य होना चाहिये। निश्चय से सत्य ही भगवान् है। जहाँ सत्यता नहीं वहाँ कुछ भी नहीं। ये 5 बातें गृहस्थ के लिये कहीं-वह क्षमावान् हो, वह विनम्र बने, छल कपट का त्याग करे, संतोषी वृत्ति को धारण करे और सत्यवादी बने। जिसके पास ये पाँच चीजें होती हैं वह संन्यासी बनने के काबिल होता है वह संयम को स्वीकार करता है, समग्र त्याग करने को तैयार होता है, अध्यात्म भाव से अकिंचन्य भाव को प्राप्त करता है और परम धर्म को प्राप्त कर लेता है। ये पाँच धर्म गृहस्थों के लिये कहे और अंत के पाँच धर्म साधु के लिये कहे, जीवन में इन पाँच धर्मों को जो कोई भी स्वीकार करता है। उसे धर्म का फल अवश्य मिलता है। ध्यान रखना-धर्म

किसी एक व्यक्ति की बपौती नहीं है वह तो हर प्राणी का है, धर्म तो ऐसे है जैसे मिश्री का टुकड़ा।

मिश्री का टुकड़ा कोई भी खाए चाहे हिन्दु खाये, चाहे बौद्ध खाये, चाहे सिक्ख खाये, जो भी खायेगा उसका मुँह मीठा होगा। मिश्री का टुकड़ा चाहे बैठकर खाओ चाहे दौड़कर, चाहे घूम कर वह मीठा ही होगा। मिश्री का टुकड़ा चाहे दिन में खाओ या रात में खाओ साथ में खाओ या एकान्त में खाओ मुँह कैसा होगा? मीठा। ऐसे ही धर्म है चाहे धर्म सुबह करो या शाम, जब भी करो तभी आनंद आता है और वह धर्म सभी के लिये है। पाप-बुरे कार्य कोई भी व्यक्ति कभी भी करे उसका फल दु:ख है, जैसे नमक की डली कोई भी, कभी भी, कहीं भी खाये वह मुँह को खारा करने वाली होती है ऐसे ही बुरा कार्य-पाप कहीं भी कैसे भी करें उसका फल दु:ख ही होता है इसलिये प्यारे बन्धुओं, मैं आप सबसे यही कहना चाहता हूँ आप सब पापों से बचो। बहुत सारे दुष्कृत्य हैं जिन्हें छोड़कर आपका जीवन चल सकता है। ऐसा नहीं है कि पापों को छोड़कर आपका जीवन नहीं चले। पुण्य के सहारे भी जीवन जीया जा सकता है।

कुछ लोग कहते हैं बिना पाप के काम नहीं चलता पर हम कहते हैं बिना सत्य के, बिना पुण्य के काम नहीं चलता। जीवन में पुण्य तो करना ही चाहिये। सबसे बड़ा पाप इंसान का खान-पान है जो पाप को पैदा करने वाला होता है।

जो इंसान भगवान् को मानने वाला है मैं समझता हूँ वह अपने पेट को कब्रिस्तान न बनायेगा, वह कभी अण्डा-माँस शराब आदि का सेवन नहीं करेगा हमारे किसी भी भगवान् ने अण्डा माँस शराब का सेवन नहीं किया। भगवान् तो मेहरबान होता है रहम दिल होता है। वह कभी किसी का माँस काटकर नहीं खाता है। मेरी बात यदि मानो तो जीवन में कभी अण्डा माँस शराब का सेवन नहीं करना। इस

खानपान के बिगड़ने से मन बिगड़ता है पाप होते हैं। जैसे हमें अपने प्राण प्यारे होते हैं वैसे सभी को अपने प्राण प्यारे होते हैं। माँस आदि का त्याग करके हम बहुत सारे जीवों की रक्षा कर सकते हैं। प्रकृति ने इंसान को खाने के लिये मेवा मिष्ठान दिया उसी का सेवन करना चाहिये।

महानुभाव ! जब व्यक्ति का मुँह झूठा होता है तब वह गीता का पाठ नहीं करता, हनुमान चालीसा नहीं पड़ता, रामायण का पाठ नहीं करता, कुरान नहीं पढ़ता, जैनागम नहीं पढ़ता तो जिस मुँह में अण्डा शराब गया हो वह अपने भगवान् का नाम कैसे ले लेगा। जिस मुख से अपने प्रभु परमात्मा का नाम लिया जाता है उस मुख में इन अभक्ष्य वस्तुओं का डालना कहाँ तक उचित है।

मैं आप सभी के लिये बस यही भावना भाता हूँ कि आप लोग कम से कम इस चार दीवारी में तो इन चीजों का त्याग करें और यहाँ से निकलकर भी उनका सेवन न करें। मैं एक बात और कहना चाहता हूँ-मैं समझता हूँ कि आपके मन में प्रतिशोध की भावना होगी कि उस व्यक्ति की वजह से मैं आज यहाँ पर हूँ देख लूँगा उसे भी। किन्तु मैं आपसे कहता हूँ इस भावना को छोड़ें-क्षमा को धारण करें। ''क्षमा वीरस्य भूषणं'' क्षमा करना वीर पुरुषों का आभूषण होता है। बस यही सोचो मेरे पूर्व कर्म का उदय है जो आज मैं यहाँ पर हूँ मैं यहाँ से निकलकर कोई भी बदले की भावना नहीं रखूँगा ''तूने जो किया उसका फल तुझे मिलेगा'', यदि यह बात आपने धारण कर ली तो एक न एक दिन आप भी हमारी संतों भगवंतों की श्रेणी में आ जायेंगे। मैं तो बस यही चाहता हूँ समाज में, देश में, नगर में अधिक से अधिक जिनागार बनें कारागार नहीं। इन्हीं भावनाओं के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

''शांतिनाथ भगवान् की जय''

''दवा की खुराक लेने से बुखार उतर जाता है, फिर भी कोर्स पूरा करना पड़ता है, छात्र को पेपर ३ घंटे में पूर्ण करना होता है, फिर भी उसको ३६५ दिन पढ़ना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार मृत्यु तो एक पल में आ जाती है फिर भी उस मृत्युमहोत्सव के लिये समाधि की तैयारी के लिये वह साधक पूरे छद्मस्थ काल तक साधनारत् रहता है।''

संसार के प्रत्येक दर्शन, प्रत्येक मत और मतान्तर, विज्ञ पुरुष, वैज्ञानिक, साहित्यकार, दार्शनिक सभी जीने की कला सिखाने की बात कहते हैं। कोई कहता है दूसरे की चिन्ता करके जियो, कोई कहता है दूसरे की चिन्ता भूल करके जियो, कोई कहता है स्वयं की चिंता करो, कोई कहता है स्वयं की चिंता भी मत करो, कोई कहता है हँसते खेलते रहो, मौज मस्ती करते रहो, कोई कहता है सदैव सावधान रहो, कोई कहता है सब कुछ भूल जाओ, कोई कहता है सब कुछ याद रखो, कोई कहता है ज्ञान के साथ जियो तो कोई कहता है शान के साथ जियो, कोई कहता है जीवन में कोई क्रान्ति करो, कोई कहता है जीवन में शांति से बैठो, कोई कहता है संयम के बिना जीना बेकार है तो कोई कहता है असंयम के साथ जीवन में कोई सार नहीं

है, कोई कहता है शीलव्रत का पालन करो तो कोई कहता है शील में क्या रखा है मौजमस्ती करो, कोई कहता है धर्म को आधार बनाकर जीवन जियो तो कोई कहता है धर्म तो बुढ़ापे का सौदा है अभी तो मौज मस्ती कर लो।

महानुभाव ! संसार में जितने भी प्रकार के प्राणी दिखाई देते हैं उन सबकी मान्यतायें, धारणायें अलग-अलग हैं और कोई व्यक्ति अपनी मान्यता दूसरे पर थोपने का दु:साहस भी करता है तो सामने वाला कह देता है अपनी धारणा अपने पास रखो मुझे तुम्हारी मान्यता की आवश्यकता नहीं है। अपना जीवन अपना है, न किराये का है, न उधार का है, न भीख में मिला, न वसीयत में मिला, न कहीं से छीन कर लाये हैं, न कहीं से लूट कर लाये हैं, न कहीं डांट डपट कर लाये हैं ये हमारा स्वयं का जीवन है, हम अपने जीवन को जैसे चाहेंगे, वैसे जीयेंगे। जिस जीवन के जीने से हमें स्वयं को संतोष होता है उसी प्रकार का जीवन जीयेंगे, दुनिया को संतोष देने के लिये हमने अनंत जीवन जीये। दुनिया को खुश करने के लिये हमने अनंत काल व्यतीत कर दिया, दुनिया को संतुष्ट करने के लिये हमने अपने शरीर से बहुत साधना की, अपने शरीर पर कष्ट भी सहन किया, किन्तु अपनी आत्मा को संतोष देने के लिये नहीं दूसरों को खुश करने के लिये, दूसरों को रिझाने व मनाने के लिये, दूसरों को अपना बनाने के लिये। किन्तु आ. अमृतचंद्र स्वामी समयसार कलश में कहते हैं कि बस अब बहुत हो गया।

विरम किं परेण कार्य कोलाहलेण

इस कोलाहल के कार्य से अब तो विराम ले लो, इन्द्रियों ने बहुत खटपट मचाई और मन भी बहुत दहाड़ता रहा। जब तक शरीर में सामर्थ्य रही तब तक यह बैल की तरह से कोल्हू में चलता रहा किन्तु इन सबका नतीजा क्या निकला, वही जो तेल को पेलने से निकलता

है, वही जो जल मंथन से निकलता है, वही जो अग्नि में घी डालने से निकलता है, वही जो समुद्र में नदियों के मिलने से निकलता है, वही जो बालू को पेलने से निकलता है।

सारांश शून्य, कुछ नहीं जैसे के तैसे ही रहे। जन्म के समय जितनी प्यास और अतृप्ति थी, मृत्यु के समय में भी प्राय:कर के व्यक्ति के जीवन में उतनी ही प्यास और अतृप्ति रहती है। जीवन में क्या-क्या खाया, क्या-क्या पीया, क्या-क्या भोगा, इसके उपरांत भी तृप्ति कितनी मिली यदि जीवन का ग्राफ बनाकर के देखेंगे तो जीवन का ग्राफ तृप्ति के मामले में डाउन गया है। महानुभाव ! जीवन में क्या कमाया है, क्या गंवाया है, इसे बाहर के पदार्थों से मत आंको, जीवन की उपलब्धि को अपने जीवन के सुख व शांति के क्षणों से आंको। तुम्हारे जीवन में कितने क्षण सुख शांति के साथ व्यतीत हुये, कितने समय तक तुम्हारा चित्त धर्मध्यान के साथ रहा है, कितने समय तक तुम भगवान् के पास बैठे हो।

भगवान् के पास बैठने का आशय शरीर के बैठने से नहीं, भगवान् के पास बैठने का आशय यह है कि तुम्हारे मन में भगवान् कितने समय तक बैठे रहे। जागरूक अवस्था में तुमने भगवान् का कितना ध्यान किया है और भगवान् के पास साक्षात् बैठने जैसी अनुभूति तुमने कितने काल तक की है। तुम्हारा मन दुष्टता के साथ कितना चला है, तुम्हारे मन रूपी घोड़े ने कितने चाबुक खाये हैं और कितनों-कितनों के खेत उजाड़े हैं, कितने रस्सों से बाँधकर रखा है, क्या आपका मन रूपी घोड़ा सही दिशा में चल पाया है, मन रूपी बंदर को क्या आप नियंत्रण कर पाये हैं। यह केवल उजाड़ता ही उजाड़ता रहता है जब इसे कोई हरा-भरा सघन वृक्ष मिल जाये, जो फलों से परिपूरित हो तभी यह मन रूपी बंदर आनंद को प्राप्त कर पाता है अन्यथा इसे उजाड़ने में ज्यादा आनंद आता है, कहीं शाखा

पकड़ के हिला देगा, कहीं कुछ तोड़ देगा, फैला देगा, चाहे वह सामग्री उसके काम की हो या नहीं हो उसे तो उसी में आनन्द आता है।

यही दशा तो मन की है, संसार में जीने की कला संसार के सभी व्यक्तियों ने सिखाई किन्तु जीने की कला सीख न पाये। अध्यापक स्कूल में बच्चों से खूब कहते हैं-अच्छे से पढ़ो किन्तु फिर भी बच्चे अच्छे से पढ़ नहीं सकते। यदि बच्चों को अच्छी तरह से पढ़ाने का कोई तरीका है, अगर कोई भय दिखा सकते हैं तो वह एक ही तरीका है वह है अच्छे से नहीं पढ़ोगे तो परीक्षा में फेल हो जाओगे इसलिये पढ़ना जरूरी है, अगर परीक्षा में तुम अच्छे नंबर प्राप्त करना चाहते हो, मान सम्मान को प्राप्त करना चाहते हो, इनाम और अपना नाम चाहते हो, तब नि:संदेह तुम्हें परिश्रम करना पड़ेगा। उसे परीक्षा के प्रमाणपत्र का लोभ दिखाकर उसे नाम, मान सम्मान का लोभ दिखाकर उससे दिन-रात मेहनत करायी जा सकती है। ऐसे ही मुनि महाराज से साधना करानी है तो उनसे कहो समाधि को सुधारना चाहते हो तो साधना को सुधारो। यदि कोई मजबूत अच्छा महल बनाना चाहते हो, तो पहले नींव मजबूत करना जरूरी है उतना ही जरूरी है दीवार और पिलर भी मजबूत हों। इसी तरह जीवन की इमारत भी तभी मजबूत हो सकती है जब हमें यह लोभ दिखाया जाये कि यदि तुम्हें अपनी सुगति चाहिये तो अच्छा मरण करो, सुगति सुमरण से ही मिलती है और सुमरण करना चाहते हो तो जीवन भर भगवान् का सुमिरन करो। सुमिरन से सुमरण होता है, जो प्रभु का सुमिरन नहीं करते हैं, धर्म का, कर्त्तव्य का सुमिरन नहीं करते हैं उनके जीवन में सुमरण नहीं हो पाता।

संसार में ऐसा कौन सा प्राणी है जो रो-रोकर के, बिलख बिलख करके प्राण देना चाहता हो, कोई नहीं चाहता, सभी चाहते हैं वीर प्रभु

की मौत। सभी भगवान् की तरह मृत्यु चाहते हैं कि शरीर को एहसास भी न हो कि प्राण कब निकल गये अथवा कब इस शरीर को छोड़ दूसरे शरीर में प्रवेश कर गये। कहीं शरीर को आत्मा से अलग करने में आँखों में आँसू दिखाई दिये, बेचैनी हो रही है, श्वांस चल रही है लेकिन होश नहीं है, शरीर मिट्टी की तरह से पड़ा है आयु पूरी कर रहा है तो पुनः भगवान् से लोग कहते हैं कि हे भगवान् ! इसकी मिट्टी जल्दी समेट लो, हे भगवान् ! ''ऐसी मौत काऊ को न देओ'' ऐसी मृत्यु तो दुश्मन को भी न दे, मृत्यु तो सभी शांति से चाहते हैं। सभी चाहते हैं कि जीवनभर भले ही मैंने दुःख सहन किया किन्तु अब मृत्यु तो अच्छे से हो जाये, विदाई की बेला तो अच्छे से हो, शरीर छोड़ते समय रागद्वेष, क्लेश, संक्लेश के भाव न आयें। जाते समय तो कम से कम समतामय परिणाम रहें किन्तु यह तभी हो सकता है जब जीवन में वैसा अभ्यास कर लिया जाये। जो बालक टूर्नामेंट में जाने से पूर्व अभ्यास करते हैं, खेलते रहते हैं तो वहाँ जाकर के सफल हो जाते हैं और जो यहाँ पर अभ्यास नहीं करते हैं तो वहाँ जाकर पहले ही नंबर पर आउट हो जाते हैं।

महानुभाव ! यदि अपने जीवन को सफल बनाना है तो आवश्यक है ''मृत्यु की कला सीखना''। जीवन में मृत्यु की कला सीखना बहुत जरूरी है। संसार में यूँ तो बहुत सी कलायें हैं।

''कला बहत्तर पुरुष की तामें दो सरदार
एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार।''

जीव की जीविका चलाने वाली कलायें संसार के सभी टीचर सिखाते रहते हैं, माता-पिता सीख देते रहते हैं किन्तु जीव के उद्धार की कला सिखाने वाले केवल एक ही अध्यापक हैं वह हैं दिगम्बर संत। यदि आत्मा के उद्धार की कला सीखनी है तो वह दिगम्बर संत के पास ही मिलेगी।

''णिग्गंथ संगं कुरु मुक्ति बीजं''

''निर्ग्रंथ साधुओं के साथ में ही मुक्ति का बीज मिलता है, उनके चरणों में ही मुक्ति का बीज मिलता है अन्य कहीं भी मुक्ति का बीज मिलता ही नहीं है। कला तो सभी सीखते हैं। लोग कहते हैं-

जिसके पास है कोई अच्छी कला, उसका होता है भला ही भला

चाहे अच्छा गला हो उसके माध्यम से वह जग का भला बन जाता है। कला कोई भी हो चाहे तैरने की हो, दौड़ने की हो, पढ़ने की हो, खाना बनाने की हो, चाहे खाना खाने की हो, खाना खिलाने की हो, चाहे कोई कला मशीनरी को तैयार करने की हो, कैसी भी हो वह सीखना चाहता है। वह चाहता है, जिस कला के माध्यम से मुझे मान सम्मान मिले जिस कला से मेरी आजीविका भी चले और मैं सम्मान के साथ जीवन यापन कर सकूँ ऐसी कोई न कोई सद्कला मेरे पास आना चाहिये। किन्तु ये सब कलायें व्यर्थ हैं जो सिर्फ तुम्हें क्षण भर का मान सम्मान दे सकती हैं, क्षण भर के लिये तुम्हें वित्त दे सकती हैं तुम्हें कोई अर्थ दे सकती हैं, वास्तव में ये कलायें परमार्थ की सिद्धि नहीं कर सकतीं। ये कलायें तुम्हें वित्तरागी तो बना सकती हैं वीतरागी नहीं बना सकती। ये कलायें क्षणभर के लिये तुम्हें सुख दे सकती हैं, किन्तु शाश्वत सुख नहीं दे सकतीं। यदि शाश्वत सुख को प्राप्त करना है तो समस्त असद्कलाओं को छोड़कर, समस्त बलाओं को छोड़कर दिगम्बर साधु के चरणों में आ जाओ तो जीवन जीने की कला भी सीख जाओगे और संसार से तिरने की कला भी सीख जाओगे।

आचार्य अमृतचंद्र स्वामी जी ने एक बहुत अच्छी बात कही पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय ग्रंथ में-

मरणान्तेवश्यमहं विधिना सल्लेखनां करिष्यामि।
इति भावनपरिणतो, नागतमपि पालयेदिदं शीलम्॥

मैं मरणकाल में विधिपूर्वक सल्लेखना को अवश्य धारण करूँगा इस प्रकार की भावना रखने वाला पुरुष मरणकाल आने के पहले ही इस शील का पालन कर लेता है।

मरण के समय में मैं विधिपूर्वक अवश्य ही सल्लेखना करूँगा, सबसे पहले ये व्रत लेना चाहिये। इस व्रत की सिद्धि के लिये 12 व्रतों को स्वीकार करना होता है। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत। पहले सल्लेखना का व्रत है। सबसे पहले बालक को मंदिर में ले जाओ भगवान् के सामने णमोकार मंत्र सुनाकर के जीवन में संस्कार दो। रे बालक ! तू जन्म तो ले चुका है जन्म तेरे आधीन नहीं था किन्तु मृत्यु तेरे अपने हाथ में है। जन्म महोत्सव तो तेरे जन्म के बाद मनाया जाता है किंतु महोत्सव तो वही सार्थक है जो तेरे मरने के बाद भी सभी याद करें। ऐसे नेक कार्य कर, जिसे याद कर-कर दुनियाँ रोती रहे और तेरे बारे में कहे कि ऐसा सूर्य अस्त हो गया जो सैंकड़ों वर्षों में एक आध आता है। हजारों सालों में ऐसा सूर्य आता है जिसने संसार के अंधकार को, मिथ्यात्व के, अज्ञान, असंयम के अंधकार को दूर कर दिया। जिसके दिव्य प्रभाव से हमें सुख शांति का वेदन होता था, हमें आनंद आता था। व्यक्ति की आँखें गीली हो जायें न केवल तत्काल में अपितु जब-जब तुम्हें याद करे तब-तब गीली हो जायें और आँखें गीली ही न हों तुम्हें याद करने मात्र से उसके परिणाम विशुद्ध हो जायें वह कषायों को, विकारों को, विषयों को भूल जाये, ऐसा काम करके जाना।

अपने जीवन को सफल और सार्थक बनाने के लिए 8 वर्ष की आयु से ही उसे समाधि सल्लेखना का संकल्प ले लेना चाहिये। मरण काल में अवश्य ही मैं विधिपूर्वक सल्लेखना करूँगा इस बात को संकल्पपूर्वक वही कह सकता है जिसको निकट भविष्य में मोक्ष को प्राप्त करना है। उसके ही मन से ऐसी बात निकल सकती है जो

संसार का अंत करके, परमात्मपद को प्राप्त करने की पात्रता रखता है अन्यथा वह इस बात को कह नहीं सकता। मृत्यु का नाम सुनते ही लोग घबराते हैं, कोई किसी से कह दे तू मरने वाला है। वो कहेगा-मैं क्यों मरूँ, मरें मेरे दुश्मन। तुम मरने के नाम से डरते हो, मृत्यु को देखकर रोते हो, मृत्यु को देखकर उसे भूलते हो, क्या मृत्यु तुम्हें भूल जायेगी, क्या मृत्यु जिससे डरते हो वह तुम्हें छोड़ देगी, मृत्यु तो एक दिन अवश्य आयेगी।

''जातस्य ध्रुवं मृत्यु''-जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु नियम से होगी ही।

सदा न फूले केतकी सदा न सावन होय।
सदा न यौवन थिर रहे, सदा जिये न कोय॥

कोई भी फूल सदा खिलता फूलता नहीं है मुरझाता भी है, सदा ही सावन नहीं होता है, 12 महीने में से एक महीना ही सावन का होता है और सदा यौवन किसका स्थायी रहा है, सदा जीवित कौन रहता है। जिसने जन्म लिया है उसे मृत्यु के मुंह में जाना ही पड़ेगा और जाना पड़ेगा नहीं, यूँ कहो जन्म ही मृत्यु के मुख में होता है इसलिये कई बार तो जन्म के पहले ही मृत्यु हो जाती है, जन्म के मुख में मृत्यु नहीं आती, जन्म के मार्ग में मृत्यु नहीं आती, मृत्यु के मार्ग में ही जन्म होता है। जीवंत रहना आश्चर्य है मृत्यु का क्या आश्चर्य मृत्यु तो हमेशा है, जीने के लिये बाह्य वस्तुओं की आवश्यकता है, जीने के लिये भोजन की, जल की आवश्यकता है, किसी के स्नेह की आवश्यकता है, जीने के लिये ज्ञान के प्रकाश की आवश्यकता है किन्तु मृत्यु के लिये इन सबकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

एक व्यक्ति ने अपनी मृत्यु से डरकर, प्राणों की रक्षा करने के लिये एक ऐसा जार बनवाया जिसमें वह सुरक्षित बैठ जाये। एक

खिड़की छोड़ दी लोगों ने पूछा ये खिड़की क्यों? तो वह बोला जिससे मैं श्वांस ले सकूँ। वे बोले श्वांस के चक्कर में न पड़ इस खिड़की में से मृत्यु आ जायेगी इसे बंद कर दे यदि सुरक्षित रहना चाहता है तो। वह उसमें पैक हो ही पाया था कि मृत्यु को प्राप्त हो गया। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि मृत्यु आई तो आई कहाँ से? उसके यमदूत कहाँ से आ गये न यहाँ खिड़की न दरवाजा। इस काँच में कोई सुराग नहीं है और मृत्यु के उपरांत भी काँच में कोई छेद नहीं है कहाँ से मृत्यु आई और आत्मा कहाँ चली गयी। किसी दिगम्बर संत ने उसे समझाया-कि जीने के लिये खिड़की और दरवाजों की आवश्यकता होती है, जितने खिड़की दरवाजे मकान में होते हैं उतना उसे अच्छा लगता है। जीने के लिये बाह्य श्वांस की आवश्यकता है मरने के लिये तो उस प्राणवायु की भी आवश्यकता नहीं है, वह प्राण वायु कब कहाँ से निकल जायेगी यह भी अहसास न होगा।

महानुभाव ! सैकड़ों वर्षों तक मुनि बनकर साधना करने का जो फल मिलता है, उतना फल सल्लेखना की भावना से मिल जाता है। आप सभी भावना भाना कि सल्लेखना के समय मेरी आँखें गीली नहीं होंगी, मेरे चेहरे पर मुस्कुराहट होगी, इस शरीर का त्याग कर आगे बढ़ जाऊँगा, मुक्ति अंगना मेरा स्वागत करने के लिये लालायित खड़ी है।

सल्लेखना की प्राप्ति पुण्यात्मा को ही होती है। सल्लेखना का आशय होता है-''सत्-लेखना'' अस्तित्व का दिग्दर्शन, जिस सत्ता का कभी अभाव नहीं हो उस सत्ता का अनुभव। सल्लेखना का अर्थ है ''जिसका अभाव हो सकता है उस प्रक्रिया का प्रारंभ''। संसार में आत्मा का स्वभाव कषाय के साथ रहना नहीं है, कषाय को आत्मा को छोड़कर जाना ही पड़ेगा, तो कषायों को कृष करते जाना, उनको मंद करते जाना यही सल्लेखना कहलाती है और अन्त समय में शरीर

साथ न दे तो शरीर को पौष्टिक पदार्थ न दो क्योंकि पच ही नहीं रहे हैं अजीर्ण होता चला जायेगा, इसलिए शरीर को भी कृष करना। शरीर को कृष करने की इतनी आवश्यकता नहीं है, पंचम काल में तीन दिन भोजन न करो तो शरीर तो अपने आप कृष हो जायेगा, हाँ शरीर के प्रति जो आसक्ति है उसे जरूर कृष करना है, खाने-पीने के प्रति जो आसक्ति है उसे जरूर कृष करना है। वृद्ध अवस्था में मरण के समय कुछ अन्तर्मुहूर्त पहले भी व्यक्ति सल्लेखना ग्रहण कर सकता है, कुछ भी खाये किन्तु निरासक्त भावना से खाये तो उसकी सल्लेखना नियम से हो जायेगी और वस्तु का त्याग बचपन से ही कर दिया आसक्ति को नहीं छोड़ा तो वह सल्लेखना को प्राप्त नहीं कर पायेगा। कषायों को कृष करना है, आसक्ति को कृष करना है तब तो सल्लेखना की प्राप्ति होगी। सल्लेखना जो करता है वही सत् को देखने वाला होता है और सत् को देखने का नाम ही है समाधिमरण। समाधि यानि आत्मा में आत्मा की लीनता, समाधि ''समधियस्य'' जिसकी बुद्धि सम है ''स समाधिस्त:'' वह समाधिस्त है। अथवा-

''विनिर्गता मिथ्यात्वादि सर्वव्याधि यस्मात् स समाधि''

अर्थात् जिसके मिथ्यात्वादि सभी विकार भाव नष्ट हो चुके हैं वह समाधि है।

जीवन के अंतिम क्षण तक होशपूर्वक जीना 'समाधि है। और इस जीवन और मृत्यु की पहेली को अंतरंग में सुलझाये बिना सल्लेखना और समाधि नहीं हो सकती। समाधि में साधक समतापूर्वक शरीर को उस प्रकार छोड़ देते हैं जैसे कोई व्यक्ति पुराने गंदे कपड़ों को छोड़कर नवीन वस्त्रों को धारण करता है।

जैसे कोई किसान अनाज को बेचकर उससे प्राप्त धन राशि को अपनी झोंपड़ी में रखता है, उसी झोंपड़ी में वह अन्य बर्तन, वस्त्र

आदि सामान भी रखता है, किंतु अचानक उस झोंपड़ी में आग लग गयी, किसान ने उसे बुझाने का भी बहुत प्रयास किया किन्तु तेज आँधी चलने से आग नहीं बुझी, तो वह किसान उसे मिट्टी का तेल डालकर जलाता नहीं है अपितु उस झोंपड़ी में से अपनी धन राशि को बाहर निकाल लेता है, ठीक उसी प्रकार शरीर रूपी कुटिया में न बुझने वाली आग (मृत्यु) लगने पर अपनी आत्मा में निहित रत्नत्रय रूपी निधी की सुरक्षा करना समाधि है।

प्रज्ञा के धरातल पर जो खड़ा है वही नि:संदेह अपनी बुद्धि को सम कर सकता है। वहीं पर आधि, व्याधि और उपाधि का अभाव हो सकता है। यदि मन में कोई आधि है, कोई विकल्प चल रहा है तब तक समाधि को प्राप्त नहीं कर सकता। मृत्यु के साथ ही जो बीमारी ठीक हो सकती है ऐसी बीमारी के रहते उत्कृष्ट समाधि को प्राप्त नहीं किया जा सकता। भावना भायी जा सकती है भावना से रोग को शमित किया जा सकता है, व्याधि को नष्ट किया जा सकता है, पुण्य से पाप नष्ट किया जा सकता है। और उपाधि जिन शब्दों को सुनकर मन में आनंद आ जाये ऐसे शब्द जो तुमने अपने नाम के साथ जोड़ लिये हैं वे सब उपाधि कहलाते हैं, वर्तमान में न मिलें तो भूत को लेकर साथ चलते हैं, भूतपूर्व अध्यक्ष, मंत्री, विधायक आदि। इन सबको छोड़ना पड़ेगा। चाहें भूत में हों, चाहे अभूत हों चाहें वे देवदूत हों या यमदूत हों ये सब सुख शांति के कारण नहीं हैं, सुख शांति तभी मिलेगी जब वर्तमान में जीना सीख जाओगे। वर्तमान में जीने वाला व्यक्ति ही अपनी चेतना को ऊर्ध्वमुखी और वर्द्धमान बना सकता है।

तज अतीत की यादें सारी, त्याग अनागत मन से।
वर्तमान को वर्धमान बन जीयें निज चेतन से॥

समाधि का आशय यही है कि बुद्धि को सम कर लो, रागद्वेष से रहित कर लो तब तो समाधि हो सकती है, केवल खादी पहनने से समाधि नहीं होती है, जीभ को स्वादी बनाने से समाधि नहीं होती है, बकवादी और वाद-विवाद करने वाला वादी बनने से समाधि नहीं होती है, इसके लिये इन सबको छोड़ना पड़ेगा। जब आत्मवादी बन जाओगे तब समाधि के निकट पहुँच पाओगे अन्यथा बादी बड़ी खतरनाक होती है, बादी अगर पेट में हो जाये तो अजीर्ण हो जाये यदि समाधि की साधना न करोगे तो ज्ञान प्राप्त करके फिर बादी हो जाती है और बादी जिसमें हो गयी उसके जीवन की तो बर्बादी हो गयी। लोग कहते हैं शादी से बर्बादी होती है, लेकिन शादी से नहीं बादी से बर्बादी हो जाती है चाहे किसी की भी बादी हो जाये चाहे धन की बादी हो जाये चाहे भोजन की बादी हो जाये, चाहे ज्ञान से बादी हो जाये, चाहे किसी और से बादी हो जाये, जिसके जीवन में ऐसी बादी हो जाती है, उसके जीवन में बर्बादी हो जाती है।

इसलिये समाधि को प्राप्त करना है। वह समाधि कब लेना है इसके लिये आ. समंतभद्र स्वामी ने कहा-

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निः प्रतिकारे।
धर्मायतनुविमोचन माहुःसल्लेखना मार्याः॥

उपसर्ग में, कहीं जंगल में साधना कर रहे हैं, कोई जंगली जानवर आकर के जान से खत्म कर रहा है तो समाधि ग्रहण कर लो। जब तक उपसर्ग चल रहा है तब तक मेरा शरीर से ममत्व भाव का त्याग है, चार प्रकार के आहार जल का त्याग है, किसी के प्रति मेरा कषाय का भाव नहीं है, राग का भाव नहीं द्वेष नहीं है, मोह नहीं है, मैं संसार के प्रत्येक प्राणी से क्षमा याचना करके सभी को क्षमा प्रदान करता हूँ। उपसर्ग में यदि मृत्यु हो गयी तो समाधि पूर्वक मृत्यु और

यदि बच गया तो पुनः अन्नजल आदि ग्रहण करूँगा, संसार के कार्यों में प्रवृत्ति करूँगा। दुर्भिक्षे-कहीं अकाल पड़ गया, जंगल में कहीं फँस गये, जहाँ पानी तक नहीं मिल रहा है, प्यास के कारण प्राण कण्ठ में आ गये हों, कुछ ही क्षण में प्राण निकलने वाले हैं ऐसे उपसर्ग आने पर समाधि की साधना शुरू कर दो, हे प्रभु ! यदि मेरे प्राण इसमें निकल जाते हैं, तो मेरा सब कुछ त्याग है मैं सर्व पाप, कषाय का त्याग कर अपनी आत्मा के प्रति सचेत होता हूँ, सावधान होता हूँ, यह समाधि है। जरसि-बुढ़ापा आ गया, शरीर जर्जर हो गया अब तो कुछ काम किया ही नहीं जाता है इसलिये अब शरीर को कहाँ तक पोषण करोगे अब पुनः समाधि की साधना करो जिससे कि वृद्ध अवस्था अच्छे से निकल जाये सल्लेखना के साथ। रुजायां-किसी ऐसे रोग के आने पर जिसका प्रतिकार करना संभव न हो तब पुनः समाधि को स्वीकार करना चाहिए।

महानुभाव ! हमें इस शरीर रूपी झोंपड़ी को जबरदस्ती जलाना नहीं बल्कि धर्म ध्यान के लिये काम में लेना है, समाधि कोई रूढ़ि परम्परा नहीं और न ही आत्महत्या है, समाधि तो आत्मा का धर्म है, उसकी निधि है। जिस प्रकार उबलते पानी में अपना चेहरा नहीं दिखता उसी प्रकार कषाय के आवेश में आत्मा का वैभव नहीं दिखता। समाधि तो वरदान है, जो साधक अपने आत्मा के अस्तित्व को पहचान लेता है उसी की समाधि होती है।

अन्त में मैं आप से बस यही कहना चाहता हूँ कि अपनी शक्ति और योग्यतानुसार समाधिमरण हेतु प्रयत्न करना चाहिये। सल्लेखना का पात्र कोई भी भव्य हो सकता है। हाँ मुख्य पात्र तो मुनि ही हैं। समर्थ श्रावक अपनी शक्ति अनुसार साधना करता हुआ अंत में मुनिव्रत स्वीकार कर सल्लेखना पूर्वक शरीर का विसर्जन करता है किन्तु असमर्थ श्रावक भी अपनी शक्ति अनुसार यथाशक्य श्रावक

अवस्था में रहते हुये भी सल्लेखना करता है। शास्त्रों में अविरत सम्यग्दृष्टि तथा देशव्रती दोनों प्रकार के श्रावक-श्राविकाओं को भी सल्लेखना का पात्र माना गया है तथा शेर, हाथी, जटायू, बकरा, बैल आदि तिर्यंचों के भी आगम में उल्लेख हैं जिन्होंने सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण किया। महानुभाव ! इन्हीं शुभ भावनाओं के साथ कि हम और आप भी उत्तम समाधि को प्राप्त कर पंचमगति को वरण करें। अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देता हूँ।

।। शांतिनाथ भगवान् की जय ।।

नोट

नोट

नोट

नोट